BC-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

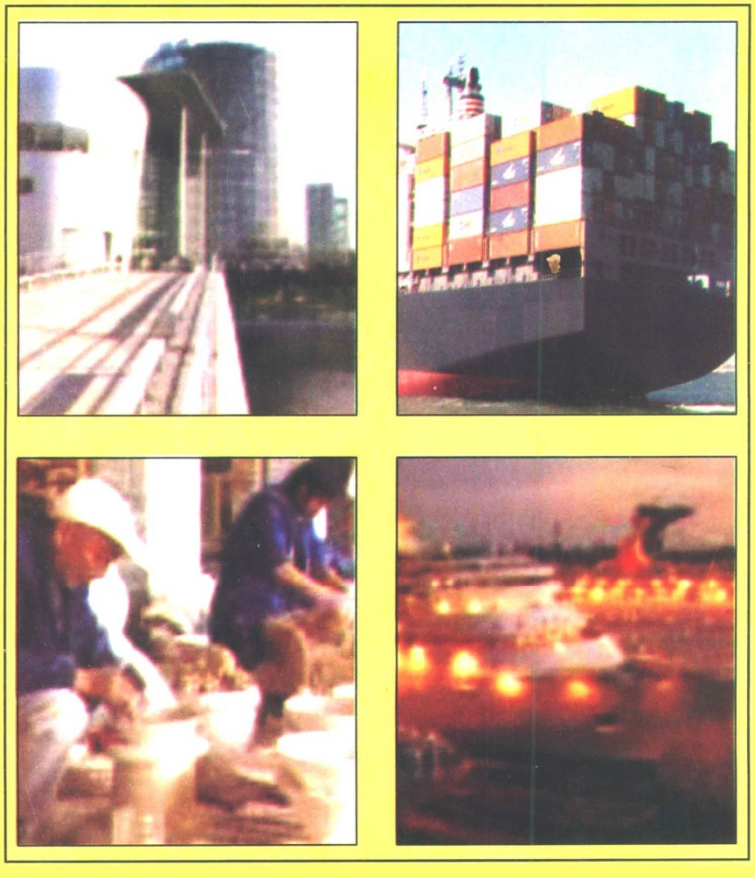

व्यावसायिक पर्यावरण

BC-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

व्यावसायिक पर्यावरण

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक/सदस्य

संयोजक

प्रो.(डॉ.) एम. डी. अग्रवाल

से. नि. आचार्य,(वाणिज्य)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य सचिव

प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली

निदेशक(अकादमिक)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो.(डॉ.) आर. के. दीक्षित**
   आचार्य एवं अध्यक्ष, ई. ए. एफ. एम. विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. **प्रो.(डॉ.) एस. जे. लालवानी**
   आचार्य, व्यावसायिक वित्त एवं अर्थशास्त्र
   वाणिज्य एवं प्रबन्ध संकाय
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
3. **प्रो.(डॉ.) आई. वी. त्रिवेदी**
   आचार्य, बैंकिंग एण्ड बिजनेस इकॉनोमिक्स
   मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
1. **डॉ. एस. जी. शर्मा**
   सह-आचार्य एवं अध्यक्ष, ए. बी. एस. टी. विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर
2. **डॉ. पुखराज दाधीच**
   राजकीय महाविद्यालय अजमेर

संपादन तथा पाठ लेखन

सम्पादक

1. **प्रो.(डॉ.) आर. के. दीक्षित**
   विभागाध्यक्ष, ई. ए. एफ. एम. विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

लेखक (इकाई सं.)

1. **डॉ. वी. के. गुप्ता** **(1,2,3,4,5)**
   सहायक आचार्य, ई. ए. एफ. एम.विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर
2. **डॉ. बी. के. गुप्ता** **(9, 16, 17)**
   सह-आचार्य, ई. ए. एफ. एम. विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर
3. **डॉ. सी. पी. गुप्ता** **(10)**
   व्याख्याता, ई. ए. एफ. एम. विभाग
   श्री प्राज्ञ महाविद्यालय, बिजयनगर
1. **डॉ. गोपाल सिंह** **(12,13,14,15,18)**
   पी. जी. अध्यक्ष ई. ए. एफ. एम.विभाग
   राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा
2. **डॉ. मंजुला त्यागी** **(14)**
   व्याख्याता, ई. ए. एफ. एम. विभाग
3. **राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा**
4. **डॉ. खेमचन्द गुर्जर** **(6, 7, 8)**
   व्याख्याता, ई. ए. एफ. एम. विभाग
   एस. पी. कॉलेज फालना

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम. के. घडोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

पुनः उत्पादन - जून 2011 **ISBN No. - 13/978-81-8496-196-6**

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि. कोटा के लिए कुलसचिव व. म. खु. वि. कोटा(राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

व्यावसायिक पर्यावरण

इकाई व इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई 1- व्यावसायिक पर्यावरण	7–24
इकाई 2- मौद्रिक नीति	25–33
इकाई 3- राजकोषीय नीति	34–45
इकाई 4- भारत की औद्योगिक नीति	46–62
इकाई 5- भारत की निर्यात-आयात नीति	63–71
इकाई 6- भारत में आर्थिक नियोजन- उद्देश्य एवं व्यूह रचना	72–87
इकाई 7- भारतीय आर्थिक नियोजन : उपलब्धियाँ एवं विफलताएँ	88–100
इकाई 8- 11वीं पंचवर्षीय योजना : उद्देश्य एवं लक्ष्य	101–109
इकाई 9- भारत का औद्योगिक विकास एवं इसकी समस्याएँ	110–125
इकाई 10- भारत मे औद्योगिक रुग्णता की समस्या	126–133
इकाई 11- भारत में बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्याएँ	134–152
इकाई 12- मुद्रा-स्फीति और बढ़ती कीमतों की समस्याएँ	153–165
इकाई 13- अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण	166–177
इकाई 14- वैश्वीकरण : अवधारणा एवं इसका महत्व	178–188
इकाई 15- निजीकरण एवं विनिवेश	189–202
इकाई 16- भारत का विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन	203–233
इकाई 17- भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश	234–249
इकाई 18- विश्व व्यापार संगठन एवं भारत	250–262

इकाई 1

व्यावसायिक पर्यावरण

(Business Environment)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषाऐं

1.3 व्यवसाय के आधार

1.3.1 व्यक्तिगत या आर्थिक आधार

1.3.2 व्यवसाय का सामाजिक आधार

1.4 व्यावसायिक पर्यावरण के अध्ययन का महत्व

1.5 व्यावसायिक पर्यावरण के घटक

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 स्वपरख प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगें कि

- व्यावसायिक पर्यावरण के अर्थ व परिभाषाओं का वर्णन कर सकें।
- व्यवसाय के आर्थिक व सामाजिक आधार को स्पष्ट कर सकें।
- व्यावसायिक पर्यावरण के महत्व को स्पष्ट कर सकें।
- व्यवसाय के आन्तरिक व बाह्य पर्यावरण घटकों का अर्थ व उनके प्रभाव का विश्लेषण कर सकें।
- यह बता सकें कि व्यवसाय का प्रबंध पर्यावरण से किस प्रकार प्रभावित होता है।

1.1 प्रस्तावना

व्यवसाय राष्ट्र एवं समाज के पर्यावरण में अपनी क्रियाओं को संचालित करता है। सरकार की नीतियाँ एवं निर्णय, समाज के मूल्य, विश्वास एवं लक्ष्य, वैधानिक नियमों का ढाँचा, राजनैतिक प्रणाली, नैतिक स्तर एवं मान्यताएँ तथा सम्पूर्ण आर्थिक परिवेश व्यवसाय को हर पल प्रभावित करते हैं। समाज में बदलती हुई विचारधाराएँ भी प्रबन्ध दर्शन, परिवर्तनशील प्रोद्योगिकी तथा सांस्कृतिक परिवेश-व्यवसाय को प्रभावित करते है तथा नये स्वरूप व नई मान्यताओं को ग्रहण करने के लिए व्यवसाय को बाध्य करते हैं।

इस प्रकार व्यवसाय बदलते हुए परिवेश में अपनी कार्य पद्धतियों, उत्पादन प्रणालियों, संगठन संरचनाओं, नेतृत्व शैलियों, दर्शन व लक्ष्यों में नवीन परिवर्तन लाता है तथा समाज की

रचना में अपना योगदान निभाता है। रेनकी एवं शॉल लिखते है कि "यह उन समस्त बाह्य घटकों का योग है जिनके प्रति व्यवसाय अपने को अनावृत करता है तथा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है।"

1.2 व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषाऐं

अनके विद्वानों ने व्यावसायिक पर्यावरण को अलग-अलग रूप से परिभाषित किया है। इनमें से कुछ निम्नलिखित है:-

विलियम ग्लूक व जॉक के अनुसार, "पर्यावरण में फर्म के बाहर के घटक शामिल होते है, जो फर्म के लिए अवसर एवं खतरे पैदा करते है।" इनमें सामाजिक-आर्थिक, प्रोद्योगिकीय एवं राजनीतिक दशाएं प्रमुख रूप से प्रभावित करते है।

रिचमैन तथा कोपन के अनुसार, "पर्यावरण में दबाव एवं नियन्त्रण होते है, जो अधिकांशत: वैयक्तिक फर्म एवं इसके प्रबन्धकों के नियन्त्रण के बाहर होते है।"

इन विचारों से यह स्पष्ट है कि व्यावसायिक पर्यावरण विभिन्न, गतिशील, जटिल व अनियन्त्रित बाह्य आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, भौतिक व तकनीकी घटको का योग है, जिनके अनुरूप व्यवसाय को कार्य करना पड़ता है। वातावरण ही व्यवसाय को नये आकार, स्वरूप, नयी भूमिकाएं, मान्यताएं व अन्य नयी व्यवस्थाऐं ग्रहण करने को बाध्य करता है। अनके परिस्थितियों में नये अवसरों की खोज में वातावरण से व्यवसाय को प्रोत्साहन व एक नयी ऊर्जा प्राप्त होती है। इसके साथ-साथ व्यवसाय भी पर्यावरण के परिवर्तन में एक महत्वपूर्ण घटक होता है।

1.3 व्यवसाय के आधार (Bases of Business)

पुरातन काल में व्यवसाय का कार्य केवल व्यवसाय करना माना जाता था तथा इसका एक ही आधार था-लाभ कमाना। आधुनिक परिस्थितियों ने व्यवसाय के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला दिये है और इस क्षेत्र में एक नवीन विचारधारा देखने को मिलती है। जिसे व्यवसाय की सामाजिक विचारधारा कहा जा सकता है। अत: वर्तमान में व्यवसाय के मुख्यतया दो आधार है-

1. व्यवसाय का व्यक्तिगत या आर्थिक आधार, तथा
2. व्यवसाय का सामाजिक आधार।

1.3.1 व्यक्तिगत या आर्थिक आधार (Individual or Economic Basis)

व्यवसाय का व्यक्तिगत आधार लाभ प्राप्ति के लिए कार्य करना है। लाभ की प्रेरणा ही व्यवसाय की जन्मदाता है। जिन संस्थाओं का उद्देश्य लाभ अर्जन नहीं होता है, उन्हें व्यवसाय के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किया जाता है जैसे-सार्वजनिक वाचनालय, सार्वजनिक औषधालय एवं विभिन्न धार्मिक संस्थाऐं। सामान्यतया लाभ व्यवसायी के द्वारा उठाये जाने वाले जोखिम का पुरस्कार है। लाभ के बिना कोई भी कारोबार न तो उन्नति कर सकता है और न ही निर्बाध रूप से संचालित किया जा सकता है। सी.एफ. अबाट के विचारानुसार "बिना लाभ के व्यवसाय, व्यवसाय नहीं होता है, ठीक उसी प्रकार से जैसे कि बिना चीनी के मुरब्बा।" सॉमरवेल के मतानुसार भी "लाभ को व्यवसाय का आर्थिक आधार माना गया है क्योंकि लाभ कार्यकुशलता की

कसौटी है, जोखिम एवं विस्तार के लिए वित्त प्रबन्ध का स्त्रोत है तथा कार्य की प्रेरक शक्ति है।" अत: व्यवसाय में आर्थिक आधार की प्रधानता होती है।

लाभ को व्यवसाय का आर्थिक आधार माना गया है। लाभ की प्रेरणा से व्यवसाय आगे बढ़ता रहता है, विकास करता है तथा अभिवृद्धि एवं सम्पन्नता की ओर अग्रसर होता है। सामान्यत: लाभ कमाने के लिए ही व्यावसायिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है। आर्थिक सुदृढ़ता प्रत्येक व्यवसाय की आवश्यकता है जो कि लाभार्जन के द्वारा ही बनी रह सकती है। व्यवसाय में लाभ कमाना, सभी आर्थिक प्रणालियों में देखा जा सकता है। पूंजीवादी प्रणाली में लाभ पर अधिकतम जोर दिया जाता है। जबकि समाजवादी तथा मिश्रित प्रणाली में उचित लाभ के विचार पर बल दिया जाता है। निष्कर्ष के रूप में लाभ की आशा में ही उत्पादन के संसाधनों में गतिशीलता बढ़ती है। लाभ की सम्भावनाओं से ही व्यवसाय का विस्तार प्रेरित होता है।

व्यवसाय के अस्तित्व व संचालन के लिए आर्थिक आधार को सुदृढ़ रखना तथा इसके लिए आर्थिक क्रियाओं का कुशल प्रबन्ध करना आवश्यक माना जाता है। आर्थिक आधार पर सुदृढ़ीकरण पैसा एकत्रित करने के उद्देश्य से ही नहीं होता बल्कि व्यवसाय की अनके दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति तथा अपने दायित्वों का निर्वहन करने के लिए भी किया जाता है।

व्यवसाय में आर्थिक आधार का महत्व

लाभ व्यावसायिक क्रिया का प्रमुख स्त्रोत है। लाभ के बिना व्यावसायिक क्रियाओं का संचालन नहीं किया जा सकता अर्थात् व्यवसाय जो कुछ भी करता है उसमें आर्थिक विवेक का प्रयोग आवश्यक है। व्यवसाय में आर्थिक आधार का महत्व निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **व्यवसाय का प्रेरणा स्त्रोत (Motivating Force) -** प्रत्येक व्यक्ति में सामान्यतया अधिकाधिक लाभ अर्जन की इच्छा पाई जाती है। व्यवसाय में किसी व्यक्ति द्वारा पूंजी निवेश, सभी अन्य साधनों का प्रबन्ध तथा जोखिम उठाने का प्रयास लाभ-प्राप्ति की प्रेरणा से ही होता है। लाभ आर्थिक क्रिया के लिए मुख्य प्रेरणा प्रदान करने वाला तत्व है। लाभ की प्रेरणा जितनी अधिक शक्तिशाली होगी जोखिम की मात्रा भी उस व्यवसाय में उतनी ही अधिक पाई जायेगी।

2. **विनिमय का आधार (Basis of Exchange) -** व्यवसायी अपनी वस्तुओं का विनिमय, मुद्रा से अथवा अन्य वस्तुओं से लाभ-प्राप्ति के लिए ही करता है। इसी प्रकार व्यापारी से वस्तुएं लेने वाले उपभोक्ता को भी उपयोगिता के रूप में लाभ होता है तभी वह वस्तु के बदले मुद्रा देता है। अत: विनियम करने वाले दोनों पक्षों को पारस्परिक लाभ होता है जिसके कारण विनिमय होता है।

3. **वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति (Fulfilment of Individual Needs) -** सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवसाय की भी अपने वैयक्तिक आवश्यकताएँ होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसे धन की आवश्यकता होती है। अत: व्यवसायी भी अपने व्यवसाय से अर्जित लाभ को ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में प्रयुक्त कर सकता है। जिससे व्यवसाय का विकास होगा।

4. **व्यवसाय का अस्तित्व (Survival of Business) -** व्यवसाय को जीवित रखने के लिए लाभ अर्जित करना आवश्यक है। निरन्तर घाटे पर चलने वाला व्यवसाय या बिना लाभ

प्रदान करते हुए उसका लम्बे समय तक चलना सम्भव नहीं है। इसलिए उसके अस्तित्व के लिए यह आवश्यक है लाभ कमाया जाय।

5. **व्यवसाय के विकास एवं विस्तार के लिए (For Growth and Expansion of Business) -** व्यवसाय के विकास के लिये भी लाभ का होना आवश्यक है। व्यवसाय के विकास हेतु अतिरिक्त पूंजी की प्राप्ति भी लाभ पर ही निर्भर होती है। जनता, बैंक सरकार एवं विभिन्न वित्तीय संस्थाऐं अपनी राशि तभी उधार देती हैं जबकि व्यवसाय में पर्याप्त लाभ हो रहा हो तथा लाभ होने की सम्भावनाएं हो। अत: व्यवसाय में लाभ पूंजी निर्माण का स्त्रोत है।

6. **साहस का पुरस्कार (Reward for Entrepreneurship) -** व्यवसाय के संचालन में व्यवसायी का साहस एक प्रमुख आवश्यकता है। व्यवसाय में लाभ होना व्यवसायी की उद्यमशीलता एवं व्यावसायिक दूरदर्शिता का ही परिणाम है। व्यवसायी का अथक प्रयास एवं कठिन परिश्रम ही व्यवसाय को आगे बढ़ा सकते है। अत: लाभ व्यवसायी की सेवाओं व योग्यता का पुरस्कार है।

7. **सेवाओं का पुरस्कार (Reward for Services) -** जिस प्रकार एक सामान्य व्यक्ति अपने परिश्रम के बदल में कुछ चाहता है उसी प्रकार से व्यवसायी भी व्यवसाय में किये गये परिश्रम के प्रतिफल के लिए लाभ चाहता है। लाभ के अभाव में उसका परिश्रम व्यर्थ है। कोई भी व्यक्ति निरर्थक परिश्रम नहीं करना चाहता है यदि व्यवसायी को निकट भविष्य में भी अपने परिश्रम के प्रतिफल की संभावनायें नहीं दिखाई देती है तो वह उस व्यवसाय को छोड़ कर कोई दूसरा मार्ग अपनाता है।

8. **व्यवसाय की सफलता एवं कुशलता का मापदंड (Measurement of Success and Efficiency) -** एक उद्योग राष्ट्रीय सम्पत्ति का आर्थिक स्त्रोत है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सम्पत्ति की निरन्तर वृद्धि व उसका विकास चाहता है। व्यवसायी का यह कर्त्तव्य है कि वह व्यवसाय का संचालन राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए लाभ पूर्वक करें। सरकार व समाज भी व्यवसाय की सफलता चाहते हैं तथा यथासम्भव योगदान देते है। व्यवसाय में लाभ न होने की स्थिति केवल एक उद्योग व एक व्यवसायी के लिए अहितकारी नहीं होती बल्कि समस्त राष्ट्र के व्यवसाय पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

9. **समस्त अर्थव्यवस्थाओं में लाभ को मान्यता (Recognition of Profit by all Systems) -** साम्यवादी, समाजवादी और पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में व्यावसायिक लाभ को किसी न किसी रूप में मान्यता दी गई है। अर्जित लाभ के प्रयोग के स्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। साम्यवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्था में लाभ का उपयोग सामाजिक हित व राष्ट्रीय हित मे होता है जबकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत हित सर्वोपरि होता है। अत: व्यवसाय और लाभ दोनों में चोली-दामन का साथ है।

10. **सामाजिक दायित्वों की पूर्ति का साधन (Means for discharging Social Obligations) -** आधुनिक वातावरण में व्यवसाय के सामाजिक दायित्व भी महत्वपूर्ण है। उपभोक्ताओं को सन्तुष्टि प्रदान करना, कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक प्रदान करना, विनियोजकों को उनके द्वारा निवेशित पूंजी पर उचित प्रतिफल प्रदान करना, रोजगार के अवसर प्रदान करना एवं आवश्यकता के समय देश के समाज-सेवी-संगठनों को आर्थिक सहायता प्रदान

करना आदि सामाजिक दायित्व की परिधि में आते है। इन दायित्वों को निभाने हेतु लाभ की आवश्यकता होती है।

11. **जोखिम के विरूद्ध सुरक्षा (Safety against Risks) -** प्रत्येक व्यवसाय में अनेक जोखिमें होती है। ये प्राकृतिक आपदाओं (तूफान, भूकम्प, आग) के अतिरिक्त मंदी, मांग में परिवर्तन, फैशन व उपभोक्ता रूचि में परिवर्तन, सरकारी नीतियों, प्रतिस्पर्धा, विदेशी माल की पूर्ति, ग्राहक व्यवहार के कारण उत्पन्न हो सकती है। इन जोखिमों का सामना करने के लिए भी व्यवसाय में लाभ का होना आवश्यक है। विज्ञान की प्रगति के कारण व्यवसाय में लगी मशीनों, यन्त्रों आदि के पुराने होने पर उनका प्रतिस्थापन करना आवश्यक होता है। लाभ प्रतिस्थापन की जोखिम के विरूद्ध सुरक्षा है।

12. **भावी पूंजी की पूर्ति (Supply of Future Capital) -** सामान्यत: विनियोजक सफल एवं लाभ प्रदान करने वाले व्यवसायों में ही अपनी पूंजी लगाना पसन्द करते है। अधिक लाभ होने पर ही ऊंची दर पर लाभांश वितरित किये जा सकते है। इस प्रकार लाभ अर्जन की क्षमता के कारण व्यवसाय में नयी पूंजी आकर्षित होती रहती है। भावी पूंजी की प्राप्ति से व्यवसाय की दीर्घकालीन योजनाओं एवं उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है।

13. **कार्यक्षमता बनाये रखना (To Maintain Efficiency) -** लाभ व्यवसाय में लगे हुये संसाधनों की धनोत्पादन क्षमता को बनाये रखने हेतु आवश्यक है। लाभों में से कर्मचारियों को ऊंचा वेतन, बोनस, भत्ते, नकद प्रेरणाएं, प्रशिक्षण आदि की सुविधाऐं प्रदान करके उनकी कार्यक्षमता को बनाये रखा जा सकता है। साथ ही, भौतिक संसाधनों की मरम्मत, प्रतिस्थापन आदि की आवश्यकताऐं भी लाभों में से ही पूरी जा सकती है।

14. **पूंजी पर प्रतिफल (Return on Capital) -** सामान्यत: व्यवसाय का महत्वपूर्ण उद्देश्य पूंजी पर लाभ कमाना है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ प्रतिफल प्राप्त करने के उद्देश्य से ही व्यवसाय में पूंजी का विनियोजन करता है। अत: विनियोजकों को उनकी पूंजी पर उचित प्रतिफल प्रदान करने के लिए लाभ अवश्य कमाया जाना चाहिए।

15. **प्रतिष्ठा एवं मान्यता के प्रतीक (Symbol of Prestige and Recognition) -** समाज में जो उपक्रम अधिक लाभार्जन अर्जित करते है, उसे प्रतिष्ठा एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। लाभों के कारण ही कर्मचारियों के लिए कल्याण की योजनाऐं बनाना, ग्राहकों को कम से कम मूल्य पर उत्तम किस्म की वस्तुऐं सुलभ करवाना व जन हित में सामाजिक कार्य कर पाना संभव है। इन सब कार्यो से व्यावसायिक संस्था की बाजार में साख बढती है। एक सीमा तक व्यवसाय का विस्तार भी प्रतिष्ठा को बढ़ाता हैं प्रतिष्ठित फार्मों को ऋण प्राप्त करने में अत्यन्त सुविधा बनी रहती है। अत: व्यवसाय में लाभ आवश्यक है।

16. **कर्मचारियों को सुविधाएं (Facilities of Employees) -** आज कर्मचारी व्यवसाय से केवल वेतन पाने की अपेक्षा ही नही रखता अपितु वेतन के अलावा अन्य सुविधाएं भी चाहता है जैसे-बोनस, आवास व्यवस्था, केन्टीन, वाचनालय आदि। अत: कर्मचारियों की इन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए लाभ आवश्यक है। इसीलिये उपक्रम का संचालन पर्याप्त लाभ पर ही किया जाना चाहिए।

17. **सरकारी कोष में योगदान (Contribution Towards Goverment Funds) -** सरकार को शासन व्यवस्था चलाने तथा विकास कार्यो को करने के लिए धन की आवश्यकता होती है। साथ ही औद्योगिकीकरण को गति देने तथा पंचवर्षीय योजनाओं के पूरा करने के लिए सरकार को अपार धनराशि व्यय करनी होती है। करों आदि के रूप में व्यवसायों से सरकारी खजानों में राशि प्राप्त होती रहती है। पर्याप्त लाभ होने पर सरकार का यह अंशदान बढ़ जाता है तथा करों की चोरी की प्रवृत्ति भी कम हो जाती है।

18. **लाभ का सामाजिक औचित्य (Social Justification of Profit) -** लाभ अर्जन की आकांक्षा में समाज में नयी-नयी फर्म खुलने लगती है। लाभ की आशा में ही फर्म नव-प्रवर्तन के कार्य करती है तथा अपने व्यवसाय का विस्तार करती है। इस प्रकार समाज में रोजगार व विनियोग के नये अवसर उत्पन्न होते है, पूंजी का निर्माण होता है तथा श्रेष्ठ किस्म की वस्तुओं के उपयोग से जीवन स्तर में वृद्धि होती है। लाभ औद्योगिक प्रगति को प्रोत्साहित कर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को गतिशील बना देता है।

1.3.2 व्यवसाय का सामाजिक आधार (Social Basis of Business) - उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति तक व्यवसायी का उद्देश्य अधिकतम प्राप्त करना ही था। लेकिन वर्तमान में व्यवसाय का उद्देश्य लाभ प्राप्त करना अवश्य है लेकिन यह उसका एकमात्र उद्देश्य नहीं माना जा सकता। टॉमस के अनुसार, "व्यवसाय का दायित्व हमारे नगरों तथा प्रमुख क्षेत्रों की समस्याओं को हल करना है तथा यह दायित्व व्यवसाय के आर्थिक उद्देश्य से भी ऊपर एवं अग्रणी है।" सामाजिक विचारधारा के अनुसार व्यवसायी के लिये यह आवश्यक है कि वह आधुनिक व्यापारिक परिस्थितियों में अपने लक्ष्यों को पूरा करता हुआ, समाज के प्रति जो उसके कर्त्तव्य एवं दायित्व है उन्हें भी निरन्तर पूरा करता रहे। उद्योगपति श्री हेनरी फोर्ड ने भी अधिकतम लाभ के पीछे भागने की प्रवृति को उचित नही माना। आज लोग व्यवसाय की उपयोगिता सामाजिक दृष्टिकोण से देखते है। आज के युग में सामाजिक विचाराधारा ने व्यावसायिक जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है तथा नित्य प्रति व्यवसायियों में भी इसके प्रति अधिक चेतना जाग्रत हो रही है। उनके अनुसार आज व्यवसाय का लक्ष्य समाज को अधिकतम संतुष्टि प्रदान करना होना चाहिए। वास्तव में आज व्यवसाय एक सामाजिक-मानवीय आधार पर कार्य करता है।

व्यवसाय के सामाजिक आधार के तत्व (Elements of Social Basis of Business)

सामान्यत: व्यवसाय के सामाजिक आधार पर निम्नलिखित तत्वों का समावेश किया जाता है-

1. जनहित एवं जन कल्याण के लिए कार्य करना।
2. अनेक प्रकार के व्यावसायिक खतरों से सामान्य जन की रक्षा करना।
3. सामाजिक उत्तरदायित्व का सही ढंग से निर्वाह करना।
4. व्यवसाय की वैधानिक आपूर्तियों एवं आवश्यकताओं को पूरा ध्यान देना।
5. पर्यावरण की रक्षा करना।
6. श्रम एवं कर्मचारी वर्ग के साथ मानवीय दृष्टिकोण से कार्य करना।
7. ग्राहक सेवा एवं सन्तुष्टि पर अधिकतम ध्यान देना।
8. अंशधारियों एवं विनियोजकों के हितों की रक्षा करना।

9. व्यावसायिक नीतिशास्त्र का अनुपालन करना।
10. सरकार, प्रशासन एवं सामाजिक संस्थाओं के प्रति उत्तरदायी होना तथा अपने उत्तरदायित्वों को निभाना।
11. विश्व स्तर पर व्यवसाय के लिए मधुर सम्बन्ध स्थापित करना तथा विश्व समाज की आकांक्षाओं के अनुकूल व्यवहार करना।
12. उपभोक्तावाद को प्रोत्साहन देना।
13. सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों, विश्वासों, आस्थाओं, रीति-रिवाजों, परम्पराओं आदि का ध्यान रखना।
14. व्यवसाय से जुडे पक्षों, ग्राहकों व अन्य लोगों की जीवन के साथ खिलवाड़ न करना।

व्यवसाय में सामाजिक आधार का महत्व (Importance of Social Basis in Business)

वर्तमान काल ने जहां व्यवसाय को नये आयाम दिये है, वहीं इसने व्यवसाय के सामाजिक आधार को भी अधिक सुदृढ़ किया है। अब यह विचार विवाद का विषय नहीं है कि व्यवसाय का आधार आर्थिक हो या सामाजिक। व्यवसाय के लिए दोनों ही आधार आवश्यक है। दोनों आधारों में एक सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकता है। व्यवसाय के सामाजिक आधार के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है।

1. **बहुल वादी समाज** की स्थापना जिसमें व्यक्तिवादी विचारधारा पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इसमें सामूहिक हित को सर्वोपरि माना गया है।
2. **संवैधानिक व्यवस्थाऐं** जिनसे समाज के सभी पक्षों की रक्षा पर ध्यान दिया गया है। व्यवसाय के पनपने व अग्रसर होने के लिए हमारी संविधान में अनेक व्यवस्थाओं को शामिल किया गया है।
3. **सांस्कृतिक मूल्यों,** आस्थाओं, विश्वासों, रीति-रिवाजों, धर्म, परम्पराओं आदि पर व्यवसाय द्वारा पर्याप्त ध्यान दिया जाना न केवल इनके पोषण एवं संरक्षण के लिए आवश्यक है बल्कि व्यावसायिक हितों की पूर्ति के लिए भी ये व्यावसायिक वातावरण का अभिन्न अंग है।
4. **उपभोक्ता आन्दोलन एवं जनचेतना** ने लोगों को अधिक जागरूक बनाया है। इसमें शिक्षा के प्रसार ने भी काफी योगदान दिया है उपभोक्ता अपने अधिकारों को प्राप्त करने, अच्छी सेवाऐं उपलब्ध करवाने, उत्पादन एवं सेवाओं की कमियों व दोषो से छुटकारा पाने तथा नुकसान के लिए हर्जाना प्राप्त करने आदि के लिए पहले से कहीं ज्यादा सतर्क तथा जागरूक है।
5. **उपभोग प्रवृत्तियों** में परिवर्तन इतनी तीव्रता से आया है कि व्यवसाय किसी भी स्थिति में इनकी अनदेखी नहीं कर सकता। लोगों की उपभोग आदतें विकसित समाज जैसी होती जा रही है, जहां एक उच्च एवं विकसित उपभोग-संस्कृति है। उपभोग प्रवृत्तियों एवं प्रारूपों का अध्ययन एवं विश्लेषण व्यवसाय के लिए मांग सृजन, मांग आपूर्ति, नये उत्पादों व नयी सेवाओं को बाजार तैयार करने, उत्पाद-अभिकल्पना, विज्ञापन-माध्यम, सेवा क्षेत्र का विकास इत्यादि के लिए आवश्यक हो गया है।

6. **सामाजिक एवं पारिवारिक संरचना** एवं मान्यताओं में होने वाली परिवर्तन भी व्यवसाय की क्रियाओं को प्रभावित करते है। आज तथा आज से 50-100 वर्ष पूर्व के सामाजिक ढांचे में व्यापक अन्तर है। परिवारों की संरचना व स्वरूप बदलते जा रहे है। संयुक्त तथा विस्तृत परिवार का स्थान अब एकल व्यक्ति परिवार ने ले लिया है। ऐसे में परिवारों की आवश्यकताऐं अब संयुक्त न रह कर पृथक एवं स्वतन्त्र होने लगी है, जिनका ध्यान रखना व्यवसाय के लिए जरूरी है।
7. **बढ़ते हुए शहरीकरण** तथा गांवों में भी शहरी प्रभावों के बढ़ने से वस्तुओं की मांग, आपूर्ति एवं उपभोग ने नये आकार ग्रहण कर लिए है। बडी-बडी कम्पनियां ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार की तलाश में है तथा ऐसे अनेकानेक क्षेत्रों में इनके बाजार विकसित कर लिये गये है। बढ़ते हुए शहरीकरण, महानगरों व बडे-बडे शहरों ने कम्पनियों को नयी विपणन व्यूहरचनाओं तैयार करने तथा इन्हें अपनाने के लिए बाध्य कर दिया है।
8. **जनसंख्या वृद्धि एवं प्रसार** ने जहां एक ओर सरकार तथा समाज के लिए विकट एवं गम्भीर समस्याऐं पैदा कर दी हैं वहीं दूसरों ओर व्यवसाय के लिए नयी सम्भावनाओं को आधार तैयार किया है। अनेक व्यवसायों के लिए तो जनसंख्या वृद्धि तथा प्रसार एक वरदान सिद्ध हुआ है। केवल यही नहीं, बढ़ती हुई जनसंख्या ने हर उम्रवर्ग-बच्चे युवा, प्रौढ, युवक-युवतियां, पुरूष-महिलाऐं, स्कूल-कॉलेज व विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर रहे शिक्षार्थी, कामकाजी महिलाऐं, नये फैशन की दौड़ व आधुनिक सोसायटी के चाहने वालो की संख्या में अपार वृद्धि की है तथा व्यवसाय के लिए नये आयाम तैयार किये है।
9. **सरकार, प्रशासन, न्याय व वैधानिक व्यवस्थायें** ने व्यवसाय को एक निश्चित दिशा व सही मार्ग पर चलने के लिए दिशा निर्देश दिये है। अनके कानूनों, नियमों, सरकारी आदेशों तथा नियन्त्रणों ने व्यवसाय का सही मार्ग प्रशस्त किया है तथा व्यवसाय ने भी अपनी नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों तथा व्यूह रचनाओं के निर्माण करने तथा इन्हें क्रियान्वित करने के लिए सरकार, प्रशासन, न्याय तथा वैधानिक व्यवस्थाओं को आधार माना है।
10. **अनेक खतरों** के प्रति व्यवसाय की जागरूकता में वृद्धि हुई है। जल, वायु ध्वनि तथा धरातलीय प्रदूषण के बढने, इनकी वृद्धि में व्यवसाय का भी काफी बड़ा हाथ होने तथा इनके विरूद्ध जन-आन्दोलन व जन-चेतना के बढ़ने तथा साथ ही व्यवसाय को अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों की सही जानकारी होने के कारण अब व्यवसाय द्वारा नयी मशीनों व उत्पादों के निर्माण में तथा कारखानों की रचना में काफी सावधानी काम में ली जा रही है। यह नहीं ऐसे अनेक उपकरण तैयार किये जा रहे है जो इन खतरों को रोक सकें या इनका प्रभाव काफी हद तक कम कर सकें।
11. **व्यवसाय ने 'समाज तथा व्यवसाय'** की बढ़ती हुई अर्न्तनिर्भरता को पहचाना है तथा इसे एक ठोस आधार के रूप में स्वीकार किया है। यह बात स्पष्ट है कि व्यवसाय समाज तथा समाज व्यवसाय पर पारस्परिक रूप से आश्रित है। दोनों ही एक ऐसी अवस्था में पहुँच गये हैं जहाँ एक दूसरे के बिना कार्य सम्पन्न करना कठिन है।

12. **औद्योगिक एवं व्यावसायिक जगत** में संगठनात्मक व्यवहार तथा मानवीय सम्बन्धों की बढ़ती हुयी जटिलताएं।
13. **व्यवसाय को सामाजिक संस्था** के रूप में मान्यता प्राप्त होना।
14. **व्यवसाय में नैतिक मापदण्डों** की अनुपालना पर जोर।
15. **हितों की भिन्नता, व्यवसाय की सामाजिक कार्यो में संलग्नता,** तथा अधिक खुलेपन पर अधिक ध्यान दिया जाना।
16. **स्थानीय परिवेश एवं स्वदेशी परिवेश** को व्यवसाय द्वारा महत्वपूर्ण स्थान देना।
17. **व्यवसाय की सामाजिक छवि** के संरक्षण पर अधिक बल दिया जाना।
18. **व्यावसायिक वातावरण में** तीव्रगति से आ रहे परिवर्तनों का प्रभाव।
19. **नये सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों** का प्रादुर्भाव तथा देश में अनेक नयी संस्कृतियों जैसे- 'कम्पनी कल्चर', उपभोक्ता संस्कृति, विनियोजन संस्कृति तथा आधुनिक संस्कृति आदि का प्रादुर्भाव तथा इनके बढ़ते हुए व्यापक प्रभाव।
20. **नये सामाजिक दृष्टिकोण** का प्रादुर्भाव तथा नये समाज का उदय।

1.4 व्यावसायिक पर्यावरण के अध्ययन का महत्व

व्यावसायिक पर्यावरण एक और जहां देश की आर्थिक विकास,समृद्धि एंव रोजगार एंव मार्ग प्रशस्त करता है, वहीं दूसरी ओर उपयुक्त व्यावसायिक पर्यावरण के अभाव में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी एवं अशान्ति की स्थितियां सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को झकझोर देती है। अत: बदलते हुए परिवेश का मूल्यांकन, पूर्वानुमान एवं इसके प्रभावों का निर्धारण करने के पश्चात् ही व्यवसाय द्वारा सफलतापूर्वक अपनी नीतियों एवं योजनाओं का निर्माण किया जा सकता है।

व्यावसायिक पर्यावरण के अध्ययन के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है-

1. **आन्तरिक वातावरण की पूर्ण जानकारी -** व्यवसाय के विकास के लिए इसका अपने आन्तरिक वातावरण से पूरी तरह परिचित होना आवश्यक है। व्यवसाय की नीतियों, लक्ष्यों, साधनों, संगठन-रचना प्रविधियों योजनाओं, व्यूहरचनाओं तथा इनमें निरन्तर हो रहे परिवर्तनों की पूरी जानकारी व्यवसाय के लिए अत्यन्त आवश्यक है। निर्णयन एवं भावी योजनाओं व व्यूह रचनाओं के निर्माण के लिए व्यवसाय के पास एक विकसित 'प्रबन्ध सूचना प्रणाली' होनी चाहिए जिससे व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण की जानकारी तुरन्त व आसानी से उपलब्ध हो सके।

2. **व्यवसाय की समस्याओं व चुनौतियों की जानकारी-** व्यवसाय की सफलता के लिए आवश्यक है कि व्यवसाय की संभावित चुनौतियों की पूरी जानकारी प्राप्त की जाए तथा इनके समाधान व मुकाबला करने की रणनीति पर विचार किया जाए। इसके लिए व्यावसायिक पर्यावरण का अध्ययन एवं विश्लेषण अत्यन्त आवश्यक है।

3. **गतिशीलता-** आन्तरिक वातावरण के साथ व्यवसाय के बाहरी वातावरण, आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक दशाओं एवं नवीन घटनाओं के प्रति जागरूक रहना व्यवसाय के लिए जरूरी होता है। ताकि ना सिर्फ व्यवसाय को निरन्तर गतिशील रूप में रखा जा सके। बल्कि उसी के अनुरूप व्यवसाय के लक्ष्य व नीतियों का निर्धारण भी किया जा सके।

4. **आर्थिक प्रणालियों के स्वरूप का अध्ययन-** आर्थिक प्रणाली का स्वरूप व्यवसाय को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। पूंजीवादी प्रणाली, समाजवादी प्रणाली तथा मिश्रित आर्थिक व्यवस्था व्यवसाय पर अलग-अलग ढंग से प्रभाव डालती है। व्यवसाय के लिए इन आर्थिक प्रणालियों के बदलते तथा वास्तविक स्वरूप को पहचानना बहुत जरूरी हो जाता है।

5. **शासन प्रणाली एवं उसकी प्रकृति -** एक देश की शासन व्यवस्था एवं उसकी प्रकृति उस देश के व्यवसाय, व्यावसायिक स्वतंत्रता, व्यवसाय के आकार-प्रकार, व्यावसायिक प्रगति एवं समृद्धि पर काफी प्रभाव डालती है। साम्यवादी, प्रजातांत्रिक व सैन्य शक्ति प्रशासित प्रणालियों के प्रभावों में व्यापक अन्तर होता है। व्यावसायिक सम्भावनाओं का आकलन भी विभिन्न शासन प्रणालियों में अलग-अलग तरह का होता है। अत: इनकी जानकारी व इनका पूर्ण अध्ययन व्यवसाय के अस्तित्व व विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

6. **अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, प्रभावों व दबावों को समझना-** वर्तमान में अर्थव्यवस्थाओं पर अन्तर्राष्ट्रीय घटना क्रम का प्रभाव शीघ्र पड़ने लगा है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तनों से कोई भी राष्ट्र व वहां का व्यवसाय प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अर्थव्यवस्थाओं में लिए जाने वाले अनेक महत्वपूर्ण निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से प्रभावित होते है और इन सबका असर व्यवसाय पर पड़े बिना नहीं रह सकता। अत: यह जरूरी है कि व्यवसाय के स्थायित्व, अस्तित्व, लाभदेयता एवं प्रभावी कार्यप्रणाली के लिए अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, प्रभावो व दबावों का अध्ययन व विश्लेषण किया जाये।

7. **सरकार की आर्थिक नीतियां-** सरकार की आर्थिक नीतियां व्यावसायिक पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण अंग होती है तथा व्यवसाय में इनका महत्वपूर्ण स्थान होता है। सरकार द्वारा घोषित औद्योगिक नीति,अनुज्ञापत्र नीति, आयात-निर्यात नीति, विदेशी विनिमय नीति, मूल्य नीति व राजकोषीय नीति आदि इस पर स्पष्ट रूप से प्रभाव डालती है। अत: व्यवसाय को न केवल इन नीतियों की जानकारी होना ही आवश्यक है, बल्कि इनमें किये गये नीतिगत एवं प्रक्रिया संबंधी परिवर्तनों तथा इनके तुरन्त व दीर्घकालीन प्रभावों को आकलन करना भी जरूरी है।

8. **व्यावसायिक लाभदेयता -** वर्तमान में प्रतिस्पर्धी युग में लाभदेयता दाँव पर लगी हुयी है। व्यवसाय में लाभ के अनेक अवसरों का अधिकाधिक उपयोग पर्यावरण के प्रति जागरूक रहकर ही किया जा सकता है। प्रतिस्पर्धा के विरूद्ध सुदृढ़ उपायों को अपनाने के लिए पर्यावरण का पर्याप्त अध्ययन आवश्यक है।

9. **व्यावसायिक विकास एवं सफलता -** व्यावसायिक पर्यावरण एवं उसमें होने वाले सतत् परिवर्तनों के अन्तर्गत अनेक अवसरों का अनुकूलतम लाभ उठाया जा सकता हैं। व्यवसाय के विकास, विस्तार एवं विविधीकरण, व्यावसायिक पर्यावरण के साथ पूर्ण सामंजस्य बनाये रखने पर ही प्राप्त किये जा सकते है। पर्यावरण के साथ सामंजस्य समायोजन एवं संघर्ष व्यवसाय की सफलता का मार्ग प्रशस्त करते है।

10. **संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करने के लिए-** संसाधनों को सामान्यतया दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन। देश के प्राकृतिक संसाधन, व्यवसाय की प्रकृति, उसका स्थानीयकरण परिमाण एवं प्रगति निर्धारित करते है। मानवीय संसाधनों द्वारा व्यवसाय में अपनायी जाने वाली तकनीक, ज्ञान, उत्पादन-तकनीकें, औद्योगिक सद्भाव,

प्रबन्धकीय कुशलता एवं क्षमताऐं प्रभावित होती हैं। प्रबन्ध तो आधुनिक व्यवसाय का आधार है। किसी भी देश का प्रबन्धकीय संवर्ग, वहां का प्रबन्धकीय वातावरण इत्यादि उस देश के व्यवसाय को नयी ऊँचाइयों पर ले जाता है।

11. **वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक विकास की परिस्थितियां-** देश-विदेश में नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों एवं प्रौद्योगिकी विकास की गतिविधियों में वृद्धि व्यवसाय के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। नये उत्पादों, नये डिजाइनों एवं उत्पादन की नवीन तकनीकों को अपनाने के लिए नये-नये प्रौद्योगिकीय विकास एवं वैज्ञानिक प्रगति की जानकारी रखना आवश्यक होता है। आज कोई भी व्यवसाय नयी प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक विधियों की उपेक्षा करके विकास नहीं कर सकता।

1.5 व्यावसायिक पर्यावरण के घटक (Components of Business Environment)

व्यवसाय-परिवेश अत्यन्त विशाल एवं जटिल है। साथ ही, व्यावसायिक पर्यावरण प्रतिक्षण परिवर्तनशील है। इसकी शक्तियां, दशाएं एवं प्रभाव निरन्तर परिवर्तित होते रहते है। इसके विभिन्न घटक निम्न है -

1. **आर्थिक घटक -** इसमें आर्थिक घटनाएं, आर्थिक नीतियां, मांग, पूर्ति, विनियोग, औद्योगिक प्रवृत्तियां, वित्तीय एवं आर्थिक दबाव, विनियोग, आयात-निर्यात, राजकोषीय व करा धन नीतियां, मौद्रिक नीति आदि सम्मिलित किये जाते है।
2. **भौगोलिक एवं पारिस्थितिक घटक -** इसमें प्राकृतिक संसाधन, पर्यावरण, जलवायु स्थलाकृतिक, समुद्री एवं आकाशीय संरचना, भूगर्भीय संसाधन, चुम्बकीय एवं सौर-ऊर्जा आदि सम्मिलित किये जाते है।
3. **राजनीतिक घटक-** इसमें मुख्य रूप से राजनीतिक व शासकीय व्यवस्था, आर्थिक व शासन प्रणाली राजनीतिक दृष्टि, प्रशासनिक संस्थाऐं, संवैधानिक व्यवस्था, सुरक्षा आदि सम्मिलित किये जाते है।
4. **सामाजिक-सांस्कृतिक घटक-** इसमें सामाजिक मूल्य, प्रथाएं, आस्थाएं, धारणाएं, सामाजिक व्यवस्था, भौतिकवाद, धर्म, संस्कृति, संस्कार आदि प्रमुख माने जाते है।
5. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी घटक-** इसमें वैज्ञानिक शोध, प्रौद्योगिकी विकास, यान्त्रिकी, आणविक शक्ति, सैटेलाइट सम्प्रेषण, नाभिकीय शोध, आकाशीय शोध, प्रयोगशालाएं आदि प्रमुख माने जाते है।
6. **वैधानिक एवं न्यायिक घटक-** इसमें न्याय व्यवस्था, विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक, औद्योगिक, श्रम नियन्त्रण सन्नियम, प्रशासन व्यवस्था आदि मुख्य माने जाते है।
7. **अन्य घटक -** पर्यावरण के अन्य घटकों में जनसंख्या, शैक्षिक स्तर, उपभोक्ता-व्यवहार, सुरक्षा, संकट व खतरे, अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियां, औद्योगिकी शान्ति व संघर्ष आदि प्रमुख है।

व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकार

व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकारों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-

1. आन्तरिक पर्यावरण (Internal Environment), तथा
2. बाह्य पर्यावरण (External Environment)

I. **व्यवसाय का आन्तरिक पर्यावरण (Internal Environment of Business) -** यह माना जाता है कि व्यवसाय के आन्तरिक पर्यावरण पर नियन्त्रण रखना आसान होता है एवं यह नियन्त्रण योग्य है। लेकिन, इसमें भी निरन्तर जटिलताऐं एवं बाधाऐं उत्पन्न होती रहती है। इसलिए व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण की पहचान करना तथा इसे पूर्ण रूप से समझना महत्वपूर्ण है।

व्यवसाय के आन्तरिक पर्यावरण में अग्रलिखित घटक शामिल किये जाते है -

1. व्यावसायिक एवं प्रबन्धकीय नीतियां।
2. व्यावसायिक लक्ष्य एवं उद्देश्य।
3. व्यावसायिक विचारधाराएं, प्रबन्धकीय दर्शन एवं दृष्टिकोण।
4. व्यावसायिक संसाधनों की उपलब्धि, कार्यशीलता एवं उपादेयता।
5. व्यावसायिक क्षमता एवं वृद्धि सम्भावनाएं।
6. उत्पादन प्रणाली, अभिकल्पना यन्त्र एवं तकनीकें।
7. श्रम एवं प्रबन्ध की कुशलता व सक्षमता का स्तर।
8. कार्य का समग्र वातावरण
9. व्यावसायिक संगठन संरचना, विकेन्द्रीकरण, विभागीयकरण, दायित्व, भूमिकाएं, शक्ति, समूह, दबाव।
10. व्यावसायिक योजनाऐं।
11. व्यावसायिक प्रबन्ध सूचना प्रणाली एवं सम्प्रेषण व्यवस्था।
12. सामाजिक दायित्वों के प्रति दृष्टिकोण।
13. व्यावसायिक दृष्टि।

II. व्यवसाय का बाह्य पर्यावरण (External Environment of Business) - व्यवसाय किसी रिक्तता में संचालित नहीं किया जाता, वरन् समाज के अन्तर्गत कार्यशील विभिन्न शक्तियों, दशाओं एवं तत्वों की अनुक्रिया में किया जाता है। ये पर्यावरण की वास्तविकताएं व्यवसाय के संचालन एवं प्रगति को प्रभावित करती रहती है। अत: व्यावसायिक निर्णय-कर्ताओं को सदा पर्यावरण के प्रभावों को स्वीकार करके अपनी योजनाएँ बनानी चाहिए। बाह्य पर्यावरण में निम्नलिखित तत्वों को शामिल किया जा सकता है -

1. **भौतिक पर्यावरण (Physical Environment) -** व्यवसाय का भौतिक पर्यावरण न केवल व्यवसाय की संरचना को प्रभावित करता है वरन् इसके भावी विकास को भी निर्धारित करता है। व्यवसाय एवं प्रकृति का गहरा सम्बन्ध है। भौतिक वातावरण व्यवसाय के उत्पादों, मांग प्रारूप, विपणन, लागत संरचना, सामग्री उपयोग, मूल्य, पूर्ति-प्रवाह, व्यापार प्रसार, उपभोक्ता व्यवहार एवं व्यवसाय को दी जाने वाली सामाजिक स्वीकृति को प्रभावित करता है। आजकल

पर्यावरण नियन्त्रण, सन्तुलन एवं स्वच्छता की समस्या वैधानिक ही नहीं बल्कि व्यावसायिक पहलू भी है।

भौतिक वातावरण में प्रमुखत: निम्नलिखित को शामिल किया जाता है -

1. **प्राकृतिक संसाधन -** भूमि, खनिज, तेल, कोयला, सौर-ऊर्जा, कच्चा माल एवं जल।
2. **जलवायु -** वर्षा, नमी, तापमान, बर्फीले और रेगिस्तानी प्रभाव।
3. **स्थानाकृति -** पहाड़, पठार, मैदान, समुद्र, नदियां, नहरें, बन्दरगाह आदि।
4. **पर्यावरण -** प्राकृतिक पर्यावरण जो पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, वायु अग्नि, आकाश) से बना है। इसमें वन सम्पदा एवं वन संरक्षण भी महत्वपूर्ण है।

भौतिक पर्यावरण में मनुष्य द्वारा निर्मित व विकसित भौतिक सुविधाओं को भी सम्मिलित किया जाता हैं ये ऐसी भौतिक सुविधाएं है जो व्यवसाय एवं उद्योगों के विकास के लिए एक पूर्व शर्त एवं एक सुदृढ़ आधार मानी जाती है। इनमें विद्युत एवं ऊर्जा, आधारभूत संरचना तथा लोक उपयोगी सेवाओं को शामिल किया जाता है।

2. **जनांकिकीय पर्यावरण (Demographic Environment) -** व्यावसायिक क्रियाओं द्वारा जनित सेवाएं तथा उत्पाद मनुष्यों के लिए ही लक्षित किये जाते है। इस विपणन प्रधान युग में जनसंख्या के विभिन्न आयामों जैसे-आयु, घनत्व, जन्मदर, मृत्युदर, आवागमन प्रवृत्ति, भौगोलिक फैलाव, जनसंख्या में बच्चे और वृद्धों का हिस्सा, विवाहित जोड़े, धर्म, जाति, लिंग, स्थानानुसार जनसंख्या का वितरण आदि का महत्व बढ़ गया है। बाजारों के विकास एवं प्रगति में जनसंख्या के हर वर्ग का स्थान है। लोगों की आवश्यकताऐं, रूचि, फैशन, स्टाइल, उपभोग, प्रवृत्तियां, क्रय शक्ति आदि व्यवसाय के लिए हमेशा ध्यानाकर्षण का केन्द्र रहे है।

विश्व जनसंख्या वृद्धि ने जहां एक ओर सभी देशों के सक्षम चुनौतियां उत्पन्न की हैं, वहीं दूसरी ओर व्यवसाय ने बढ़ती हुयी जनसंख्या एवं आवश्यकताओं की पूर्ति की चुनौतियों को स्वीकार किया है। इसके बावजूद प्राकृतिक संसाधन बढ़ती हुई जनसंख्या के मुकाबले कम पड़ते जा रहे है। वांछित जीवन-स्तर को बनाये रखना एक बड़ी समस्या बनी हुई है।

3. **आर्थिक पर्यावरण (Economic Environment)-** प्रत्येक प्रकार का व्यवसाय आर्थिक पर्यावरण जैसे-पूंजी, संयन्त्र एवं मशीनें, भवन, स्टॉक, कार्यालय उपकरण-नकद संसाधन आदि से गहन रूप से प्रभावित होता है। अर्थव्यवस्था में कुशल श्रमिकों एवं तकनीशियनों की उपलब्धि एवं कीमत भी व्यवसाय क लिए महत्वपूर्ण होती है। देश का कीमत स्तर, उत्पादकता, सरकार की कर नीति भी व्यावसायिक क्रियाओं को प्रभावित करती है।

इसके अतिरिक्त आर्थिक पर्यावरण के दो महत्वपूर्ण घटक है- व्यवसाय के साहसी एवं प्रबन्धक तथा इसके ग्राहक। जोखिमों को झेलने का साहस, नवाचार की योग्यता व प्रशिक्षित प्रबन्ध, व्यवसाय की पतिस्पर्धात्मक स्थिति को सुदृढ़ बनाता है। ग्राहकों की प्रवृत्तियों, इच्छाओं आशाओं व बदलती हुई आवश्यकतानुसार के अनुरूप व्यवसाय का संचालन आवश्यक है।

व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण में मुख्यत: तीन घटकों-देश की आर्थिक प्रणाली, देश की आर्थिक नीतियां तथा देश में विद्यमान आर्थिक दशाओं का समावेश होता है।

a) **आर्थिक प्रणाली (Economic System) -** व्यवसाय की दृष्टि से किसी देश के आर्थिक वातावरण को समझने के लिए उस देश की आर्थिक प्रणाली को अपने लक्ष्य व उद्देश्य निर्धारित करने में मदद मिलती है। किसी भी देश की आर्थिक प्रणाली उस देश की आर्थिक विचाराधारा, आर्थिक संरचना तथा आर्थिक खुलेपन को प्रदर्शित करती है। इसके अध्ययन से व्यवसाय को अपने लक्ष्य व उद्देश्य निर्धारित करने में मदद मिलती है।

आर्थिक प्रणालियां मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है - पूंजीवादी प्रणाली व समाजवादी प्रणाली। इसके अलावा एक प्रणाली इन दोनों का मिला-जुला रूप मिश्रित प्रणाली होती है।

b) **आर्थिक नीतियां (Economic Policies) -** किसी देश की आर्थिक नीतियां उस देश में पनपने वाले व्यवसाय, उद्योग एवं आर्थिक क्रियाओं को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। आर्थिक क्रियाओं में उतार-चढाव, वृद्धि-संकुचन, स्थानीयकरण, निर्यात संवर्धन, विस्तार, विकास, शोध, प्रतिस्पर्धा आदि उस देश की आर्थिक नीतियों से प्रभावित होते है। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में आर्थिक नीतियों का निर्धारण आर्थिक समानता, रोजगार सृजन, स्थायित्व, गरीबी निवारण, मुद्रा स्फीति एवं मुद्रा संकुचन पर नियन्त्रण, साधन आवंटन, आय वृद्धि, आन्तरिक बचत एवं विनियोजन, पूंजी निर्माण, निर्यात संवर्धन, विदेशी विनियोजन, विदेशी विनियम सन्तुलन आदि लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

एक देश की आर्थिक नीतियों में निम्नलिखित नीतियां सम्मिलित होती है -

- औद्योगिक नीति।
- औद्योगिक अनुज्ञापत्र नीति।
- मौद्रिक नीति।
- राजकोषीय नीति।
- आय, रोजगार एवं मूल्य नीति।
- आयात-निर्यात नीति।
- खनिज नीति एवं प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं विदोहन के लिए नीति।
- आन्तरिक विनियोजन एवं विदेशी विनियोजन नीति।
- कृषि नीति।

c) **आर्थिक दशाएं (Economic Conditions) -** आर्थिक दशाएं एक और आर्थिक प्रगति का सूचक मानी जाती है तो दूसरी ओर आर्थिक विकास की सम्भावनाओं का आधार तैयार करती है। व्यवसाय के लिए आर्थिक दशाओं का महत्व व्यावसायिक सम्भावनाओं व अवसरों की पूर्ति से जुड़ा हुआ है। सरकार आर्थिक दशाओं को नियोजन एवं विकास का आधार मानकर अनेक कार्यक्रमों का संचालन करती है। आर्थिक दशाएं, इनमें सुधार तथा आर्थिक समृद्धि लोगों के जीवन स्तर तथा जीवन की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती है। व्यवसाय के लिए लोगों का उपभोग का स्तर व प्रारूप, जीवन स्तर तथा जन सामान्य की आर्थिक समृद्धि अनके दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। व्यवसाय इनके आधार पर अपने विस्तार एवं विकास, नये बाजारों की खोज, नये उत्पादों की शुरूआत, विज्ञापन रणनीति, व्यावसायिक उपक्रमों का स्थानीयकरण, शत-प्रतिशत निर्यात उपक्रमों की स्थापना, विभिन्न उत्पादों का सम्मिश्रण, नयी उत्पादक अभिकल्पनाएं, नये मॉडल आदि के बारे में योजनाएं एवं कार्यक्रम तैयार करता है।

सामान्यतया आर्थिक दशाओं में -

- प्राकृतिक संसाधनों की पूर्ति
- मानवीय संसाधनों का उपयोग,
- आर्थिक विकास एवं प्रगति का स्तर,
- राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय तथा वितरण,
- पूंजी निर्माण,
- विदेशी पूंजी
- उपभोग का स्तर,
- सामान्य मूल्य स्तर
- बाजार का आकार
- उद्यमशीलता एवं साहस,
- व्यावसायिक संरचना
- देश में आर्थिक मूलभूत ढांचा
- विदेशी व्यापार वे विदेशी मुद्रा अर्जन
- नवाचार एवं कौशल निर्माण
- मौद्रिक ढ़ांचा, बैंकिंग प्रणाली इत्यादि को शामिल किया जाता है।

4. **प्रौद्योगिक पर्यावरण (Technological Environment) -** राष्ट्र का तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी विकास, उत्पादन की प्रणालियों, नई वस्तुओं, नये बाजार, नये कच्चे माल के स्त्रोत, नये यन्त्र व उपकरण, नयी सेवाओं आदि को प्रभावित करता है। तकनीकी प्रगति के कारण ही उद्योगों में क्रान्ति सम्भव हुई है।

प्रौद्योगिकीय परिवर्तन ने व्यवसाय की प्रणाली एवं ढांचे को पूर्णत: नवीन कर दिया है। तेज गति से होने वाले तकनीकी पर्यावरण के परिवर्तनों को व्यवसाय के द्वारा अच्छी तरह समझने, इन्हें आवश्यकतानुसार अपनाने तथा व्यवसाय को बदलते परिवेश में गतिशील रखने की आवश्यकता है।

5. **सामाजिक पर्यावरण (Social Environment) -** व्यवसाय का सामाजिक पर्यावरण समाज की प्रवृत्तियों, इच्छाओं, आकांक्षाओं, शिक्षा एवं बौद्धिक स्तर, मूल्य, विश्वास, रीति-रिवाज एवं परम्पराओं आदि घटकों से निर्मित होता है। इन तत्वों की अवहेलना करके व्यवसाय प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। सामाजिक परिवेश के प्रति संचेतना ही व्यावसायिक संस्थाओं की गरिमा बढ़ाती है।

पिछले कुछ दशकों में नवीन सामाजिक मान्यताओं का सृजन हुआ है, व्यावसायिक दर्शन के निर्माण में इनका महत्वपूर्ण योगदान हो रहा है। ये निम्नलिखित है -

- समाज में यह विश्वास बढ़ा है कि कार्य की इच्छा एवं क्षमता रखने वाले व्यक्तियों के लिए समाज में सदा 'अवसर' विद्यमान रहते है,
- व्यवसाय के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास
- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतियोगिता की भावना का विकास
- जाति, धर्म और सम्प्रदाय से परे 'व्यक्ति' के प्रति आदर भावना

- सम्पत्ति ज्ञान, शैक्षिक स्तर व सामाजिक प्रतिष्ठा पर सत्ता के प्रति विश्वास
- ज्ञान व शिक्षा के प्रति प्रेम,
- तर्क, विज्ञान एवं तकनीकी में विश्वास
- कार्य में नये ढंगों के विकसित करने हेतु परिवर्तन एवं प्रयोग का महत्व
- जीवन की उच्च गुणवत्ता में विश्वास।

समाज के इस नवीन परिवर्तनों ने व्यवसाय की कार्य पद्धतियों एवं प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये है।

6. **राजनीतिक, शासकीय एवं प्रशासनिक पर्यावरण (Political Goverment and Administrative Environment) -** राजनीति, सरकार, प्रशासन तथा व्यवसाय के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाएं व्यवसाय की कार्यशीलता को प्रभावित करती है। व्यवसाय की अनेक सरंचनाओं का जन्म राजनीतिक निर्णयों के कारण होता है। कई बार विपरीत प्रभाव डालने वाले राजनीतिक निर्णय व्यवसाय की पूरी दिशा ही बदल देते है।

राजनीतिक निर्णय अनेक कारणों से प्रभावित व शासित होते है। इनमें विचारधाराएं, चिन्तन, जन-कल्याण, जनसेवा, राजनीतिक दबाव, अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव, स्वार्थ भावना, समूह विशेष का दबाव - जो सामाजिक व असामाजिक तत्वों के हो सकते हैं, राष्ट्रीय सुरक्षा, एकता तथा राष्ट्रहित आदि महत्वपूर्ण है। राजनीतिक निर्णयों को व्यवसाय द्वारा व्यापक परिवेश में स्वीकार किया जाता है तथा इनके अनुसार अपनी कार्य विधि में समायोजन के प्रयास किये जाते है। राजनीतिक पक्ष के साथ जो दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष सरकारी या शासकीय पक्ष है। विभिन्न सत्ताधारी सरकारें अलग-अलग प्रकार से व्यवसाय को प्रभावित करती है। अपने निर्णयों का कठोरता या नरमी से पालन तथा विवेकपूर्ण शक्तियों का प्रयोग अनेक भिन्नताएं लिए होता है। फिर सभी निर्णय समानता एवं एकरूपता से लागू नहीं कराये जाते है। इसके कारण भी व्यवसाय को अनके विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है।

व्यवसाय के लिए प्रशासकीय वर्ग भी काफी महत्वपूर्ण है। राजनीतिक एवं शासकीय निर्णयों की अनुपालना प्रशासनिक स्तर पर की जाती है। धीमी गति, मनमानी, भ्रष्टाचार, कार्य में बाधाएं खड़ी करना आदि कारणों से प्रशासनिक तन्त्र चर्चाओं में रहता है। इसके कारण इसे नौकरशाही व लालफीताशाही जैसे नामों से जाना जाने लगा है।

अत: व्यवसाय के लिए राजनीतिक, शासकीय तथा प्रशासकीय पर्यावरण से परिचित होना तथा समयानुसार इस पर्यावरण से व्यावसायिक हितों की पूर्ति करना आवश्यक होता है।

7. **वैधानिक पर्यावरण (legal Environment) -** किसी देश का वैधानिक पर्यावरण उसके आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को प्रभावित करता है। वैधानिक पर्यावरण से व्यवसाय की संरक्षण मिलने के साथ-साथ सही ढंग से कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सकता हैं। वैधानिक ढांचे द्वारा जनहित की अभिवृद्धि के प्रयास किये जाते है। कानून द्वारा सामाजिक कल्याण एवं जन आकांक्षाओं के लिए व्यावसायिक क्रियाओं पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये जाते है।

वैधानिक पर्यावरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हैं। इसके द्वारा आर्थिक जगत में व्यवसाय के सभी पहलुओं पर नियन्त्रण रखा जाता है। व्यवसाय से सम्बन्धित क्रियाएं जैसे-अनुज्ञापन, एकाधिकार व प्रतिबन्धित सव्यवहार, प्रतिभूति निर्गमन, स्कन्ध एवं उपज विपणि, सम्पत्ति एवं

सम्पदा, एजेन्सी, विनिमय साध्य प्रलेख, बैंकों की क्रियाऐं, कम्पनियों के निर्माण से लेकर समापन के बाद तक की क्रियाऐं, प्रत्याभूति, निक्षेप, साझेदारी, बीमा, विदेशी विनिमय, उपभोक्ता हित, व्यावसायिक अपराध, प्रदूषण आदि का वैधानिक पर्यावरण में शामिल किया जाता है।

8. **नैतिक पर्यावरण (Moral Environment) -** व्यवसाय को समाज के नैतिक मूल्यों का पालन करना होता है। जटिल व्यावसायिक परिवेश में नैतिक सिद्धान्त एवं संहिताएं प्रबन्धकों के व्यवहार का मार्गदर्शन करती है। विश्व के सफलतम राष्ट्रों - जापान, जर्मनी, अमेरिका ने व्यावसायिक नीति शास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्षेत्र में सफलताऐं प्राप्त की हैं। नैतिक मापदण्डों एवं आदर्शों को ध्यान में रखकर ही व्यवसाय के साधनो तथा साध्यों का निर्धारण होता है।

प्रतिस्पर्धा, कीमत व किस्म निर्धारण, आय वितरण, विज्ञापन, विक्रय, कार्य की दशायें, श्रम कल्याण व सामाजिक सुरक्षा आदि से सम्बन्धित निर्णय नैतिक परिवेश में ही लिये जा रहे है। आज व्यवसाय शहरीकरण, प्रदूषण, शोरगुल, गन्दी औद्योगिकी बस्तियां आदि की समस्याओं के समाधान खोज रहा है। व्यावसायिक क्रियाओं को नीतिशास्त्र के अनुकूल संचालित करने के लिए कानून तथा सरकार विशेष ध्यान दे रही है।

9. **सांस्कृतिक पर्यावरण (Cultural Environment) -** राष्ट्र की संस्कृति उसकी कला, साहित्य एवं जीवन-ढंग से परिलक्षित होती हैं। संस्कृति व्यक्तियों के दृष्टिकोण एवं मानसिक विकास को भी स्पष्ट करती हैं राष्ट्र का सांस्कृतिक विकास ही व्यवसाय के प्रति जनमत एवं जन प्रवृत्तियों को प्रभावित करता है।

बाजार एवं मांग को प्रभावित करके राष्ट्र की संस्कृति व्यवसायियों के निर्णयों को प्रभावित करती है। सम्पूर्ण विश्व में बढ़ रहे नारी स्वतन्त्रता आन्दोलन, औषध-संस्कृति, युवा-केन्द्रित समाज, हिप्पीवाद आदि सांस्कृतिक व्यावसायिक नीतियों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते है।

समाज में संस्कृति व्यवसाय के मूल आधार है। कोई भी व्यवसाय देश की सांस्कृतिक विरासत एवं मूल्यों की अनदेखी नहीं कर सकता। 'संस्कृति लोगों के जीने का सम्पूर्ण तरीका' मानी जाती है। यह सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार है जिसमें मुख्य रूप से ज्ञान, विश्वास, परम्पराएं, रीति-रिवाज, आदर्श एवं पसन्द प्राथमिकताएं सम्मिलित है। संस्कृति के ये मौलिक तत्व व्यावसायिक नियोजन एवं व्यूह रचनाऐं तैयार करने का आधार बनते है।

10. **अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण (International Environment) -** संचार, परिवहन, तकनीकी, प्रौद्योगिकी, बहुराष्ट्रीय संस्थाओं का प्रवेश, राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों की सुदृढ़ता एवं अनेक क्षेत्रों में आये तीव्र परिवर्तनों से सभी तरह की दूरियां कम हुई है। इन्ही के परिणामस्वरूप एक देश का दूसरे अन्य देशों पर प्रभाव पड़ता हैं अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में भी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक, वैधानिक तथा पर्यावरण जैसे पहलू समाहित है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाऐं एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम अपने प्रभावों का संचरण तेजी से करते है। व्यावसायिक एवं औद्योगिक स्तर को ऊंचा होने तथा व्यावसायिक दौड़ में अनेक विकसित देशों का आगे होना भी अन्य देशों के व्यवसाय को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करते है।

अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के प्रभाव से ही विभिन्न देशों के बीच विचारों का आदान-प्रदान, समझौते, सहयोग एवं अनेक प्रकार की सहायताएं सम्भव हो सकी है। आज पर्यावरण को बचाने का आन्दोलन तथा इसके प्रति जन चेतना जागृत करने का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के प्रभाव की ही देन है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं ही अन्य देशों को आने वाले खतरों की चेतावनी देती है। जैसे जनसंख्या विस्फोट, आर्थिक व वित्तीय स्थिति, देश की सुरक्षा कलैन्डर व एड्स जैसे विकराल रोग, सौर मण्डल व ओजोन पर्त, शस्त्रीकरण, परमाणु शक्ति आदि।

1.6 सारांश (Summary)

व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी आर्थिक संदर्भों की व्याख्या करता है जिनके अन्तर्गत एक व्यावसायिक फर्म अपना व्यवसाय करती है। पर्यावरण उन विभिन्न घटकों से मिलकर बनता है जिनके अंतर्गत किसी व्यवसाय का कार्य किया जाता है। इससे आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, वैधानिक व अन्तर्राष्ट्रीय घटकों को सम्मिलित किया जाता है। व्यवसाय की सफलता एवं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये इन सभी घटकों का ध्यान रखा जाता है।

1.7 शब्दावली

व्यवसाय - लाभार्जन के लिये की जाने वाली क्रियाऐं।

उपभोग - उपभोक्ता द्वारा संतुष्टि प्राप्त करने के लिये वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग।

निर्णयन - किसी समस्या विशेष के समाधान के लिए अनके विकल्पों में से किसी एक विकल्प के चयन की प्रक्रिया।

आर्थिक चर - एक संगठन की क्रियाओं को प्रभावित करने वाले आर्थिक घटक।

आगत - एक संगठन की प्रणाली में प्रवेश करने वाले पर्यावरणीय संसाधन।

प्रबंध - एक संगठन के कार्यो की योजना बनाने, व्यवस्था करने, नेतृत्व व नियंत्रण की प्रक्रिया

नीति - वे मार्गदर्शक सिद्धांत जो निर्णय कार्य करने वालों के लिये निर्धारित होते है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था - वह अर्थव्यवस्था जिसमें निजी व सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों की उपस्थिति होती है।

आयोजन - एक कार्य को करने से पूर्व उद्देश्य व कार्यक्रम निश्चित करने की प्रक्रिया।

निजी क्षेत्र - अर्थव्यवस्था का वह क्षेत्र जिसमें उत्पादन साधनों पर निजी क्षेत्र का अधिकार होता है तथा लाभ उद्देश्य के लिय कार्य किये जाते है।

प्रौद्योगिकी - उत्पादन तथा विज्ञान में होने वाली नवीन गतिविधियां जिनसे व्यवसाय की कार्य पद्धति प्रभावित होती है।

1.8 स्वपरख प्रश्न

1. व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषा बताते हुए इसके अध्ययन का महत्व बताइये।
2. व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिये।
3. "व्यवसाय पर्यावरण की उपज है" स्पष्ट कीजिये।
4. व्यवसाय के बाह्य पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं का विस्तार से विवेचन कीजिये।

इकाई-2

मौद्रिक नीति

(Monetary Policy)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मौद्रिक नीति की परिभाषाऐं

2.3 मौद्रिक नीति के उद्देश्य

2.4 मौद्रिक नीति के प्रकार

2.5 मौद्रिक नीति की उपयोगिता व महत्व

2.6 मौद्रिक नीति के उपकरण

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 स्वपरख प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगें कि :

- मौद्रिक नीति का अर्थ व परिभाषाओं का वर्णन कर सकें।
- मौद्रिक नीति के उद्देश्य स्पष्ट कर सकें।
- मौद्रिक नीति की उपयोगिता व महत्व के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- मौद्रिक नीति के विभिन्न उपकरणों का अर्थ व उनके प्रभाव का विश्लेषण कर सकें।
- यह बता सकें कि मौद्रिक नीति का अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है।

2.1 प्रस्तावना

वर्तमान में मौद्रिक नीति को आर्थिक स्थिरीकरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना जाता है। संक्षेप में मौद्रिक नीति का आशय एक देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण के लिये अपनाये गये उपायों से हैं। अन्य शब्दो में, मुद्रा तथा साख की पूर्ति का एक निर्धारित स्तर बनाये रखने के लिये जो नीति अपनायी जाती है उसे मौद्रिक नीति कहा जाता है। सामान्यता मुद्रा तथा साख की पूर्ति निम्नलिखित चार प्रकार से प्रभावित की जा सकती है :-

i. मात्रा में परिवर्तन द्वारा
ii. गति में परिवर्तन द्वारा
iii. मुद्रा या साख की उपलब्धि में परिवर्तन द्वारा, तथा
iv. मुद्रा की लागत अर्थात ब्याज दरों में परिवर्तन द्वारा।

2.2 मौद्रिक नीति की परिभाषाऐं (Definitions of Monetary Policy)

1. **जॉनसन (Johnson)** के अनुसार, "मौद्रिक नीति का आशय केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा की पूर्ति पर नियंत्रण रखने की नीति से है, ताकि सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्य पूरे हो सके।"
2. **प्रो. केन्द्र (Kant)** के अनुसार, "मौद्रिक नीति का आशय एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिये चलन के विस्तार और संकुचन की व्यवस्था करने से है।"
3. **पॉल एजिंग (Paul Einzing)** के अनुसार, "मौद्रिक नीति के अन्तर्गत उन सभी मौद्रिक निर्णयों और उपायों को सम्मिलित किया जाता हे जिनका उद्देश्य मौद्रिक प्रणाली को प्रभावित करना होता है।"

स्पष्ट है कि मौद्रिक नीति में निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुद्रा एवं साख की मात्रा को नियमित एवं नियंत्रित किया जाता है। एक अच्छी मौद्रिक नीति वह है जिसमें आन्तरिक मूल्य स्तर में सापेक्षिक स्थिरता, विनिमय दरों में स्थायित्व, आर्थिक विकास, आर्थिक स्थिरता और रोजगार की समुचित व्यवस्था की जा सके। मौद्रिक नीति के कोई निश्चित व अपरिवर्तनशील सिद्धान्त नहीं होते है, देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

2.3 मौद्रिक नीति के उद्देश्य (Objectives of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य है :

1. **मूल्यों में स्थायित्व (Price Stability) -** मूल्यों में स्थायित्व का तात्पर्य वस्तुओं के मूल्यों में होने वाले अत्यधिक उतार-चढ़ाव को रोकना होता है। कीमत स्तर इस प्रकार का होना चाहिए कि वह विनियोगकर्त्ता के अनुकूल हो और उपभोक्ता वर्ग के लिए भी न्यायोचित हो। अर्थव्यवस्था में कीमतों के निरन्तर उतार-चढ़ाव से विनियोग, उत्पादन, आय, प्रभावी मांग तथा राष्ट्रीय आय पर व्यापक प्रभाव पड़ता हैं। मौद्रिक नीति में आवश्यक परिवर्तन द्वारा कीमत-स्तर को नियन्त्रित किया जा सकता है और अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण चरों की गति को सीमित किया जा सकता है तथा अर्थव्यवस्था में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

2. **विनिमय दरों में स्थायित्व (Stability in Exchange Rates) -** विनियम दर में स्थापित मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य माना जाता है। जिन देशों में विदेशी विनिमय की दर अस्थिर होती है, वहां अन्य राष्ट्रों से विदेशी व्यापार व विदेशी पूंजी का प्रवाह अवरूद्ध हो जाता है जिससे इन देशों, विशेषत: अर्द्ध-विकसित देशों में आर्थिक विकास के समक्ष वित्तीय समस्याऐं उपस्थित हो जाती है। मौद्रिक नीति द्वारा विनियम दरों को स्थायित्व दिया जा सकता है।

3. **पूर्ण रोजगार की प्राप्ति (Attainment of Full Employment) -** किसी देश में पूर्ण रोजगार की अवस्था आर्थिक विकास और प्राकृतिक साधनों के अनुकूलतम उपयोग की प्रतीक होती है। अत: बचत और विनियोग में साम्य स्थापित करके पूर्ण रोजगार के लक्ष्य की प्राप्ति भी मौद्रिक नीति का आवश्यक उद्देश्य होता है।

4. **आर्थिक विकास (Economic Development) -** मौद्रिक नीति आर्थिक विकास को बढ़ाने और उसका उच्च स्तर बनाये रखने के लिए अपनायी जाती है। मौद्रिक नीति आर्थिक उतार-चढ़ावों पर नियंत्रण स्थापित कर सन्तुलित आर्थिक विकास में वृद्धि के लिए प्रभावी ढंग से बचतों को उत्प्रेरित करने तथा इन्हें नियोजित ढंग से विनियोग करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

5. **मुद्रा की तटस्थता (Neutral Money) -** अनेक अर्थशास्त्रियों का मत है कि मौद्रिक नीति का उद्देश्य मुद्रा की तटस्थता होना चाहिए अर्थात् मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन नही होना चाहिए ताकि देश की अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त न हो। अत: मौद्रिक नीति का उद्देश्य इस संतुलन को बनाये रखना है।

6. **आय में स्थिरता (Stability in Income) -** मौद्रिक नीति द्वारा व्यापार-चक्रों पर नियन्त्रण लगाकर जनता की आय में अस्थिरता को कम किया जा सकता है। मौद्रिक नीति मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकुचन के कारण उत्पन्न अस्थिरता को कम करने में सहायक होती है।

7. **बचत एवं विनियोग में साम्य (Equilibrium between Savings and Investment)** - मौद्रिक नीति का उद्देश्य बचत एवं विनियोग में संतुलन स्थापित करना है ताकि पूर्ण रोजगार के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें। मौद्रिक नीति द्वारा जनता की आय बढ़ाकर बाजार की अपूर्णताओं को दूर करना है ताकि वे बचत के लिए प्रोत्साहित हो सकें। इसके द्वारा विनियोग को भी प्रोत्साहन मिलता है।

8. **आर्थिक स्थिरता (Economic Stability) -** विकसित देशों में मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक स्थिरता बनाये रखना होता है। उचित मौद्रिक नीति के माध्यम से मौद्रिक अधिकारी मुद्रा की मांग व पूर्ति में साम्य बनाये रख सकता हैं। इससे आर्थिक उच्चावचनों को नियंत्रित किया जा सकता है।

9. **विकास के लिए साधन उपलब्ध करना (To Provide Resources for Economic Development) -** विकासशील देशों में विकास के लिए वित्तीय साधनों का अभाव रहता है। उचित मौद्रिक नीति अपनाकर आवश्यकतानुसार मुद्रा एवं साख की पूर्ति बढ़ायी जा सकती हैं जो आर्थिक विकास में सहायक होती है।

2.4 मौद्रिक नीति के प्रकार (Types of Monetary Policy)

1. **सस्ती मौद्रिक नीति (Cheap Monetary Policy) -** सस्ती मौद्रिक नीति वह होती है जिसमें कम ब्याज दर एवं आसान शर्तों पर ऋण प्रदान किया जाता है। इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा एवं साख की मात्रा बढ़ जाती है। व्यापारियों एवं उद्योगपतियों को आसानी से ऋण मिल जाता है। जिससे उद्योग व व्यापार का विस्तार होता है तथा रोजगार के अवसर बढ़ते है। मुद्रा संकुचन के दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए सस्ती मौद्रिक एवं साख नीति अपनायी जाती है।

2. **मंहगी मौद्रिक नीति (Dear Monetary Policy) -** इस नीति में ऊंची ब्याज दर तथा ऋण स्वीकार करने के लिए कठोर शर्तें लगा दी जाती है। इससे उद्योगपतियों एवं व्यापारियों को आसानी से ऋण नहीं मिल पाते है। मंहगी मौद्रिक नीति द्वारा अर्थव्यवस्था में मुद्रा के प्रवाह को कम किया जाता है। इससे उत्पादन, व्यापार एवं रोजगार में कमी होती हैं। अर्थव्यवस्था में व्याप्त

मुद्रा प्रसार की स्थिति को नियन्त्रित करने के लिए मंहगी मौद्रिक एवं साख नीति अपनाई जाती है।

2.5 मौद्रिक नीति की उपयोगिता एवं महत्व (Utility and Importance of Monetary Policy)

विकासशील देशों में बेरोजगारी, आर्थिक अस्थिरता, मूल्य वृद्धि, निर्धनता, बाज़ार की अपूर्णता, विनियोग व बचत की कमी, आर्थिक उच्चावचन एवं अनेक विसंगतियां पायी जाती है। इन देशों में अन्य उपायों के साथ मौद्रिक नीति भी इन समस्याओं को हल करने में सहयोग करती है। इन देशों में मुद्रा स्फीति के कारण मूल्यों में वृद्धि व भुगतान असाम्यता का संकट बना रहता है। जो इनकी आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देता है। मौद्रिक नीति इन सब समस्याओं को हल करने में योगदान करती है। विकासशील देशों के लिए मौद्रिक नीति की उपयोगिता को निम्नलिखित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है :-

1. **आर्थिक विकास (Economic Development) -** मौद्रिक नीति अपने विभिन्न उपायों, जैसे कीमत स्थिरता, पूर्ण रोजगार आदि के माध्यम से आर्थिक विकास को बढ़ाने में सहायक होती हैं। सरकार मौद्रिक नीति द्वारा आर्थिक उतार-चढ़ावों को रोक कर संतुलित आर्थिक विकास का प्रयास करती है। सरकार मौद्रिक नीति द्वारा बचतों व विनियोगों को संतुलित करके मुद्रा स्फीति की दशा में भी आर्थिक प्रगति को सम्भव बना सकती है।

2. **पूंजी निर्माण (Capital Formation) -** मौद्रिक नीति के माध्यम से सरकार बचतों को प्रोत्साहित कर ऐसे कार्यो में लगा सकती है जिनसे आर्थिक विकास में वृद्धि हो। मौद्रिक नीति द्वारा बचतों को प्रोत्साहित कर उनका उपयुक्त कार्यो में विनियोग करके आर्थिक विकास को बढ़ाया जा सकता हैं। इस प्रकार मौद्रिक नीति द्वारा पूंजी निर्माण को बढ़ाकर राष्ट्र का आर्थिक विकास किया जा सकता है।

3. **मुद्रा की मांग की पूर्ति में संतुलन (Equilibrium in Demand and Supply of Money) -** मौद्रिक नीति द्वारा सरकार साख की मांग व पूर्ति में संतुलन स्थापित करके अनेक मौद्रिक संकटों से देश को बचाने में मदद करती है। सरकार मुद्रा संबंधी मांग व पूर्ति में संतुलन हेतु अनुकूल साख नियन्त्रण करके आर्थिक विकास में बाधक तत्वों को कम करने में सफल होती है। इस प्रकार सरकार मुद्रा स्फीति की दशा में मुद्रा की मांग व पूर्ति में संतुलन कर आर्थिक विकास को बढ़ाने में सहायक होती है।

4. **उपयुक्त ब्याज दर (Suitable Interest Rate) -** अल्पकालीन व दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त ब्याज दर का होना आवश्यक है। मौद्रिक नीति के अन्तर्गत सरकार केन्द्रीय बैंकों को ब्याज दर निर्धारण का अधिकार दे देती हैं जिससे बैंक ब्याज दरों में स्थिरता लाकर आर्थिक विकास में सहायता करते है। सरकार सस्ती मुद्रा नीति अपनाकर विनियोगों को बढ़ावा दे सकती है व देश में मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित कर आर्थिक विकास को बढ़ा सकती है।

5. **कीमत स्थायित्व (Price Stability) -** देश में मुद्रा स्फीति के कारण लगातार कीमतों में वृद्धि विकास में बाधक होती है। लेकिन मौद्रिक नीति द्वारा मुद्रा की मात्रा को कम कर कीमतों

में वृद्धि को रोका जा सकता है। अर्थव्यवस्था में मूल्यों में निरन्तर उतार-चढ़ाव के कारण विनियोग, उत्पादन व मांग आदि पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं अत: मौद्रिक नीति में आवश्यक परिवर्तन कर सरकार कीमत स्तर को नियन्त्रित कर सकती है।

6. **विनिमय दर में स्थायित्व (Stability in Exchange Rate) -** वर्तमान में प्रत्येक अर्थव्यवस्था विदेशी व्यापार पर निर्भर है। मौद्रिक नीति के माध्यम से सरकार मुद्रा की मांग व पूर्ति को नियन्त्रित करके विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव को भी रोक सकती है। विनिमय दरों में स्थिरता से मुद्रा स्फीति की दशा में भी आर्थिक विकास को सम्भव बनाया जा सकता है।

7. **पूर्ण रोजगार (Full Employment) -** किसी भी राष्ट्र में पूर्ण रोजगार की दशा आर्थिक विकास व साधनों के अनुकूल उपयोग के लिए आवश्यक होती है। मौद्रिक नीति द्वारा बचत व विनियोग में साम्य स्थापित करके मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के साथ-साथ रोजगार अवसरों में भी वृद्धि होती है। जिससे पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

8. **साख का विस्तार (Credit Expansion) -** विकासशील देशों में अधिकतर जनसंख्या कृषि एवं अन्य प्राथमिक क्षेत्रों में कार्यरत हैं इस वर्ग में व्यापक निर्धनता पायी जाती है। जबकि समाज का दूसरा वर्ग उद्योग एवं व्यवसाय में लगा है जो अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न है। समाज के कमजोर वर्ग को साख सुविधाओं की अधिक आवश्यकता पड़ती है, जबकि जमानत व पुनर्भुगतान क्षमता के अभाव में सामान्यतया बैंक इन्हे ऋण नहीं देते है। बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं की साख सुविधाओं का पूरा लाभ सम्पन्न वर्ग उठाता है। अत: केन्द्रीय बैंक व सरकार मौद्रिक नीति द्वारा इस व्यवस्था में हस्तक्षेप कर गरीब वर्ग को साख सुविधाऐं प्रदान करते है। इस प्रकार मौद्रिक नीति साख-सुविधाओं का लाभ समाज के उपेक्षित एवं गरीब वर्ग को उदार शर्तों पर प्राथमिकता के आधार पर प्रदान करने में मदद करती है। इससे आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को रोकने में भी मदद मिलती है।

9. **भुगतान संतुलन (Balance of Payment) -** सामान्यत: विकासशील देशों का भुगतान संतुलन सदैव विपक्ष में रहता है। क्योंकि एक ओर इन्हें औद्योगिक विकास के लिए मशीनें, तकनीकी ज्ञान, पूंजी व कच्चे माल का आयात करना पड़ता है तो दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि के कारण निर्यात योग्य माल की घरेलू खपत बढ़ जाने से निर्यात घटने लगते है। अनेक बार बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों का भी आयात करना पड़ता है। आयतों का भुगतान करने के लिए निर्यात बढ़ाना आवश्यक है। एक उपयुक्त मौद्रिक नीति इसमें सहयोग दे सकती है। मौद्रिक नीति भुगतान संतुलन के साथ विनिमय दर के स्थायित्व में भी योगदान देती है।

10. **अन्य (Others) -** मौद्रिक नीति द्वारा अर्थव्यवस्था पर प्रभावी नियन्त्रण कर विदेशी प्रभाव को कम किया जा सकता है। यह नीति देश के विकास मे योगदान देती है। दीर्घकालीन विनियोगों को प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को बिल भुनाने की सुविधा प्रदान करता है। मौद्रिक नीति लघु उद्योगों एवं प्राथमिक क्षेत्रों में साख का वितरण करने में सहयोग देती है।

2.6 मौद्रिक नीति के उपकरण (Instruments of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मौद्रिक नीति का सफल क्रियान्वयन आवश्यक होता है। इस दृष्टि से साख का सृजन व साख नियन्त्रण आवश्यक होता है। इन्हें नियंत्रित करने की विभिन्न क्रियाओं को ही मौद्रिक नीति के उपकरण कहा जाता है। मौद्रिक नीति के विभिन्न उपकरण निम्नलिखित है :-

1. **परिमाणात्मक विधियां (Quantitative methods) -** परिमाणात्मक विधियां व्यापारिक बैकों के नकद कोषों की मात्रा को प्रभावित करती है जिससे साख की लागत पर भी प्रभाव पडता है। इनके अन्तर्गत साख-नियन्त्रण की निम्न विधियों को शामिल किया जाता है :-

1.1. बैंक दर - केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के प्रथम श्रेणी के बिलों की जिस दर पर पुन: कटौती करता है या स्वीकृत प्रतिभूतियों पर ऋण या अग्रिम प्रदान करता है, बैंक दर कहलाती है। सेयर्स के अनुसार "बैंक दर वह ब्याज दर है जो केन्द्रीय बैंक द्वारा बिलों को पुन: बट्टा करने या अग्रिमों पर ली जाती है।" बैंक दर में परिवर्तन का बाजार ब्याज दर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। बैंक दर में वृद्धि साख संकुचन लाती है तो कमी साख का विस्तार कर देती हैं। दूसरे शब्दों में बैंक दर उत्पादन कार्यो के लिए पूंजी की उपलब्धता को प्रभावित करके उत्पादन क्रिया का विस्तार तथा संकुचन करती है। इस प्रकार बैंक दर उत्पादन की मात्रा, मूल्य स्तर, आयात-निर्यात, रोजगार, प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय, व्यापार तथा भुगतान संतुलन आदि सभी आर्थिक-क्रियाओ को प्रभावित करती है। अक्टूबर 1991 में बैंक दर 12 प्रतिशत थी जो कि समय-समय पर कम की गई हैं। वर्तमान में यह 6 प्रतिशत है। बैंक दर में कमी रिजर्व बैंक की सस्ती मुद्रा नीति की परिचायक है।

1.2. खुले बाजारों की क्रियायें - केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा बाजार में विभिन्न प्रकार के स्वीकृत विपत्रों एव प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय की क्रिया खुले बाजार की क्रिया कहलाती है। इसका प्रयोग बैंक दर के पूरक के रूप में किया जाता है। केन्द्रीय बैंक अपनी इस क्रिया से साख की मात्रा को प्रभावित करता है। साख के विस्तार के लिये सरकारी अथवा श्रेष्ठ प्रतिभूतियों का क्रय तथा संकुचन के लिए विक्रय किया जाता है। मुद्रा प्रसार तथा संकुचन को नियंत्रित करने का यह एक प्रभावी उपाय है।

1.3. नकद कोषानुपात में परिवर्तन - प्रत्येक व्यापारिक बैंक को अपनी कुल जमा राशि का वैधानिक रूप से एक भाग केन्द्रीय बैंक के पास रखना पडता है वह नकद कोष अनुपात कहलाता है। इनकी न्यूनतम तथा उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है। केन्द्रीय बैंक इसमें कमी या वृद्धि करके साख नियंत्रण का कार्य करता है। इस सीमा में वृद्धि होने पर व्यापारिक बैंकों की साख-सृजन की शक्ति कम हो जाती है और कम होने पर साख सृजन शक्ति बढ़ जाती है। भारत में सभी अनुसूचित बैंकों को अपनी कुल जमाओं का न्यूनतम 3 प्रतिशत तथा अधिकतम 15 प्रतिशत भाग रिजर्व बैंक के पास जमा रखना होता है। वर्तमान में नकद कोषानुपात की दर 5.25 प्रतिशत है।

1.4. तरल कोषानुपात - सभी व्यापारिक बैंकों को अपनी जमाओं का एक निश्चित भाग तरल कोष के रूप में रखना पडता है, जिससे वे ग्राहकों द्वारा मांग करने पर भुगतान कर सकें। यह कोषानुपात केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्धारित किया जाता है। इससे बैकों की साख-सृजन क्षमता पर प्रभाव पडता है। जब केन्द्रीय बैंक द्वारा इस कोषानुपात में वृद्धि कर दी जाती है तो व्यापारिक बैकों की साख सृजन क्षमता कम हो जाती है। इसके विपरीत, जब केन्द्रीय बैंक इस अनुपात में कमी कर देता है तो व्यापारिक बैंकों की साख-सृजन की क्षमता बढ़ जाती है। भारत में तरल कोषानुपात बढ़कर 38.5 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच गया था। नरसिम्हम समिति की सिफारिशों के अनुसार इसमें कटौती की गई तथा वर्तमान में यह 25 प्रतिशत है ।

2. **गुणात्मक रीतियां (Qualitative Methods) -** गुणात्मक साख नियन्त्रण का उद्देश्य किसी उद्योग विशेष या क्षेत्र विशेष के लिए साख की मात्रा को नियन्त्रित करना है। इसे चयनात्मक साख नियन्त्रण भी कह सकते है। गुणात्मक साख की नियन्त्रण की प्रमुख विधियां निम्नलिखित है:

2.1 **चयनित साख नियन्त्रण -** गुणात्मक साख नियन्त्रण की यह सबसे प्रमुख विधि है। इस विधि में केवल चयनित या विशेष क्षेत्रों के लिए ही साख को नियन्त्रित किया जाता है। इससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव नहीं पड़ता है, बल्कि चयनित क्षेत्र ही प्रभावित होता है। इस विधि के विभिन्न प्रचलित रूप निम्नलिखित है -

2.1.1 **विभिन्न ब्याज तथा कटौती दरें -** चयनित साख नियन्त्रण के लिए केन्द्रीय बैंक विभिन्न क्षेत्रों क लिए अलग-अलग ब्याज एवं कटौती दर निर्धारित करता है। जिन क्षेत्रों में साख का विस्तार करना होता है, उनके लिए ब्याज एवं कटौती पर नीची रखी जाती है।

2.1.2 **अन्तर निर्धारण -** व्यापारिक बैंक वस्तुओं की जमानत पर ऋण देते है। सामान्य रूप से वस्तुओं के मूल्य एवं ऋण की राशि 20 प्रतिशत से 3० प्रतिशत तक अन्तर रखा जाता है अर्थात् बैंक अधिक मूल्य की वस्तुएं धरोहर के रूप में रखकर कम ऋण देते है। ऐसा करने का उद्देश्य यह होता है कि यदि वस्तु के मूल्यों में कमी भी आ जाए तो बैंक को कोई हानि न हो। यह अन्तर केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्धारित किया जाता है। केन्द्रीय बैंक कुछ वस्तुओं के सीमान्तर को बढ़ाकर उनके लिए ऋणों की मात्रा कम कर देता है, जबकि कुछ वस्तुओं के सीमान्तर को कम करके उनके लिए ऋण की मात्रा बढ़ा सकता है।

2.1.3 **आयात-पूर्व जमा की व्यवस्था -** आयातों को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से केन्द्रीय बैंक यह व्यवस्था करता है कि आयातकर्त्ताओं को आयात लाइसेंस के लिए आवेदन पत्र देते समय ही आयात मूल्य का एक निश्चित भाग केन्द्रीय बैंक अथवा अन्य अधिकृत बैंक के पास जमा करवाना होगा। इससे आयात हतोत्साहित होते है।

2.1.4 ऋणों की प्राप्ति पर नियन्त्रण - कुछ क्षेत्रों के लिए जिन्हें आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता है, ऋण देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है।

2.1.5 **ऋणों की स्वीकृति एवं जांच -** विशेष क्षेत्रों के लिए ऋणों को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से, केन्द्रीय बैंक यह नियम बना देता है कि उन क्षेत्रों में ऋण देने से पूर्व बैंक की स्वीकृति लेनी होगी।

2.1.6 **उपभोक्ता साख नियमन -** औद्योगिक उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए व्यापारिक बैंक उपभोक्ता वस्तुएं (जैसे-टी.वी., मोटर कार, एयर कंडीशनर, फ्रिज आदि) खरीदने के लिए ऋण देते है। उपभोक्ता ऐसा ऋण किस्तों में चुकाता है। इसे उपभोक्ता साख कहते है। जब साख की मात्रा को नियन्त्रित करना हो तो केन्द्रीय बैंक ऐसे ऋणों पर प्रतिबन्ध लगा देती है।

2.2 **साख की राशनिंग -** इस विधि में केन्द्रीय बैंक प्रत्येक व्यापारिक बैंक के लिए ऋण की अधिकतम सीमा निर्धारित कर देता है। बैंक इस सीमा से अधिक ऋण सुविधायें प्रदान नहीं करता है। इससे साख का प्रसार रूक जाता है। साख की राशनिंग करने के लिए बैंक अनेक विधियां अपनाता है, जैसे (अ) किसी व्यापारिक बैंक को दी जाने वाली ऋण सुविधा समाप्त करना, (ब) प्रत्येक बैंक को दिये जाने वाले ऋण को कोटा निश्चित कर देना, (स) यह निश्चित करना कि किसी भी बैंक को किसी विशेष वर्ग में दी गई राशि से अधिक ऋण नहीं दिये जायेंगे, (द) व्यापारिक बैंकों के लिए विभिन्न क्षेत्रों में दिये जाने वाले ऋणों की सीमा निश्चित कर देना आदि। विकासशील देशों के लिए यह व्यवस्था उपयुक्त मानी गई है।

2.3 **प्रचार -** साख नियन्त्रण के लिए केन्द्रीय बैंक प्रचार नीति भी अपना सकता है। इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं संचार माध्यमों से व्यापारिक बैंकों के समक्ष अपने साख संबंधी विचार प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार केन्द्रीय बैंक विभिन्न सभाओं एवं संगोष्ठियों, समारोहों एवं पत्रकार सम्मेलनों में अपनी साख नीति के संकेत देता है। व्यापारिक बैंक इन संकेतों को ध्यान में रखकर साख का सृजन करते है।

2.4 **नैतिक प्रभाव -** केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को साख नियन्त्रण के लिये निर्देश जारी करता है तथा व्यापारिक बैकों को निर्देश मानने के लिये विवश करता है। अन्यथा उनके विरूद्ध कार्यवाही की चेतावनी देता है।

2.5 **सीधी कार्यवाही -** यदि कोई व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक के निर्देशों की उपेक्षा या अवहेलना करता है तो केन्द्रीय बैंक ऐसे बैंक के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करता है। इसमें यह उस बैंक के बिलों को पुन: कटौती की सुविधा बन्द कर सकता है, बैंक पर दण्डित ब्याज लगा सकता है या बैंक को समाशोधन राह की सुविधा रोक सकता है, इत्यादि।

2.7 सारांश

मौद्रिक नीति केन्द्रीय बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा के नियमन एवं नियन्त्रण के उद्देश्य से बनायी जाती है। यह अर्थव्यवस्था के सभी अंगों जैसे उपभोग, उत्पादन, विनिमय, विदेशी व्यापार तथा भुगतान संतुलन इत्यादि को प्रभावित करती है। यह नियोजित आर्थिक विकास की प्रक्रिया की सफलता का आधार है।

2.8 शब्दावली

केन्द्रीय बैंक - देश का शीर्ष बैंक जो देश में सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवस्था का संचालन करने के साथ-साथ मुद्रा व साख का नियमन व नियंत्रण करता है।

आन्तरिक मूल्य स्तर - राष्ट्र में वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य में परिवर्तन होने पर मुद्रा की क्रय शक्ति में होने वाला परिवर्तन।

विनिमय दर - जिस दर पर घरेलू मुद्रा का विदेशी मुद्रा के साथ विनिमय किया जाता है।

पूर्ण रोजगार - देश में कार्य करने के इच्छुक व कार्य योग्य सभी व्यक्तियों को देश के आर्थिक स्तर के अनुरूप मजदूरी दर पर कार्य मिलना।

भुगतान संतुलन - एक राष्ट्र का शेष विश्व के साथ होने वाले सभी आर्थिक व्यवहारों का लेखा-जोखा।

2.9 स्वपरख प्रश्न

1. मौद्रिक नीति की परिभाषा बताते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. मौद्रिक नीति का अर्थ बताते हुए इसके प्रकार बताइये।
3. मौद्रिक नीति की उपयोगिता व महत्व पर प्रकाश डालिये।
4. मौद्रिक नीति का अर्थ बताते हुए इसके विभिन्न उपकरणों की विवेचना कीजिये।
5. "मौद्रिक नीति द्वारा मुद्रा व साख का नियमन व नियंत्रण संभव है।" विवेचना कीजिये।

इकाई 3

राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 राजकोषीय नीति की परिभाषा

3.3 राजकोषीय नीति के उद्देश्य

3.4 राजकोषीय नीति के भाग

3.5 भारत की राजकोषीय नीति

3.6 भारत की राजकोषीय नीति के दोष

3.7 भारत के राजकोषीय नीति के दोषों को दूर करने हेतु सुझाव

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 स्वपरख प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगें कि -

- राजकोषीय नीति का अर्थ व महत्व का वर्णन कर सके।
- राजकोषीय नीति के उद्देश्य स्पष्ट कर सकें।
- राजकोषीय नीति के विभिन्न भागों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सके।
- भारत की राजकोषीय नीति के विभिन्न घटकों के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सके।

3.1 प्रस्तावना

राजकोषीय नीति का तात्पर्य किसी देश की उस नीति से है जिसके अन्तर्गत सरकार अपने आय-व्यय के कार्यक्रम निर्धारित करती है। इस नीति में सरकार यह निश्चित करती है कि किन-किन वस्तुओं पर कर लगाया जाये तथा उसकी दर कितनी हो और इन करों से प्राप्त आय को किन-किन मदों पर व्यय किया जाये। यदि आय की तुलना में व्यय अधिक है तो व्ययों को पूरा करने के लिए क्या व्यवस्था की जाये ? अर्थात् सरकार जनता व अन्य साधनों से ऋण ले या हीनार्थ प्रबन्ध के मायम से व्यवस्था करें। इस नीति में करों को वसूल करने की नीति भी सम्मिलित है। इस प्रकार राजकोषीय नीति में करारोपण, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण और बजट से संबंधित तथ्य सम्मिलित होते है।

3.2 राजकोषीय नीति की परिभाषा (Definition of Fiscal Policy)

राजकोषीय नीति के अन्तर्गत हम सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण की उन क्रियाओं का विवेचन करते है जिनके द्वारा सरकार पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति करती है। राजकोषीय नीति की कुछ प्रमुख परिभाषाऐं इस प्रकार है-

1. **आर्थर स्मिथीज -** "राजकोषीय नीति वह नीति है जिससे सरकार अपने व्यय तथा आगम के कार्यक्रम को राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर इच्छित प्रभाव डालने तथा अवांछित प्रभावों के रोकने के लिए प्रयुक्त करती है।"

2. **हार्वे एवं जॉन्सन -** "अर्थव्यवस्था की क्रियाओं के स्तर एवं स्वरूप में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से शासकीय व्यय एवं कराधान में जो परिवर्तन लाये जाते है, उन्हें राजकोषीय नीति में शामिल किया जाता है।

3. **जे.के.शॉ -** "हम राजकोषीय नीति को परिभाषित करने की दृष्टि से उसमें कीमत-परिवर्तनों, सार्वजनिक व्यय के समय एवं संरचना में परिवर्तन कर भुगतान की बारम्बारता एवं संरचना में परिवर्तन को शामिल करते है।"

4. **श्रीमती उर्सुला हिक्स-** "राजकोषीय नीति में विभिन्न अनुभव अपने-अपने उद्देश्यों को तो अलग-अलग पूरा करते है किन्तु सामूहिक रूप से वे आर्थिक नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होते है।"

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में राजकोषीय नीति के उपकरण के रूप में सार्वजनिक ऋण की उपेक्षा की गयी है। ब्राइट तथा निकलस द्वारा दी गयी परिभाषा इस अर्थ में अत्यन्त व्यापक है। उनके अनुसार, "राजकोषीय नीति सरकारी व्यय तथा करों के प्रबन्ध और सार्वजनिक कर्जा को ऐसे ढंग से संचालन करने से संबंध रखती है, जिससे कि कुछ निश्चित उद्देश्य पूरे हो जाये।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से राजकोषीय नीति की निम्नलिखित विशेषताओं का ज्ञान होता है-

1. राजकोषीय नीति बजट नीति है जिसका संचालन वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है।
2. उसके प्रमुख अंग सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण एवं घाटे की वित्त व्यवस्था है।
3. राजकोषीय नीति एक सम्पत्तिपरक नीति है, अत: उसके प्रभाव समस्त अर्थव्यवस्था पर पड़ते है।
4. राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकार प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करती है।
5. राजकोषीय नीति किसी देश की आर्थिक नीति की सहभागिनी है और आर्थिक नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से बनायी जाती है।
6. व्यापक तौर पर किसी देश के रोजगार, आय, कीमत अथवा उत्पादन के स्तर पर वांछनीय प्रभाव डालने के उद्देश्य से इसे संचालित किया जाता है।

संक्षेप में व्यय, करारोपण, ऋण व बजट निर्माण से संबंधित सरकारी क्रियाओं को राजकोषीय क्रियाएं कहा जाता है और जब इन क्रियाओं का उद्देश्यपूर्ण उपयोग आर्थिक स्थायित्व, द्रुतगामी आर्थिक विकास और पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए किया जाता है तो इसे राजकोषीय नीति कहते है। अन्य शब्दों में, राजकोषीय नीति का संबंध सरकार से जनता और जनता से सरकार की ओर होने वाले धन के प्रवाह से होता है।

3.3 राजकोषीय नीति के उद्देश्य (Objectives of Fiscal Policy)

विकसित एवं विकासशील देशों की आर्थिक परिस्थितियां एवं प्राथमिकताएं भिन्न-भिन्न होने के कारण इनकी राजकोषीय नीति के उद्देश्य को भिन्न-भिन्न होते है। सन् 1930 की

विश्वव्यापी मन्दी के बाद राजकोषीय नीति का महत्व बढ़ा हैं। उस समय कीन्स ने राजकोषीय नीति द्वारा अर्थव्यवस्था को इच्छित दिशा प्रदान करने का विचार प्रस्तुत किया। कीन्स का विचार था सार्वजनिक वित्त की क्रियाओं द्वारा प्रभावोत्पादक मांग को घटा-बढ़ा कर अर्थव्यवस्था को वांछित दिशा दी जा सकती है। इन्ही विचारों से प्रेरित होकर अनेक देशों ने अर्थव्यवस्था का नियन्त्रण एवं निर्बाध संचलन करने के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लिया। यद्यपि कीन्स के विचार विकसित अर्थव्यवस्था की दृष्टि से उपयुक्त थे, किन्तु विकासशील देशों ने भी अपनी अपूर्णताओं एवं जटिलताओं को दूर कर तीव्र विकास के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लिया। विकासशील अर्थव्यवस्था जैसे भारत में राजकोषीय नीति के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते है -

1. **पर्याप्त आय प्राप्त करना (Revenue Earnings)** - राजकोषीय नीति का सबसे प्रभावी उद्देश्य पर्याप्त सार्वजनिक आय प्राप्त करना है। क्योंकि सरकार को अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए पर्याप्त मात्रा में आय की आवश्यकता होती है। धन के अभाव में राज्य अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने में असमर्थ रहते है। किंतु आय वृद्धि के लिए अत्यधिक 'कर' नहीं लगाये जा सकते है। 'कर' देश के निवासियों की करदान क्षमता पर आधारित होने चाहिए तथा सामाजिक दृष्टि से सभी पर भार बराबर होना चाहिए। साथ ही इसका देश में बचत व विनियोग पर भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। राजकोषीय नीति का मुख्य उद्देश्य उचित करारोपण व्यवस्था द्वारा सरकार की आय में वृद्धि करना है।

2. **तीव्र आर्थिक विकास (Rapid Economic Development) -** तीव्र आर्थिक विकास में सरकार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सरकार अपनी आय को राजकोषीय नीति के माध्यम से उन कार्यो पर व्यय करती है जो देश के तीव्र आर्थिक विकास में सहयोग दे सके। जैसे आधारभूत उद्योगों, सिंचाई, विद्युत आदि पर व्यय करके सरकार तीव्र आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

3. **साधनों का उचित आवंटन (Proper Allocation of Resources) -** प्राकृतिक व मानवीय साधन उनकी आवश्यकता की तुलना में सीमित होने के कारण इन साधनों के प्रयोग को उन कार्यो में प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अधिक आवश्यक है। देश की सम्पदा का दुरूपयोग रोकने व उसका न्यायोचित वितरण करने व रोजगार के अवसर बढाने के लिये प्रयोग होने से ही साधनों का अनुकूलतम वितरण हो सकता है। राजकोषीय नीति के माध्यम से साधनों का विलासिता पूर्ण कार्यो से आवश्यक कार्यो की और हस्तान्तरण किया जा सकता है। इससे साधनों के केन्द्रीकरण को रोकने में भी सहायता मिलती है।

4. **पूंजी निर्माण (Capital Formation) -** राजकोषीय नीति का उद्देश्य देश में पूंजी निर्माण को बढ़ावा देना भी है। राष्ट्रीय आय कम होने के कारण देश में बचत व विनियोग कम होते है। फलस्वरूप पूंजी निर्माण भी कम होता हैं इस कमी को दूर करने के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लिया जाता है। राजकोषीय नीति में कर नीति के माध्यम से उपभोग की मात्रा कम कर बचत को प्रोत्साहित किया जाता है। इससे देश में पूंजी निर्माण में वृद्धि होती है।

5. **मुद्रा प्रसार पर नियन्त्रण (Control on Inflation) -** सार्वजनिक आय की तुलना में सार्वजनिक व्यय अधिक होने के कारण घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जाता है। घाटे की वित्त व्यवस्था अपनाने पर देश में मुद्रा प्रसार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मुद्रा प्रसार का

देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ने के कारण इस पर तुरन्त रोक लगाना आवश्यक हो जाता है। राजकोषीय नीति का उद्देश्य देश में मुद्रा प्रसार पर नियन्त्रण भी हो सकता है। राजकोषीय नीति के द्वारा बचत के प्रोत्साहन दिया जाता है जिससे बाजार में मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है व मुद्रा प्रसार कम हो जाता है। राजकोषीय नीति द्वारा 'कर' बढ़ाकर जनता की क्रय-शक्ति को सीमित किया जाता है। इससे मुद्रा स्फीति एवं मूल्य वृद्धि पर नियन्त्रण संभव है।

6. **कीमत स्थायित्व (Price Stability) -** कीमतों में उतार-चढाव का समाज के विभिन्न वर्गो पर बुरा प्रभाव पडता है। कीमतों में वृद्धि से जहां जन सामान्य पर बुरा असर पडता है वहीं अनुचित लाभ कमाने के अवसर बढ़ जाते हैं। दूसरी ओर कीमतों में कमी से रोजगार व उत्पादन पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। राजकोषीय नीति इन दोनों दोषों को दूर कर कीमतों में स्थायित्व लाने का प्रयास करती हैं करों में कमी कर अथवा आर्थिक सहायता प्रदान कर कीमतें कम की जा सकती है। इसी प्रकार कीमतों में गिरावट होने पर सरकार अधिक कीमत पर वस्तु खरीद कर अथवा वस्तुएं खरीदने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान कर कीमतों में गिरावट को रोकती है।

7. **सन्तुलित आर्थिक विकास (Balanced Economic Development) -** राजकोषीय नीति के माध्यम से देश में संतुलित विकास किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में निजी उद्यमी विनियोग के लिए तैयार नहीं होते है उन क्षेत्रों में सरकार विनियोग करती है।

8. **आर्थिक स्थिरता को बढ़ावा (Increase of Economic Stability) -** राजकोषीय नीति का उद्देश्य चक्रीय उतार-चढ़ावों के विपरीत प्रभावों को कम कर देश में आर्थिक स्थिरता प्रदान करना है। राजकोषीय नीति बाहरी एवं आन्तरिक शक्तियों को नियन्त्रित कर आर्थिक स्थिरता प्रदान करती हैं। तेजी काल में उतार-चढ़ावों को कम करने के लिए निर्यात व आयात कर लगाये जाते है, जबकि मंदी काल में सार्वजनिक निर्माण कार्यो को बढ़ावा देकर उसके दुष्प्रभावों को कम किया जाता है।

9. **निवेश की दर में वृद्धि (Increase in the Rate of Investment) -** राजकोषीय नीति का उद्देश्य निजी व सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश की दर को बढ़ाना है। निवेश की दर बढ़ाने के लिए सरकार सार्वजनिक क्षेत्र में योजनाबद्ध निवेश की नीति प्रारम्भ करती है। इससे निजी क्षेत्र में निवेश की मात्रा बढ़ती है। निर्धन देशों में प्रति व्यक्ति आय कम होने व रोजगार की कमी होने के कारण पूंजी निर्माण की दर कम होती है। यहां निर्धनता का कुचक्र प्रमुख समस्या होती है। यहां राजकोषीय नीति के माध्यम से करों द्वारा उपभोग को कम कर बचत को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया जाता है। विकसित देशों में अवांछित उपभोग को कम करने में करारोपण की नीति को काम में लिया जाता है।

10. **रोजगार के अवसर बढ़ाना (Creation of More Employment) -** राजकोषीय नीति का उद्देश्य रोजगार के अवसर में वृद्धि तथा बेरोजगारी व अर्द्ध बेरोजगारी में कमी करना होता है। इसके लिए राज्य सामाजिक व आर्थिक सुविधाऐं बढ़ाता है। ग्रामीण जनसंख्या वाले क्षेत्रों में सामुदायिक विकास कार्यक्रम को अपनाया जाता है।

3.4 राजकोषीय नीति के भाग (Components of Fiscal Policy)

राजकोषीय नीति के प्रमुख भाग निम्नलिखित हैं।

1. **सार्वजनिक आय नीति या करारोपण नीति (Taxation Policy) -** विकासशील देशों की सार्वजनिक आय नीति या करारोपण नीति (Taxation Policy)- आर्थिक विकास का आधार होती है। इसलिए करारोपण नीति द्वारा अनावश्यक उपभोग पर नियन्त्रण, मूल्य स्तर में अत्यधिक वृद्धि पर रोक एवं पूंजी निर्माण, पुन: विनियोग करने योग्य आधिक्य एवं करदान क्षमता में वृद्धि का उद्देश्य ध्यान में रखा जाता है। विकासशील देशों में अमौद्रिक क्षेत्र काफी बड़ा होता है। अत: करारोपण इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि संगठित उद्योगों व वाणिज्य में लगे व्यक्तियों व संस्थाओं से अधिकाधिक कर मिल सके। इसके लिए ही करारोपण की दरें प्रगतिशील रखी जाती है।

2. **सार्वजनिक व्यय नीति (Public Expenditure Policy) -** सामान्य जनता के हित और दुर्बल वर्ग को न्याय तथा समानता दिलाने के लिए उचित सार्वजनिक व्यय नीति आवश्यक होती है। सरकार द्वारा व्यय के लिए ऐसी मदों को चुना जाता है जिससे ना सिर्फ आर्थिक विषमता और शोषण जैसी बुराईयाँ समाप्त हों वरन् सामाजिक कल्याण भी हो। विकासशील देशों की व्यय नीति का ढांचा विकास के स्तर पर निर्भर करता है। सामान्यतया सरकार इस तरह की व्यय नीति अपनाती है जिससे देश में आधारभूत ढांचे (Infrastructure), शिक्षा स्वास्थ्य एवं अन्य सामाजिक क्रियाओं का विकास हो सके। सिंचाई, परिवहन, विद्युत, सुरक्षा, प्राकृतिक साधनों और वृहद् उद्योगों को आधारभूत क्षेत्र में सम्मिलित किया जाता है। दूसरे वर्ग में शिक्षा, अनुसन्धान, श्रम-कल्याण, स्वच्छता, परिवार नियोजन, पिछडे वर्गो के कल्याण इत्यादि को सामाजिक उपरिव्ययों की मदों में रखा जाता है। इन पर होने वाले व्ययों से मानवीय पूंजी का निर्माण होता है जिससे राष्ट्र की विकास प्रक्रिया प्रशस्त होती है।

3. **सार्वजनिक ऋण नीति (Public Debt Policy) -** राजकोषीय नीति का तीसरा अंग सार्वजनिक ऋण नीति है। अर्द्ध विकसित देशों में सरकारों द्वारा एक साथ विभिन्न क्रियाओं में विनियोग करने हेतु पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति करारोपण व अल्प बचतों से नहीं हो पाती। अत: इसकी पूर्ति के लिए सरकार अपने देश तथा विदेशी संस्थाओं व सरकारों से ऋण लेती है। प्राय: दीर्घकालीन निवेश की परियोजनाएँ विदेशी ऋणों से तैयार की जाती है। ऋणों की राशि का उत्पादकीय क्षेत्रों में प्रयोग करके देश के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। लेकिन अविवेकपूर्ण ऋण नीति से कर्ज भार बढ़ने और मुद्रा-स्फीति फैलने का डर रहता है। अर्द्धविकसित देश अपने प्रारम्भिक विकास काल में अधिक ऋण लेने की नीति अपनाते है क्योंकि कर साधनों द्वारा पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था करना सम्भव नही होता।

4. **बजटीय नीति (Budgetary Policy) -** यह राजकोषीय नीति का अन्तिम और अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। अर्द्ध विकसित देश निर्धारित वर्ष के आय, व्यय, बचत, विनियोग आदि का स्वरूप निर्धारित करने के लिए बजट बनाते है। बजट मार्गदर्शक की भांति सरकार की सहायता करता है। अत: बजट बनाना, लागू करना व मूल्यांकन करना इत्यादि को इसके अंतर्गत शामिल किया जाता है।

3.5 भारत की राजकोषीय नीति (Fiscal Policy of India)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना हुई। सन् 1950 में योजना आयोग का गठन कर सन् 1951 से देश में आर्थिक नियोजन अपनाया गया। तीव्र आर्थिक विकास, जन-कल्याण, न्याय तथा समानता आदि आर्थिक नियोजन के उद्देश्य रखे गये। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लिया गया। भारत की राजकोषीय नीति योजनाओं के उद्देश्यों के अनुरूप बनायी गयी है। हमारे देश की राजकोषीय नीति के विभिन्न भाग निम्नलिखित है -

I. **कर नीति (Taxation Policy) -** कर नीति भारत की राजकोषीय नीति का एक प्रभावी अंग रही है। भारत की कर नीति के दो उद्देश्य रहे है। प्रथम आय प्राप्त करना तथा द्वितीय, आर्थिक विषमता को दूर करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए देश में अनेक कर लगाये गये है जैसे आय कर, बिक्री कर, उत्पादन कर, आदि। कुछ कर प्रगतिशील दरों से लगाये गये है। जिसमें प्रारम्भ में एक सीमा तक करों में छूट दी जाती है किन्तु बाद में करों की दर बढ़ती जाती है। प्रगतिशील दर से कर लगाने के कारण धनिकों पर कर भार अधिक पड़ता है जबकि गरीबों पर कम। सामान्य रूप से कर, कर-देय क्षमता के आधार पर लगाये जाते है। गरीबों की कर देय क्षमता कम होने से उन पर कम कर व धनिकों की कर देय क्षमता अधिक होने से उन पर अधिक कर लगाये जाते है। इससे सामाजिक न्याय व समानता को बढ़ावा मिलता है। जबकि कुछ कर प्रतिशत या आनुपातिक आधार पर लगाये जाते है। कर सरकारी आय के प्रमुख साधन है। कुछ कर केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाते है जैसे आय कर तो कुछ कर राज्य सरकार व स्थानीय सरकारों द्वारा भी लगाये जाते है - जैसे बिक्री कर आदि।

भारत की करारोपण नीति के प्रमुख विशेषताएं
(Main Features of India's Taxation Policy)

स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटिश शासन ने भारत में करारोपण की ऐसी नीति को अपनाया जिससे ब्रिटिश सरकार को अधिक से अधिक आय प्राप्त हो तथा भारतीय जनता का अधिकतम शोषण किया जा सके। स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने ऐसी कर नीति को अपनाया है जिससे पूंजी निर्माण तथा सार्वजनिक आय में वृद्धि हो तथा आय की विषमता को दूर किया जा सके। भारत की करारोपण नीति के प्रमुख विशेषताऐ निम्नाकिंत है -

1. **बहु कर्स्नीति (Multiple Taxation Policy) -** भारत की करारोपण नीति में करों की बहुलता है। जिसमें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों में उचित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। भारतीय कर नीति में एक ओर जहां आयकर, सम्पदा कर, धन कर जैसे प्रत्यक्ष कर लगाये गये हैं तो दूसरी ओर उत्पादन कर, बिक्री कर, सीमा शुल्क आदि अप्रत्यक्ष कर लगाये गये है। प्रत्यक्ष कर प्रगतिशील होने के कारण देश में आर्थिक विषमताऐं कम करने में सहायक होते है तो अप्रत्यक्ष करों से कर प्रणाली को राजस्व की दृष्टि से उत्पादन बढाने में सहायता मिलती है।

2. **अप्रत्यक्ष करों में अधिक निर्भरता (More Dependence on Indirect Taxes) -** भारतीय करारोपण नीति की एक मुख्य विशेषता यह है कि प्रत्यक्ष करों की बजाय हम अप्रत्यक्ष करों पर अधिक निर्भर रहते है। वर्ष 2005-06 के बजट अनुमान के अनुसार भारत सरकार के

सकल कर राजस्व में अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त राजस्व का हिस्सा 66 प्रतिशत था। यद्यपि वर्ष 1990-91 में यह 78.4 प्रतिशत था। उसके बाद सकल कर राजस्व मे अप्रत्यक्ष करों के हिस्से में गिरावट आयी है। चूँकि प्रत्यक्ष कर धनी व्यक्तियों पर लगाए जाते है, अत: इनका दायरा सीमित होता है। परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष करों से सरकार को आवश्यक आगम नहीं मिल पाता। इसलिए सरकार आय प्राप्ति के लिए अप्रत्यक्ष करों पर अधिक निर्भर करती है। प्रत्यक्ष करों का क्षेत्र व्यापक होता है तथा इनसे सरकार को अच्छी आय भी प्राप्त हो जाती है। भारत में प्रत्यक्ष करों से कम आय प्राप्त होने का कारण एक बहुत बडे वर्ग (व्यापारी तथा धनी कृषक वर्ग) को प्रत्यक्ष करों के दायरे से बाहर रखा जाने के साथ-साथ प्रत्यक्ष करों की बड़े पैमाने पर चोरी करना है।

3. **कर राजस्व प्राप्ति का मुख्य साधन (Tax Main Source of Revenue) -** विभिन्न प्रकार के कर केन्द्र तथा राज्य सरकारों के राजस्व प्राप्ति का मुख्य साधन है। गैर-कर साधनों की तुलना में कर साधनों से सरकार को पर्याप्त राजस्व प्राप्त होने लगा है। वर्ष 2005-06 के बजट अनुमानों के अनुसार भारत सरकार ने अपने कुल व्ययों का लगभग 65 प्रतिशत अंश करों से ही प्राप्त किया।

4. **कर संरचना में उत्पादन कर का महत्वपूर्ण स्थान (Important Role of Excise Duties in the Tax Structure) -** भारत की कर संरचना मे उत्पाद शुल्क का महत्वपूर्ण स्थान है। जबकि पिछले दशकों में आयकर व निगम कर आय के प्रमुख स्त्रोत रहे है।

5. **प्रत्यक्ष करों की प्रगतिशील प्रकृति (Progressive Nature of Direct Taxes) -** भारत में प्रत्यक्ष करों का ढाँचा प्रगतिशील है अर्थात् आय में वृद्धि के साथ-साथ करों की दर में वृद्धि होती जाती है। इससे देश में आर्थिक विषमता को दूर करने में सहायता मिलती है क्योंकि धनी व्यक्तियों पर इस कर का अधिक भार पड़ता है तथा उससे प्राप्त आय को निर्धन व्यक्तियों के आर्थिक-सामाजिक उत्थान हेतु व्यय किया जाता है।

6. **आय कर की दरों में कमी (Decrease in Income Tax Rates) -** भारत में आयकर की दरें बहुत ऊंची रही है। वर्ष 1970-71 तक भारत में आयकर की उच्चतम दर एक सीमा के बाद 97.75 प्रतिशत थी जो विश्व में सबसे अधिक थी। जबकि वर्तमान में आयकर के उच्चतम दर 30 प्रतिशत है तथा 1,10,000 तक की आय पर कोई आयकर नही है। महिलाओं की दशा में 1,45,000 व वरिष्ठ नागरिकों की दशा में 1,95,000 तक वार्षिक आय आयकर से मुक्त है।

7. **समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित (Based on Socialist Principles) -** भारत की करारोपण नीति समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

8. **करारोपण के सिद्धान्तों के अनुरूप (According to the Principles of Taxation) -** भारतीय करारोपण नीति, करारोपण के सिद्धान्तों जैसे-प्रगतिशीलता, लोचशीलता मितव्ययिता तथा उत्पादकता का ध्यान रखती है। करारोपण नीति में निश्चितता का गुण भी विद्यमान है।

9. **बचतोन्मुखी करारोपण नीति (Savings Oriented Taxation Policy) -** भारतीय करारोपण नीति बचत तथा पूंजी निवेश को प्रोत्साहन देती है। कर प्रणाली में बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक बचत प्रेरक सुविधाऐं उपलब्ध है। उदाहरणार्थ, जीवन बीमा प्रीमियम,

सामान्य भविष्य निधि तथा मान्यता प्राप्त भविष्य निधि, राष्ट्रीय बचत पत्र, पीपीएफ खाता, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया की यूनिट लिंक्ड बीमा योजना आदि में जमा करायी गयी राशि पर कर छूट मिलती है।

II. **सार्वजनिक व्यय नीति (Public Expenditure Policy) -** सार्वजनिक व्यय के लिए वास्तव में सरकार की कोई निश्चित नीति नहीं है। सरकार समय-समय पर आवश्यकतानुसार व्यय की मदों की प्राथमिकताएं बदलती रही है। भारत में सार्वजनिक व्यय आर्थिक व गैर-आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में किये गये है। आर्थिक क्षेत्रों में कृषि, उद्योग, परिवहन, व्यापार, सिंचाई, विद्युत आदि मदों पर व्यय किये गये है। गैर-आर्थिक क्षेत्रों में शिक्षा, चिकित्सा समाज कल्याण आदि कार्यो पर व्यय किये गये है। व्यय करने में विकास कार्यो के साथ-साथ सामाजिक सेवाओं को भी प्राथमिकता प्रदान की गई है। पिछडे वर्गो के उत्थान के लिए अधिक व्यय किये गये है। भारत में सार्वजनिक व्ययों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। जहां एक ओर विकास व्यय निरन्तर बढ़ रहे है वहीं दूसरी और गैर-विकास व्ययों में भी तेजी से वृद्धि हो रही है। पिछले दो दशकों में गैर-विकास व्ययों में भारी वृद्धि हुई है। इनमें विकास व्यय एवं विकास भिन्न व्ययों का अनुपात लगभग 51:49 था। इससे स्पष्ट है कि हमारे गैर-विकास व्यय तेजी से बढ़ रहे है और इनका विकास-योजनाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। गैर विकास व्ययों में वृद्धि का मुख्य कारण पड़ोसी देशों का शत्रुतापूर्ण व्यवहार, आन्तरिक अशान्ति, सेना व रक्षा व्ययों में भारी वृद्धि, प्रशासनिक व्ययों में वृद्धि व सरकार की सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने वाली नीतियां रही है। यदि हम आर्थिक विकास की गति बढ़ाना चाहते है तो समय रहते इन पर कठोर नियन्त्रण लगाना होगा।

III. **सार्वजनिक ऋण नीति (Public Debt Policy) -** सरकार के व्ययों की तुलना में प्राप्तियां कम होने के कारण ऋण का सहारा लेना पड़ता है। भारत सरकार आन्तरिक क्षेत्रों के अतिरिक्त विदेशी सरकारों व अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठनों के भी ऋण प्राप्त करती है। भारत का ऋण भारत तेजी से बढ़ता जा रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बढ़ते विकास कार्यो के कारण सार्वजनिक ऋणों में तेजी से वृद्धि हुई है।

सार्वजनिक ऋणों को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. आन्तरिक ऋण एवं 2. बाह्य ऋण

1. **आन्तरिक ऋण (Internal Debt) -** इन ऋणों में निम्नाकिंत को शामिल किया जाता है (अ) शुद्ध बाजार ऋण, (ब) शुद्ध लघु बचतें, (स) शुद्ध राज्य एवं सार्वजनिक भविष्य निधियां (द) गैर-सरकारी भविष्य निधियों की विशेष जमाऐं, (य) अनिवार्य जमाओं के विरूद्ध आरबीआई से विशेष उधार एवं (र) शुद्ध विविध पूंजीगत प्राप्तियां।

2. **बाह्य ऋण (External Debt) -** बाह्य ऋण राष्ट्र से बाहर के स्त्रोतों से एकत्रित किये जाते है। बाह्य ऋणों में निम्नाकिंत मदों को शामिल किया जाता है -

(अ) शुद्ध ऋण (सकल-पुनर्भुगतान), (ब) अनुदान (स) IMF के ट्रस्ट कोष से ऋण, (द) आवर्ती कोष एवं (य) अन्य सरकारों, अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विदेशी वित्तिय संस्थाओं इत्यादि से ऋण।

1990-91 में केन्द्र सरकार की कुल बकाया देनदारियां (आन्तरिक दायित्व एवं बाह्य ऋणों का योग) सकल घरेलू उत्पाद का 55.3 प्रतिशत थी। 1997-98 में केन्द्र सरकार की कुल

बकाया देनदारियां घटकर 51.1 प्रतिशत रह गयी। लेकिन बाद के वर्षा में बढ़ोतरी हुई। परिणामस्वरूप 1999-2000 में यह बढ़कर 52.7 प्रतिशत, 2007-08 के बजट अनुमानों के अनुसार यह 63 प्रतिशत है।

IV. **बजट नीति (Budget Policy) -** बजट आगामी वर्ष के लिए सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक आय का एक अनुमान होता है। भारत में सामान्यत: फरवरी के अन्तिम सप्ताह में वित्त मन्त्री द्वारा संसद में बजट प्रस्तुत किया जाता हैं। बजट आर्थिक, राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति का एक महत्वपूर्ण उपकरण है अत: बजट के लिए अपनाई गई नीति देश की आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति को अत्यधिक प्रभावित करती है।

संतुलित बजट की अवधारणा एक काल्पनिक स्थिति है, यह व्यवहार में कभी देखने को नहीं मिलती। यही कारण है कि बजट या तो आधिक्य का होता है या घाटे का। भारत में बढ़ते विकास कार्यो के कारण घाटे का बजट बनाया जाता है।

सरकारी बजट का विश्लेषण करने के लिए तीन महत्वपूर्ण शब्दावली प्रयुक्त की जाती है : राजस्व घाटा (Revenue Deficit), राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit), एवं प्राथमिक घाटा (Primary Deficity)।

1. राजस्व घाटा = राजस्व व्यय - राजस्व प्राप्तियां
   (Revenue Deficit = Revenue Expenditure- Revenue Receipts)
2. राजकोषीय घाटा = कुल व्यय-(राजस्व प्राप्तियां+ऋणों की वसूली+अन्य प्राप्तियां)
   Fiscal Deficit=Total Expenditure- (Revenue Receipt+Recoveries of Loans+ Other Receipts)
3. प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा - ब्याज अदायगी।
   Primary Deficit= Fiscal Deficit- Interest Payment)

2000-01 में राजकोषीय घाटा 118816 करोड रू. (5.7 प्रतिशत) था जो 2001-02 में 140955 करोड़ रू. (6.2 प्रतिशत) हो गया। 2002-03 में 145072 करोड़ रू. का राजकोषीय घाटा था जो जीडीपी का 5.9 प्रतिशत था। वर्ष 2005-06 में यह जीडीपी का 4.1 प्रतिशत (अन्तरिम) तथा वर्ष 2006-07 में जीडीपी का 3.8 प्रतिशत (अन्तरिम) रह गया।

3.6 भारत की राजकोषीय नीति के दोष (Defects of Fiscal Policy of India)

भारत की राजकोषीय नीति में निम्नलिखित दोष है :

भारतीय कर प्रणाली अव्यवस्थित कर प्रणाली हैं जिसके कारण विभिन्न करो में समन्वय और पूरकता का अभाव पाया जाता है।

1. **अव्यवस्थित कर प्रणाली -** भारत की करोरापण नीति किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं बनाई गई है। यह परम्परागत नीति है तथा समयानुसार तथा आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन किये गये है जिसके कारण विभिन्न कर न तो एक दूसरे के पूरक हैं और न ही उनमें कोई

समन्वय हो पाया हैं। देश की कर नीति में केवल सामयिक आवश्यकताओं का ही ध्यान रखा गया है।

2. **लोचता का अभाव -** भारतीय कर नीति अधिक लोचपूर्ण नहीं है। भारतीय करों से पर्याप्त आय प्राप्त नहीं हो पाती है। लोचता के अभाव में इनमें संशोधन व वृद्धि करना कठिन है, इसलिए सरकार को बहुत कम कर राजस्व प्राप्त होता है।

3. **करों का अवरोही स्वरूप -** भारतीय करों का स्वरूप अवरोही है। यहां अमीरों की तुलना में गरीबों पर कर भार अधिक है। अप्रत्यक्ष कर जैसे सीमा शुल्क, बिक्रीकर, उत्पादन कर, मुद्रांक कर आदि का गरीबों पर अधिक भार पड़ता है। क्योंकि इन सबका भार अमीरों के साथ गरीबों पर भी पड़ता है, लेकिन गरीबों के लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता अधिक होने से वे इसे अधिक अनुभव करते है।

4. **केन्द्र व राज्य सरकारों में समन्वय का अभाव -** कर नीति में केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच समन्वय पर ध्यान नहीं दिया गया है। राजकोषीय नीति में राज्यों के उत्तरदायित्व तो बढ़ा दिये गये है किन्तु आय के साधनों मे विशेष वृद्धि नहीं की गई है। अत: राज्यों का कर राजस्व अपर्याप्त व बेलोचदार है।

5. **नवकर प्रणाली का दोष -** आय में वृद्धि करने के लिए केन्द्र सरकार ने अनेक नये कर लगाये है। किन्तु नवकर प्रणाली भी दोषपूर्ण है। नये करों ने निजी क्षेत्र में पूंजी संचय व आर्थिक विकास की गति को धीमा किया है। इन करों में समता पर अधिक जोर दिया गया है। जबकि समता पर अधिक जोर देने से आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पडा है। विदेशी पूंजी का प्रवाह भी अधिक करों के कारण हतोत्साहित हुआ है

6. **सुरक्षा व प्रशासनिक व्यय अधिक -** भारत में राजकोषीय नीति में व्यय नीति भी दोषपूर्ण है। भारत में सुरक्षा व प्रशासन पर व्यय का भार अधिक है। सुरक्षा पर किये जाने वाले व्यय से नही बचा जा सकता क्योंकि देश की स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए ये अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु पुलिस व प्रशासन में किया जाने वाला व्यय अनुत्पादक है। इसका मुख्य कारण प्रशासन में अपव्यय है। अपव्यय दूर करने के लिए प्रशासन के खर्चो में कमी करना आवश्यक हैं। यद्यपि सरकार समय-समय पर प्रशासनिक व्ययों में कटौती की घोषणा करती है किन्तु इसका वास्तविक प्रभाव बहुत कम है। आन्तरिक अव्यवस्था, आतंकवाद, साम्प्रदायिक हिंसा आदि के कारण भी प्रशासनिक व्यय बढ़े है।

7. **अप्रत्यक्ष करों की अधिकता -** भारतीय करों में अप्रत्यक्ष करो की अधिकता है। प्रत्यक्ष कर, जैसे आयकर, निगम आयकर, सम्पत्ति कर आदि करों में बहुत कम आय प्राप्त होती है। अप्रत्यक्ष करों से कीमतों में भी वृद्धि होती हैं। वर्तमान में सरकार को कुल कर राजस्व का लगभग 34 प्रतिशत प्रत्यक्ष करों व 66 प्रतिशत अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त होता है।

8. **हीनार्थ प्रबन्धन -** भारत में आय की कमी को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था अपनायी गई है। विकासशील अर्थव्यवस्था में घाटे की वित्त व्यवस्था को समाप्त करना सम्भव नहीं है, क्योंकि आय की कमी को जब ऋण लेकर भी पूरा नहीं किया जा सकता है तो हीनार्थ प्रबन्धन आवश्यक हो जाता है। कर देय क्षमता कम होने के कारण अधिक कर भी नहीं लगाये जा सकते है। किन्तु भारत में हीनार्थ प्रबन्ध अधिक होने के कारण देश में मुद्रा प्रसार की स्थिति

उत्पन्न हो गई है व वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई है। इसका अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

9. **कर की चोरी** - भारतीय कर प्रणाली में कुशलता का अभाव होने के कारण करों की भारी मात्रा में चोरी होती है। करों में चोरी होने के करण काले धब्बे धन में वृद्धि हुई है। काले धन से देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पडा हैं। साथ ही अत्यधिक एवं विविध कर लगाने के बाद भी सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त नहीं हो पाती है।

10. **राष्ट्रीय आय में कम अंशदान -** करों में प्राप्त आय का कुल राष्ट्रीय आय में योगदान बहुत कम है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से अब तक राष्ट्रीय आय में बहुत वृद्धि हुई है लेकिन राष्ट्रीय आय में करों से प्राप्त आय के योगदान में अत्यधिक वृद्धि नहीं हुई। सन् 1951 -52 में करों से प्राप्त आय का अंशदान 7 प्रतिशत था। 2005-06 में 10.3 प्रतिशत व 2006-07 में 10.8 प्रतिशत अनुमानित किया गया है।

11. **सार्वजनिक आय का अपव्यय-** भारत में सार्वजनिक आय की बड़ी मात्रा में अपव्यय हो रहा है। इसका मुख्य कारण सरकारी विभागों में व्याप्त अकुशलता, भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही हैं। साथ ही आवश्यकता से अधिक कर्मचारी होने के कारण अनावश्यक प्रशासनिक व्यय बढ़े है। विकास परियोजनाओं को भी राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रारम्भ किया जाता है, उनकी आर्थिक उपादेयता नहीं देखी जाती है। इससे एक तरफ सरकार को भारी व्यय वहन करने पड़ते है तो दूसरी ओर जनता को इनका पूरा लाभ नहीं मिल पाता है।

यद्यपि भारत की राजकोषीय नीति में अनेक दोष है परन्तु इस नीति का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें देश के पिछड़े वर्गो व अल्प-विकसित क्षेत्रों के विकास पर अधिकाधिक व्यय किया जा रहा हैं। जिससे देश में संतुलित विकास भी हो सकेगा व पिछड़े वर्गो की दशा में सुधार भी होगा।

3.7 राजकोषीय नीति के दोषों को दूर करने हेतु सुझाव

भारत में राजकोषीय नीति के दोषों को दूर करने के लिए निम्नाकिंत सुझाव दिये जा सकते है -

1. किसी भी वित्तीय वर्ष में राजकोषीय घाटा उस वर्ष की अनुमानित जीडीपी के 2 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।
2. राजस्व घाटे को शून्य बिन्दु तक घटाया जाना चाहिए, इसके लिए अनुत्पादक राजस्व व्ययों को कम करना चाहिए।
3. सब्सिडी को घटाया जाए एवं गैर-आवश्यक सब्सिडी तुरन्त बन्द की जानी चाहिए।
4. कर के दायरे को बढ़ाकर तथा भ्रष्टाचार एवं कर-चोरी की रोकथाम के द्वारा सकल कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों के अंश में वृद्धि की जाए।
5. राजकोषिय निपुणता के द्वारा गैर-योजना व्यय में कटौती की जाए।
6. अलाभदायक लोक उपक्रमों में विनिवेश एवं निजीकरण प्रभावी तरीके से किया जाए। लेकिन यह भ्रष्टाचार मुक्त एवं पारदर्शी होना चाहिए।
7. लोक उपक्रमों के प्रबन्ध एवं कार्यकुशलता में सुधार किया जाना चाहिए।

8. राज्यों को राजकोषीय मानदण्डों की पालना करने हेतु कहा जाए।
9. राज्य सरकारों एवं केन्द्र के बीच समन्वय बनाये रखा जाए।

3.8 सारांश (Summary)

राजकोषीय नीति राष्ट्र के आय व व्ययों का कार्यक्रमों निर्धारित कर आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन है।

राजकोषीय नीति के विभिन्न अंगों जैसे सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण इत्यादि के मध्य उपयुक्त समन्वय स्थापित कर आर्थिक विकास के उद्देश्य के लक्ष्य को भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

3.9 शब्दावली

मुद्रा प्रसार - वस्तुओं के मूल्य स्तर में लगातार वृद्धि होने की दशा।

कीमत स्थायित्व - मूल्यों में अत्यधिक कमी व वृद्धि पर नियंत्रण।

संतुलित आर्थिक विकास - अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में समान रूप से विकास।

निवेश - अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्रियाओं को बढ़ावा देने के लिए उत्पादक सम्पतियों में धन लगाना।

आयकर - व्यक्तियों व फर्मों द्वारा अर्जित एक वर्ष की आय पर लगने वाला एक।

आरोही कर - अधिक आय अर्जित करने वालों पर अधिक कर भार जबकि कम आय अर्जित करने वालों पर कम कर भार।

अवरोही कर - अधिक आय अर्जित करने वालों पर कम कर भार जबकि कम आय अर्जित करने वालों पर अधिक कर भार।

3.10 स्वपरख प्रश्न

1. राजकोषीय नीति का अर्थ बताते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. राजकोषीय नीति के भाग कौन से होते है। उनका विवेचन कीजिए।
3. भारत की राजकोषीय नीति का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
4. भारत की करारोपण नीति की विशेषताऐं बताईये।
5. भारत की राजकोषीय नीति के दोष बताते हुए इन्हें दूर करने के सुझाव दीजिए।

इकाई 4

भारत की औद्योगिक नीति

(Industrial Policy of India)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 औद्योगिक नीति का अर्थ

4.3 औद्योगिक नीति की आवश्यकता, उद्देश्य एवं महत्व

4.4 स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत की औद्योगिक नीति

4.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की औद्योगिक नीति

4.5.1 1948 की औद्योगिक नीति

4.5.2 1958 की औद्योगिक नीति

4.5.3 1977 की औद्योगिक नीति

4.5.4 1980 की औद्योगिक नीति

4.5.5 1900 की औद्योगिक नीति

4.6 औद्योगिक नीति 1991 में किये गये परिवर्तन

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 स्वपरख प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगें कि -

- औद्योगिक नीति के अर्थ का वर्णन कर सकें।
- औद्योगिक नीति की आवश्यकता, महत्व व उद्देश्य को स्पष्ट कर सकें।
- स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व की औद्योगिक नीति के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की सभी औद्योगिक नीतियों का ज्ञान प्राप्त कर सकें।

यह बता सकें कि औद्योगिक नीति का उद्योगों के विकास व आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता।

4.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए उसका औद्योगीकरण आवश्यक है। औद्योगीकरण द्वारा उद्योग धन्धों के विकास के साथ-साथ कृषि, यातायात, विदेशी व्यापार, रोजगार, राष्ट्रीय आय इत्यादि में विकास को भी प्रोत्साहन मिलता है। राज्य द्वारा औद्योगीकरण की स्वस्थ परम्पराएं स्थापित करने, नियन्त्रण करने, मार्ग-दर्शन देने, नियमन करने एवं तीव्र विकास करने के लिए औद्योगिक नीति की आवश्यकता होती है। औद्योगिक नीति देश के

औद्योगिक विकास का ढांचा तैयार कर, देश को स्वावलम्बी एवं समृद्ध बनाने में सहायक होती है। इसलिए सरकार की औद्योगिक नीति सुपरिभाषित, स्पष्ट एवं प्रगतिशील होनी चाहिए तथा उसका निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन व पालन किया जाना चाहिए।

4.2 औद्योगिक नीति का अर्थ (Meaning of Industrial Policy)

औद्योगिक नीति का तात्पर्य सरकार द्वारा उद्योगों के प्रति अपनायी जाने वाली सामान्य नीतियों का उल्लेख करना है। किसी भी औद्योगिक नीति के मुख्य रूप से दो भाग है - प्रथम, सरकार की विचाराधारा जो औद्योगीकरण का स्वरूप निश्चित करती है तथा द्वितीय, इसको कार्यान्वित करने वाले नियम तथा सिद्धान्त जो इस नीति के पीछे विद्यमान विचारधारा को निश्चित स्वरूप प्रदान करते है। इस प्रकार औद्योगीकरण नीति एक व्यापक अवधारणा है जो उद्योगों की स्थापना और कार्यप्रणाली के लिए नीति संबंधी ढांचा और मार्ग-दर्शन प्रदान करती है।

4.3 औद्योगिक नीति की आवश्यकता, उद्देश्य एवं महत्व (Need, objectives and Importance of Industry Policy)

औद्योगिक नीति की आवश्यकता, उद्देश्य एवं महत्व निम्नलिखित है :

1. **प्राकृतिक साधनों का उपयोग -** औद्योगिक नीति देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों को खोजने, एकत्रित करने एवं उनका पूर्ण उपयोग करने में सहायक होती है। जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जा सकती है।

2. **औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि -** औद्योगिक नीति का प्रमुख उद्देश्य देश में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना भी है। औद्योगिक नीति देश के औद्योगिक विकास को गति देती है। जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन में तेजी से वृद्धि होती है।

3. **आधुनिकीकरण-** औद्योगिक नीति औद्योगिक उत्पादन बढाने के लिए आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन देती है। जिससे औद्योगिक क्षेत्र में आधुनिकतम एवं नवीनतम तकनीकों का प्रयोग होता है। जिससे कम लागत पर श्रेष्ठ एवं अधिकतम उत्पादन सम्भव होता है।

4. **सन्तुलित औद्योगिक विकास -** औद्योगिक नीति देश में कृषि एवं उद्योगों के संतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। औद्योगिक नीति के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में संतुलित विकास में भी सहयोग मिलता है।

5. **सन्तुलित क्षेत्रीय विकास -** औद्योगिक नीति के माध्यम से देश के विभिन्न भागों का सन्तुलित आर्थिक विकास किया जा सकता है। इस नीति द्वारा पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की सुविधाऐं उपलब्ध करवा कर उनका तीव्र विकास किया जा सकता है।

6. **आधारभूत एवं उपभोक्ता उद्योगों में सामंजस्य -** आर्थिक विकास के लिए आधारभूत एवं उपभोक्ता उद्योगों का संतुलित विकास आवश्यक है। औद्योगिक नीति के माध्यम से जहां एक ओर आधारभूत उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया जाता है, वहीं दूसरों ओर उपभोक्ता उद्योगों पर भी ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार दोनों के संतुलित विकास द्वारा आर्थिक विकास की गति प्रदान की जाती है।

7. **वृहद उद्योगों एवं लघु तथा कुटीर उद्योगों में समन्वय -** औद्योगिक नीति बड़े पैमाने के उद्योगों एवं लघु तथा कुटीर उद्योगों का समन्वित विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती

है। औद्योगिक नीति के माध्यम से इन उद्योगों को प्रतियोगिता के स्थान पर परस्पर सहयोगी बनाया जा सकता है।

8. **निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र की सीमा निर्धारण -** औद्योगिक नीति निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र की सीमा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। औद्योगिक नीति के माध्यम से निजी क्षेत्र को उचित दिशा प्रदान की जाती है तथा उस पर पर्याप्त नियन्त्रण रखा जा सकता है। कार्यक्षेत्र निर्धारित होने से निजी एवं सार्वजनिक, दोनों क्षेत्रों का तीव्र गति से विकास होता रहता है।

9. **मधुर औद्योगिक सम्बन्ध -** श्रम एवं पूंजी में मधुर संबंध स्थापित करने के लिए एक उचित औद्योगिक नीति की आवश्यकता पड़ती है। इससे औद्योगिक सम्बन्ध मधुर रहते है। फलस्वरूप औद्योगीकरण की गति मिलती है।

10. **विदेशी सहयोग का राष्ट्रीय हित में उपयोग -** एक उपयुक्त औद्योगिक नीति विदेशी पूंजी एवं साहस को आकर्षित करती है। इससे देश के तीव्र औद्योगिक विकास में सहयोग मिलता है। सुविचारित औद्योगिक नीति विदेशी सहयोग के खतरों पर भी नियन्त्रण रखती है। उचित औद्योगिक नीति ही विदेशी सहायता का राष्ट्रीय हित में उपयोग कर सकती है।

4.4 स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत की औद्योगिक नीति (Industrial Policy of India before Independence)

ब्रिटिश सरकार की नीति भारतीय उद्योगों के प्रति उपेक्षापूर्ण ही नहीं अपितु विद्वैषपूर्ण थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्रारम्भ में निर्यात उद्योगों को प्रोत्साहन दिया परन्तु ब्रिटेन में इस नीति का तीव्र विरोध होने के कारण कम्पनी ने अपनी नीति में परिवर्तन किया। जब भारत की सत्ता ब्रिटिश सरकार के हाथों में चली गयी तब यहां पर मुक्त व्यापार का पालन किया गया। इस नीति के कारण ब्रिटेन के उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धा में हमारे वृहद् एवं लघु उद्योग नहीं ठहर सके और क्रमश: नष्ट हो गये। भारत के प्रति ब्रिटेन की आर्थिक नीति को टियर्ने ने इन शब्दों में व्यक्त किया था, "हमारी आर्थिक नीति का यह सामान्य सिद्धान्त हो कि इंग्लैण्ड हो कि इंग्लैण्ड का बना हुआ माल भारत में बेचा जाये, जिसके बदले में भारत का कच्चा माल खरीदा जाये।"

प्रथम महायुद्ध काल के समय इस नीति में परिवर्तन हुआ। युद्ध की आवश्यकताओं के लिए उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। सन् 1916 में औद्योगिक सम्भावनाओं की जांच के लिए औद्योगिक आयोग की नियुक्ति की गयी। सन् 1917 में इण्डियन एम्युनिशन बोर्ड की स्थापना की गयी। इस बोर्ड ने भी औद्योगिक उन्नति की दिशा में कुछ प्रयत्न किया। सन् 1919 में उद्योग को प्रान्तीय विषय बना दिया गया। सन् 1921 में प्रशुल्क आयोग की स्थापना की गई। इसकी सिफारिशों के आधार पर भारतीय उद्योगों के लिए विभेदात्मक संरक्षण नीति अपनायी गई, जिसके अनुसार पूर्व-निश्चित सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए चुने हुए उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। युद्ध काल में ही देश के आर्थिक विकास के लिए युद्धोत्तरकालीन पुनर्निर्माण समस्याओं पर विचार करने के लिए औद्योगिक समितियां बनायी गई।

4.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की औद्योगिक नीति (Industrial Policy of India after Independence)

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। जनता में नये विश्वास एवं आशा की लहर आयी, परन्तु आर्थिक परिस्थितियां अनुकूल नहीं होने के कारण औद्योगिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी। फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन कम हो गया, मूल्य-स्तर में वृद्धि हुई और औद्योगिक अशान्ति बढने लगी। इस अनिश्चितता तथा अशान्ति को दूर करने के लिए सितम्बर 1947 में एक 'औद्योगिक सम्मेलन' आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में उपयुक्त औद्योगिक नीति के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया तथा सरकार के समक्ष उत्पादन व सम्पत्ति का उचित वितरण करने, देश में उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग करने, केन्द्रीय नियोजन एवं निर्देशन की आवश्यकता, केन्द्रीकरण पर रोक, सामाजिक न्याय, उन्नत जीवन स्तर व उद्योगों को तीन श्रेणियों में विभाजित करने की सिफारिश की गई। सिफारिशों को मूर्तरूप देने के लिए सन् 1948 में भारत की प्रथम औद्योगिक नीति घोषित की गई।

4.5.1 सन् 1948 की औद्योगिक नीति (Industrial Policy of 1948)

औद्योगिक सम्मेलन के सुझावों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने अपनी पहली औद्योगिक नीति 6 अप्रैल, 1948 को घोषित की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात प्रथम औद्योगिक नीति का प्रतिवेदन तत्कालीन केन्द्रीय उद्योग मन्त्री डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा संसद में प्रस्तुत किया गया। 1948 की औद्योगिक नीति का प्रमुख बातें निम्नलिखित है

1. **औद्योगिक नीति के मुख्य उद्देश्य -** सन् 1948 की औद्योगिक नीति के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार थे-

1.1 ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण, जिसमें सभी व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो,

1.2 सभी व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्रदान करना,

1.3 राष्ट्रीय संसाधनों का यथासम्भव विदोहन,

1.4 कृषि तथा उद्योग दोनों क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ावा,

1.5 सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के उत्तरदायित्वों का निर्धारण,

1.6 निजी क्षेत्र के उद्योगों पर नियन्त्रण, तथा

1.7 समन्वित आर्थिक नियोजन।

2. **उद्योगों का वर्गीकरण -** इस नीति में उद्योगों को चार वर्गों में विभाजित किया गया -

2.1 प्रथम श्रेणी में 3 सामरिक महत्व के उद्योग रखे गये जिन पर सरकार का एकाधिकार रखा गया, ये उद्योग थे- 1. अस्त्र-शस्त्र निर्माण उद्योग, 2 अणु शक्ति का उत्पादन व नियन्त्रण, तथा 3. रेल यातायात का स्वामित्व एवं प्रबन्ध।

2.2 द्वितीय श्रेणी में 6 आधारभूत उद्योग रखे गये। ये उद्योग - 1. कोयला, 2. लोहा व इस्पात, 3. हवाई जहाज निर्माण 4. समुद्री जहाज निर्माण, 5. टेलीफोन, तार एवं बेतार का सामान बनाना (रेडियो रिसिविंग सेट को छोड़कर) तथा 6. खनिज तेल थे। इनके संबंध में यह

नीति बनायी गयी कि ये 10 वर्ष तक निजी उद्योगपतियों के अधिकार में रहेंगे। वे इस अवधि में उनका विकास भी कर सकेंगे लेकिन 10 वर्ष बाद यदि उपयुक्त समझा गया तो सरकार इनका राष्ट्रीयकरण कर सकेगी। यह निश्चित किया गया कि इन उद्योगों के नये कारखाने सरकार द्वारा ही खोले जायेंगे।

2.3 तृतीय श्रेणी में 20 महत्वपूर्ण उद्योग रखे गये। इन उद्योग पर राष्ट्रहित की दृष्टि से सरकार का नियन्त्रण व नियमन बना रहेगा। यद्यपि ये निजी उद्योगपतियों द्वारा चलाये जायेंगे निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को नई इकाईयां स्थापित करने की स्वतन्त्रता होगी। इस श्रेणी में भारी रसायन, चीनी, सूती व ऊनी वस्त्र, सीमेंट, कागज, नमक, मशीन टूल्स, खाद, रबड़, वायु व जल-परिवहन, मोटर, ट्रेक्टर, बिजली आदि को सम्मिलित किया गया।

2.4 चौथी श्रेणी में शेष समस्त उद्योग सम्मिलित किये गये जिन्हें निजी क्षेत्र में विकसित करने की नीति अपनायी गयी। परन्तु इन उद्योगों पर भी सरकारी नियन्त्रण रखा जायेगा।

3. **कुटीर एवं लघु उद्योगों का संरक्षण -** औद्योगिक नीति प्रस्ताव में लघु व कुटीर उद्योगों के महत्व को स्वीकार किया गया। ये उद्योग स्थानीय साधनों के प्रयोग द्वारा आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध करवाने में सहायक होंगे। इसके साथ-साथ लघु तथा कुटीर उद्योगों व बड़े उद्योगों में प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग प्रवृति पैदा की जायेगी।

4. **मधुर औद्योगिक सम्बन्ध -** इस औद्योगिक नीति में औद्योगिक सम्बन्ध सुधारने पर बल दिया गया। सरकार द्वारा घोषणा की गई वह श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए सभी आवश्यक कार्य करेगी। श्रम कल्याण कार्यक्रमों में श्रमिकों को लाभ व प्रबन्ध में भाग देने, औद्योगिक विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से हल करने तथा श्रमिकों की आवास समस्या को हल करने के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया गया। यह प्रस्ताव भी रखा गया कि मजदूरों को उचित मजदूरी मिले तथा साथ ही उद्योगपतियों को भी उनकी पूंजी पर उचित प्रतिफल मिलना चाहिए।

5. **विदेशी पूंजी एवं साहस-** देश की औद्योगीकरण हेतु विदेशी पूंजी के महत्व को स्वीकार किया गया, किन्तु उसका नियन्त्रण भारतीय हाथों में रखा जाना अनिवार्य माना गया। इसके लिए उन सभी उद्योगों में जिनमें विदेशी पूंजी का विनियोजन होता था, उनके स्वामित्व तथा प्रबन्ध में भारतीय हिस्सेदारी आधे से अधिक रखने का सुझाव दिया गया।

सन् 1948 की औद्योगिक नीति मिश्रित अर्थव्यवस्था का एक आधार थी। इसमें निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों को पर्याप्त महत्व दिया गया था। इस औद्योगिक नीति की जनता में मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। कुछ लोगों ने इस नीति का खुलकर स्वागत किया तथा इसे एक क्रांतिकारी कदम बताया जिससे लोकतंत्र की आधारशिला रखी जा सकेगी। लेकिन कुछ लोगो ने इस नीति की खुलकर आलोचना की। प्रो. के.टी.शाह ने कहा: "यह वह नीति नहीं थी जिसे एक प्रगतिशील तथा उन्नति की आशा रखने वाले देश को अपनाना चाहिए।" इस नीति को सरकारी उद्योगों के पक्ष एवं पूंजीपतियों की विरोधी नीति बताया गया।

4.5.2 सन् 1958 की औद्योगिक नीति (Industrial Policy of 1956)

1948 की नीति में समयानुसार परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होने लगी। तीव्र औद्योगीकरण के लिए एक सुनिश्चित व स्पष्ट नीति की आवश्यकता अनुभव करते हुए 30

अप्रैल, 1956 का तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने संसद में नई औद्योगिक नीति की घोषणा की।

इस नीति की मुख्य बातें निम्नलिखित थी :-

1. **उद्देश्य -** 1956 की औद्योगिक नीति के निम्नांकित उद्देश्य थे:-
   - 1.1. औद्योगीकरण द्वारा तीव्र आर्थिक विकास करना।
   - 1.2. आधारभूत एवं भारी यन्त्र निर्माण उद्योगों का विकास।
   - 1.3. सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार।
   - 1.4. आय व सम्पति की असमानता को कम करना।
   - 1.5. निजी एकाधिकार एवं केन्द्रीयकरण की प्रवृत्तियों पर रोक।
   - 1.6. समाजवादी समाज की स्थापना के लिए प्रयत्न।

2. **उद्योगों का श्रेणी विभाजन** - उद्योगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया:

2.1. अनुसूची 'अ' - इस अनुसूची में सुरक्षा, सार्वजनिक उपयोगिता, आधारभूत एवं मूलभूत यातायात एवं खनिज आदि 17 उद्योगों शामिल किये गये, जो 1948 की नीति की प्रथम व द्वितीय श्रेणी में थे। इन उद्योगों के विकास की जिम्मेदारी सरकार पर डाली गयी। लेकिन कहा गया कि निजी साहसियों को अपने वर्तमान उद्योगों का विस्तार करने की छूट होगी। नई इकाईयां स्थापित करते समय सरकार निजी क्षेत्र का भी सहयोग ले सकेगी। नीति निर्धारण संबंधी अधिकार सरकार के हाथ में होगें।

2.2. अनुसूची 'ब' - इस अनुसूची में 12 उद्योगों का समावेश था, जिन्हें धीरे-धीरे केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के नियन्त्रण में लिया जायेगा। नई इकाईयों की स्थापना राज्य द्वारा ही की जाएगी। साथ ही साथ निजी साहसियों को भी विद्यमान उद्योगों के विस्तार का अवसर दिया जाएगा चाहे वे व्यक्तिगत रूप से या सरकार की साझेदारी में इनका विकास करें।

2.3. अनुसूची 'स'-शेष सभी उद्योगों को अनुसूची 'स' में रखा गया। इनके भावी विकास का भार निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया गया, लेकिन यदि सरकार चाहे तो इस क्षेत्र में भी प्रवेश कर सकती थी।

3. **कुटीर एवं लघु उद्योग -** इस नीति में रोजगार के अवसर बढ़ाने, राष्ट्रीय आय का अधिक समान वितरण करने एवं पूंजी व दक्षता का अधिक उपयोग करने के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों को विशेष महत्व दिया गया।

4. **औद्योगिक शांति -** 1948 की नीति की भांति इस नीति में भी श्रमिकों को विकास में साझेदार मानकर, लाभ व प्रबन्ध में हिस्सा देकर तथा अन्य तरीकों से औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने पर जोर दिया गया।

5. **पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास -** सरकार पिछड़े हुए क्षेत्रों के औद्योगिक विकास पर अधिक ध्यान देगी जिससे औद्योगिक विकास में असमानता को दूर किया जा सके। इसके लिए सरकार इन क्षेत्रों में बिजली, पानी एवं परिवहन की सुविधाऐं बढ़ायेगी जिससे पिछड़े क्षेत्रों में भी कारखानों की स्थापना की जा सके।

6. **कर्मचारियों को प्रशिक्षण -** औद्योगीकरण की सफलता प्राविधिक ज्ञान, कुशल प्रबन्ध तथा पर्याप्त प्रशिक्षण व्यवस्था पर निर्भर करती है। प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था के लिए विश्वविद्यालयों एवं अन्य शिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण की व्यवस्था की जायेगी।

7. **विदेशी पूंजी -** 1948 में घोषित विदेशी पूंजी संबंधी नीति के समान इस नीति में विदेशी पूंजी को भारतीय पूंजी के समान मानकर भारत के आर्थिक विकास के लिए आमन्त्रित किया गया। विदेशी पूंजी के राष्ट्रीयकरण के समय उचित मुआवजा देने की घोषणा की गई।

8. **निजी क्षेत्र का नियन्त्रण एवं सहायता** - सरकार निजी क्षेत्र को भी सहायता प्रदान करेगी लेकिन उस पर राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर सरकारी नियन्त्रण किया जायेगा। निजी उद्योगों का नियमन औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम द्वारा किया जायेगा।

9. **सार्वजनिक उद्योगों में प्रबन्ध व्यवस्था -** सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व दिये जाने के कारण कार्य-कुशलता व प्रबन्ध व्यवस्था पर भी जोर दिया गया। यह माना गया है कि उत्तरदायित्व की भावना, अधिकारों का विकेन्द्रीकरण, शीघ्र निर्णय व व्यापारिक सिद्धान्तों पर चलने से ही उद्योगों का विकास सम्भव हो सकेगा।

1956 की औद्योगिक नीति के संबंध में मिली-जुली प्रतिक्रियाऐं व्यक्त की गई। इस नीति में सार्वजनिक उपक्रमों के लिए एक बड़ा क्षेत्र सुरक्षित किया गया जो सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की अकुशलता को देखते हुए उपयुक्त नहीं था। इस नीति में राष्ट्रीयकरण का परोक्ष भय विद्यमान था। इस नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था द्वारा समाजवाद लाने की नीति से केन्द्रीकरण एवं एकाधिकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला।

4.5.3 जनता सरकार की औद्योगिक नीति 1977 (Industrial Policy of 1977)

मार्च, 1977 में पहली बार केन्द्र में जनता पार्टी की गैर कांग्रेसी सरकार आयी। जनता सरकार को अपने चुनाव घोषणा पत्र में किये गये वायदे पूरे करने थे। इनको ध्यान में रखकर 23 दिसम्बर, 1977 को तत्कालीन उद्योग मन्त्री जॉर्ज फर्नांडीस ने जनता सरकार की औद्योगिक नीति घोषित की।

1956 की औद्योगिक नीति के आधार पर देश तेजी से औद्योगिक विकास कर सका तथा भावी विकास के लिए आधारभूत उद्योगों की स्थापना की गई। समय में परिवर्तन के साथ 1970,1973 व 1975 में इस नीति में कुछ परिवर्तन किये गये। लेकिन वास्तव में इस नीति से बड़े व पूंजी प्रधान उद्योगों का विकास न होने से बेरोजगारी में वृद्धि हुई। बड़े उद्योगों

के लाभ कुछ ही लोगों को मिलने के कारण समाज में आर्थिक असमानता बढ़ी। स्पष्ट है इन विभिन्न दोषों को दूर करने तथा तेजी से आर्थिक विकास करने के लिए इस नई औद्योगिक नीति की आवश्यकता अनुभव की गई।

जनता सरकार की भौगोलिक नीति की प्रमुख विशेषताऐं -

1. **प्रमुख उद्देश्य -** इस नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे :

1.1 मानवीय एवं भौतिक साधनों का सर्वोत्तम उपयोग,

1.2 आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं का अधिकतम उत्पादन,

1.3 रोजगार प्रधान उद्योगों का तीव्र विकास

1.4 सामाजिक आकांक्षाओं के अनुरूप औद्योगिक विकास

1.5 एकाधिकारी प्रवृति और आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण पर रोक।

2. **लघु उद्योगों का विकास -** जिन वस्तुओं का उत्पादन छोटे और कुटीर उद्योगों द्वारा हो सकता है, उनका उत्पादन छोटी इकाईयों द्वारा ही किया जायेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 504 वस्तुओं की एक सूची प्रकाशित की गयी जिनका उत्पादन लघु इकाईयों के लिए आरक्षित कर दिया गया। तथा कुटीर उद्योगों की सहायता एवं संरक्षण के लिए कानून बनाया जायेगा ताकि इन उद्योगों में कार्यशील व्यक्तियों को बेरोजगारी का सामना नहीं करना पड़े।

3. **अति लघु क्षेत्र -** ऐसी औद्योगिक इकाइयां, जिनमें मशीनरी आदि में एक लाख रूपये तक की पूंजी लगी हुई है तथा जो 50,000 से कम आबादी वाले कस्बों में कार्यशील है, के विकास पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

4. **बड़े उद्योग -** सरकार ने यह निर्णय किया कि नगरों एवं बडे कस्बों में बड़ी औद्योगिक ईकाइयां की स्थापना के लाइसेन्स नहीं दिये जायेंगे। बडी इकाईयां गांवों तथा नये स्थानों में स्थापित करने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया जायेगा। जैसे सीमेंट, इस्पात, धातु एवं खनिज, तेल शोधन एवं मशीन निर्माण तथा जिन उद्योगों में उच्च स्तरीय तकनीकों का प्रयोग आवश्यक हो जैसे खाद, रसायन उद्योग आदि।

5. **बड़े औद्योगिक घरानों पर प्रतिबन्ध -** इस नीति में बड़े औद्योगिक घरानों को नये उद्योगों की स्थापना तथा पुरानी इकाइयों के विस्तार की अनुमति देने पर रोक लगायी गयी। ताकि आर्थिक सत्ता के संकेन्द्रण को रोका जा सकेगा।

6. **सार्वजनिक क्षेत्र की कुशलता में वृद्धि -** नयी औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के विषय के विकास के लिये लोक क्षेत्र का सभी वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण क्षेत्र में विस्तार किया जायेगा। इस क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों के विकास एवं प्रबन्ध के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति की जायेगी। ताकि ये इकाईयां अधिक व्यवस्थित ढंग से काम कर सकें और पर्याप्त लाभार्जन कर सकें।

7. **विदेशी पूंजी -** भारत में कार्यशील विदेशी कम्पनियों को कम से कम 60 प्रतिशत पूंजी भारतीयों को बेचनी होगी, इस प्रकार विदेशी कम्पनियों में विदेशी पूंजी अंश 40 प्रतिशत या इससे कम होगा। इससे विदेशी कम्पनियों का भारतीयकरण करने में सहायता मिलेगी। अनावश्यक विदेशी निवेश को रोकने के लिए सरकार ऐसे उद्योगों की सूची जारी करेगी जिनमें अब विदेशी सहयोग नहीं लिया जायेगा।

1977 की औद्योगिक नीति की समीक्षा -

इस औद्योगिक नीति में बड़े उद्योगों को कम और छोटे उद्योगों को अधिक महत्व दिया गया।

भारत की सबसे महत्वपूर्ण समस्या बेरोजगारी की समस्या है इस औद्योगिक नीति में नये साहस और कम पूंजी वाले उद्योगों को ग्रामों में ही स्थापित करने की योजना थी।

इस औद्योगिक नीति में ग्रामों की ओर तथा ग्राम विकास का जो नारा दिया गया वह एक क्रान्तिकारी कदम था। भारत के ग्राम अब भी आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। औद्योगिक विकास के बिना उनका उत्थान सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से औद्योगिक नीति विकास

परक थी। इस औद्योगिक नीति में भारतीयता का पुट अधिक था। पूंजी, तकनीक तथा प्रबन्ध आदि के संबंध में भारतीय साधनों के प्रयोग को अधिक महत्व दिया गया।

4.5.4 औद्योगिक नीति 1980 (Industrial Policy of 1980)

जनवरी, 1980 में कांग्रेस पुन: सत्ता में आयी और उसने जनता सरकार की 1977 की औद्योगिक नीति का त्याग कर नई औद्योगिक नीति घोषित की। यह नीति मूल रूप से 1956 की नीति पर ही आधारित थी। इस नीति में आधुनिकीकरण, विस्तार एवं पिछड़े क्षेत्रों के विकास को आधार माना गया। औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए इस नीति में अनेक रियायतें दी गई और पिछड़े क्षेत्र के विकास के लिए 'केन्द्रीय औद्योगिक केन्द्र' स्थापित किये गये।

4.5.5 औद्योगिक नीति - 1990 (Industrial Policy of 1990)

राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के उद्योग मन्त्री श्री अजीत सिंह ने 3। मार्च, 1990 को नई औद्योगिक नीति घोषित की। इस नीति में लघु उद्योगों एवं कृषि पर आधारित उद्योगों के विकास पर बल दिया गया। यह नीति 1980 की औद्योगिक नीति से भी अधिक उदार थी तथा इसमें व्यावहारिक पक्ष को ध्यान में रखा गया था। इस नीति के परिणाम दृष्टिगोचर होने से पूर्व ही राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का पतन हो गया।

4.5.6 औद्योगिक नीति - 1991 (Industrial Policy of 1991)

जनता पार्टी के शासन के पतन के पश्चात् पुन: कांग्रेस पार्टी सत्ता में आयी तथा नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी। यह नीति अधिक उदार तथा मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर होने वाली रही। नब्बे के दशक के दौरान पहले से प्राप्त लाभों को समेकित करने के लिए एवं घरेलू उद्योगों को स्पर्धात्मक प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए इस नीति में अनेक कदम उठाये गये। यह नीति वास्तव में उदार एवं खुली अर्थव्यवस्था का सूत्रपात करने वाली है, अर्थात् समाजवाद के स्थान पर पूंजीवाद की ओर कदम बढ़ाने वाली नीति है। 24 जुलाई, 1991 को तत्कालीन उद्योग राज्य मंत्री श्री पी.जे. कुरियन ने लोकसभा में इस नवीन औद्योगिक नीति की घोषणा की।

उद्देश्य -

1. देश के भावी औद्योगिक विकास हेतु अब तक हुए विकास के आधार पर एक सुदृढ़ ढांचा तैयार करना।
2. देश की औद्योगिक विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करना।
3. देश की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में वृद्धि करना।
4. औद्योगिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करना तथा अनावश्यक औपचारिकताओं एवं नियन्त्रण को खत्म करना।
5. उत्पादकता एवं लाभकारी रोजगार के विकास कार्यो हेतु प्रयासों को जारी रखना।
6. विदेशी विनियोग एवं प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित करने के लिए प्रयत्न करना।
7. देश में निजी क्षेत्र के विकास हेतु वातावरण का निर्माण करना।
8. पूंजी बाजार का विकास करना।
9. देश को औद्योगिक आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर करने के लिए प्रयत्न करना।

10. सामाजिक न्याय के लिए प्रयत्न करना।

11. देश में उपलब्ध संसाधनों का कुशलतम उपयोग करना।

12. औद्योगिक निष्पादन में सुधार हेतु प्रयत्न करना।

1991 की औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएँ (Main features of Industrial Policy of 1991) - 1991 की औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है -

I. **सार्वजनिक क्षेत्र के क्रम में नीति -** इस औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र या लोक उपक्रम के क्रम में निम्नलिखित बातों का समावेश किया गया -

1. **कुछ विशिष्ट उद्योगों में ही विनियोग -** सरकार ने इस नीति में इस बात पर बल दिया कि सरकार केवल सैनिक साजों-सामान, परमाणु ऊर्जा, खनन, रेल परिवहन में ही सामान्यतया विनियोग करेगी तथा अन्य क्षेत्रों को निजी उद्योगपतियों के लिए छोड़ देगी।

2. **आरक्षित क्षेत्र -** इस नीति में सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित सूची में अब 17 क्षेत्रों के स्थान पर मात्र 8 ही क्षेत्र होंगे जो क्रमशः इस प्रकार है - (i) शस्त्र, गोला-बारूद सम्बन्धित सुरक्षा उपकरण, सेना के लिए विमान एवं जलपोत, (ii) आणविक ऊर्जा, (iii) कोयला एवं लिग्नाइट, (iv) खनिज तेल, (v) लोहा, मैंगनीज, क्रोम, जिप्सम, गन्धक, सोना, हीरा खनन आदि, (vi) ताम्बा, जस्ता, शीशा, टिन, (vii) आणविक ऊर्जा में प्रयुक्त होने वाले खनिज, एवं रेल परिवहन।

3. **जनता की भागीदारी -** सार्वजनिक क्षेत्र में जनता की भागीदारी के लिए कुछ उद्योगों के अंश आम जनता, विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं, कर्मचारियों आदि को बेचे जायेंगे। इस निर्णय से अब सार्वजनिक क्षेत्र के अंश पूँजी बाजार में क्रय-विक्रय के लिए उपलब्ध हो सकेंगे।

4. **प्रबन्ध व्यवस्था में सुधार -** सार्वजनिक क्षेत्र की प्रबन्ध व्यवस्था में सुधार हेतु अनेक कदम उठाये गये, जैसे-पेशेवर प्रबन्धकों की नियुक्ति, प्रबन्धकों को अधिकाधिकार आदि।

5. **रूग्ण उपक्रमों के क्रम में नीति -** जो उपक्रम निरन्तर रूग्ण चल रहे है, उनके सुधार के लिए उन्हें औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निमाण मण्डल या इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं को सौंपा जायेगा। इस क्रम में इस बात का पूरा ध्यान रखा जायेगा कि श्रमिकों के हितों पर विपरीत प्रभाव न पड़े।

6. **काम-काज में सुधार हेतु प्रयत्न -** सार्वजनिक उपक्रमों में काम-काज में सुधार हेतु आपसी सहमति समझौतों पर अधिक बल दिया जायेगा। प्रबन्धकों को इसके लिये स्वायत्ता प्रदान के साथ-साथ अधिक जवाबदेही होना होगा। इन समझौतों को संसद में भी चर्चा हेतु रखा जायेगा।

7. **श्रमिकों की सुरक्षा -** इस नीति में श्रम सुरक्षा एवं श्रम-कल्याण को प्राथमिकता दी गई है। सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों की सुरक्षा हेतु 'सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था' प्रारम्भ की जायेगी, जिसमें श्रमिकों की छंटनी आदि की दशा में उनके पुनर्वास आदि की व्यवस्था की जायेगी।

II. **निजी क्षेत्र के क्रम में नीति -** वास्तव में यह नीति सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र. को अधिक बढ़ावा देने वाली तथा इस क्षेत्र के विकास एवं विस्तार को अधिक गति प्रदान करने के उद्देश्य से बनायी गयी। निजी क्षेत्र के संबंध में इस नीति में निम्नलिखित बातें है-

1. **निजी क्षेत्र की भूमिका विकास -** सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की सूची में से 9 उद्योगों को निजी क्षेत्र द्वारा भी स्थापित करने की छूट देकर निजी क्षेत्र के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया गया। नीति में निजी क्षेत्र को अब अधिक विकास के अवसर प्रदान किये गये है।

2. **लाइसेन्स प्रणाली में संशोधन -** लाइसेन्स प्रणाली में संशोधन कर इस नीति में मात्र 18 उद्योगों को छोडकर शेष सभी उद्योगों की स्थापना के लिए निजी क्षेत्र को लाइसेन्स लेने की व्यवस्था से मुक्त कर दिया गया। ये उद्योग इस प्रकार है - (i) कोयला एवं लिग्नाइट, (ii) पेट्रोल शोधक, (iii) शराब, (iv) चीनी, (v) पशु-चर्बी एवं तेल, (vi) एस्बेस्टास, (vii) प्लाईवुड एवं प्लाईवुड से संबंधी उत्पाद, (viii) सिगरेट, सिगार इत्यादि (ix) कच्ची खालें तथा चमड़ा, (x) फर की खाल, (xi) कार, (xii) कागज तथा अखबारी कागज, (xiii)ए इलेक्ट्रॉनिक्स, वायुयान तथा रक्षा उपकरण, (xiv) औद्योगिक विस्फोटक सामग्री तथा माचिस, (xv) खतरनाक रसायन, (xvi) औषधि तथा दवाइयाँ, (xvii) मनोरंजक इलेक्ट्रोनिक उपकरण-टी.वी., वी.सी.आर. आदि, (xviii) घरेलू उत्पाद तथा रेफ्रिजरेटर, वाशिंग मशीन, एस.सी. आदि।

उदारीकरण के तहत जुलाई, 1991 के पश्चात् इन अनिवार्य लाइसेन्स लेने हेतु उद्योगों की सूची को कम किया गया है। लघु उद्योग मन्त्री प्रो. पी.जे. कुरियन ने 4 जुलाई, 1992 को इस क्रम में कहा कि 11 उद्योगों को और अधिक बन्धनमुक्त करने की नीति के तहत सरकार ने देश में बनी यात्री कारों, इलेक्ट्रोनिक सामान तथा घरेलू जरूरत की गई चीजों के लिए लाइसेन्स समाप्त करने का फैसला किया है।

सरकार ने अब इस अनिवार्य लाइसेन्स सूची में से तीन उद्योगों - कारों, रेफ्रिजरेटर, ए.सी., वाशिंग मशीन, चमड़ा तथा चमड़े से बनी वस्तुओं को हटा दिया है, अर्थात् अब इनके उत्पादन हेतु लाइसेन्स लेने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

III. **लघु उद्योगों के क्रम में नीति -** लघु उद्योगों को विशेष महत्व देते हुए इस औद्योगिक नीति में इस क्रम में निम्नलिखित बातों को स्वीकार किया गया -

1. **पूंजी सीमा का पुन: निर्धारण -** लघु उद्योगों का निर्धारण उसकी विनियोजित पूँजी से किया जाता है। अब अति लघु उद्योग उसे माना जायेगा जिसमें 5 लाख रूपये (संयंत्र एवं मशीनरी पर विनियोजन) तक पूँजी विनियोग की गई हो। लघु उद्योग की दशा में यह विनियोजन सीमा 60 लाख रूपये तथा सहायक उद्योगों की दशा में 75 लाख रूपये होगी, अर्थात् उपरोक्त सीमा तक पूँजी विनियोजन वाले उद्योग लघु उद्योग की श्रेणी में आयेंगे।
2. **आरक्षण -** लघु उद्योगों के लिए 836 वस्तुओं के उत्पादन का आरक्षण होगा अर्थात् उपरोक्त सूची में वर्णित 836 वस्तुओं का उत्पादन अन्य क्षेत्र द्वारा नही किया जा सकेगा।
3. **लाइसेन्स व्यवस्था से छूट -** लघु उद्योगों को लाइसेन्स व्यवस्था से पूर्णत: मुक्त किया गया है।

4. इस नीति के तहत अब लघु उद्योग अपनी अंशधारिता का 24 प्रतिशत तक हिस्सा वृहद् उद्योगों को दे सकते है। इस व्यवस्था से लघु उद्योगों को अधिक मात्रा में पूँजी तथा प्रोद्योगिकी प्राप्त हो सकेगी।
5. इस औद्योगिक नीति के अन्तर्गत केवल सम्बन्धित राज्य के विशेष विभाग या निदेशालय में उद्योग को पंजीयन कराने पर ही, उद्योग सभी सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकारी हो जायेगा।
6. एक खिड़की ऋण योजना के तहत परियोजना हेतु ऋण की रकम 20 लाख रूपये कर दी गई है।
7. लघु उद्योगों के विकास हेतु केन्द्र, राज्य एवं विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं के सहयोग से एक नवीन योजना का क्रियान्वयन किया जायेगा।
8. लघु उद्योगों के विलम्बित भुगतान समस्या के समाधान हेतु भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की सेवाओं का विस्तार किया जायेगा।
9. निर्यात को प्रोत्साहन देने हेतु लघु उद्योग विकास संगठन के अधीन एक 'निर्यात विकास केन्द्र' स्थापित किया जायेगा।
10. लघु उद्योगों को विशेष महत्व देने की नीति के तहत जुलाई, 1992 में अलग से लघु उद्योग मन्त्रालय बनाया गया, तथा लघु उद्योग मन्त्री के पद का सृजन किया गया।
11. ग्रामीण और खादी लघु उद्योगों को औद्योगिक एवं श्रम कानूनों के तहत विशेष रियायतें देने हेतु जुलाई, 1993 में एक समिति का गठन किया गया है, जो तीन माह में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देगी।

IV. **उद्योगों को कानूनी एवं प्रशासनिक नियन्त्रणों से मुक्ति** - इस नीति में अनेक प्रशासनिक एवं कानूनी व्यवस्थाओं से मुक्त कर उद्योगों के विकास एवं विस्तार प्रक्रिया को सरल बना दिया गया है। अब उद्योगों को अपनी क्षमता के विस्तार करने एवं विविधीकरण के लिए पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है। इस हेतु एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार, व्यवहार अधिनियम में भी संशोधन किया गया है।

V. **विदेशी पूंजी विनियोजन एवं प्रौद्योगिकी के क्रम में नीति -** इस क्रम में निम्नलिखित तथ्यों का समावेश किया गया है-

1. उच्च प्राथमिकता वाले 34 उद्योगों में विदेशी पूंजी का हिस्सा 51 प्रतिशत तक हो सकता है। इस हेतु विदेशी मुद्रा नियमन कानून 'फेरा' में आवश्यक संशोधन किये जायेंगे।
2. उपरोक्त प्रकार के पूँजी विनियोजन वाली औद्योगिक इकाइयों पर कल-पुर्जे, कच्चे माल तथा तकनीकी जानकारी के आयात के क्रम में सामान्य नियम लागू होंगे, लेकिन रिजर्व बैंक विदेशों में भेजे जाने वाले लाभांश पर निगरानी रखेगा जिससे बाहर भेजे गये लाभांश तथा निर्यात आय के मध्य सन्तुलन स्थापित हो सके।
3. विदेशी उद्यमियों को पूँजी निवेश हेतु प्रेरित किया जायेगा, इस क्रम में विदेशी विनियोग के अनुमोदन हेतु एक विशेषाधिकार प्राप्त बोर्ड की स्थापना की जायेगी।

4. विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात हेतु प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों को घरेलू विक्रय के 5 प्रतिशत तक या निर्यात के 8 प्रतिशत तक अथवा एक करोड़ रूपये तक की एक मुश्त रकम की अदायगी के मामले में किसी प्रकार की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी।
5. गैर प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों में विदेशी पूँजी निवेश की प्रक्रिया को अधिक सरल बनाया गया है।
6. गैर उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों की दशा में विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात हेतु विदेशी मुद्रा के लिए अनुमोदन की आवश्यकता होगी, किन्तु यदि उद्योग स्वयं विदेशी मुद्रा की व्यवस्था करता है तो ऐसे अनुमोदन की आवश्यकता नही होगी।
7. विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की नियुक्ति एवं देश में ही विकसित तकनीकों को विदेशों में परीक्षण हेतु किसी प्रकार की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी।

VI. **जनसंख्या-पर्यावरण एवं उद्योग -** ऐसे नगर जिनकी जनसंख्या 10 लाख से अधिक है, उन नगरों में इलेक्ट्रॉनिक्स एवं गैर-प्रदूषणकारी उद्योगों को ही स्थापित करने की अनुमति दी जायेगी। अन्य उद्योगों की स्थापना नगर की सीमा से 25 किलोमीटर दूर की जायेगी।

वातावरण की सुरक्षा एवं जनसंख्या के घनत्व को कम करने के उद्देश्य से यह नीति अपनायी गयी है। देश की क्षेत्रीय विषमता को कम करने के उद्देश्य से इस नीति में पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग लगाने पर विशेष सरकारी प्रोत्साहन की व्यवस्था की गयी है।

VII. **श्रमिकों के संबंध में नीति -** श्रमिकों के सम्बन्ध में यह औद्योगिक नीति उनके हितों को संरक्षण प्रदान करने वाली है। इस नीति में श्रमिकों के हितों की सुरक्षा, श्रम कल्याणकारी योजनाओं में अभिवृद्धि, तकनीकी परिवर्तनों के अनुरूप श्रमिकों को तैयार करने हेतु प्रशिक्षण एवं कौशल, विकास कार्यक्रम प्रारम्भ करने, संस्था की प्रगति, विकास तथा प्रबन्ध में भागीदारी तथा रूग्ण उपक्रमों को श्रमिक सहकारी समितियों के द्वारा संचालित करने की बात कही गयी है।

4.6 औद्योगिक नीति, 1991 में किये गये परिवर्तन

1991 के औद्योगिक नीति के बाद के वर्षो में किये गये महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित है-

1. **औद्योगिक अनुज्ञापन से मुक्ति -** 1991 की नीति में 18 प्रमुख उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों को अनुज्ञापन से मुक्त किया गया था, लेकिन बाद में चार अन्य उद्योगों को लाइसेन्स लेने की आवश्यकता से मुक्त कर दिया गया जिससे लाइसेन्स की आवश्यकता से मुक्त उद्योगों की संख्या 14 रह गयी। इसके बाद भी 1997 में केन्द्र सरकार ने उदारीकरण की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ाते हुए 5 अन्य उद्योगों को तथा फिर बार के तीन वर्षो में चार और उद्योग को अनिवार्य अनुज्ञापन की परिधि से बाहर कर दिया है। इस प्रकार अब 2002 की स्थिति के अनुसार केवल 5 उद्योगों के लिए ही अनुज्ञापन लेना अनिवार्य रह गया।

वे उद्योग जिनके लिए अब लाइसेन्स लेना अनिवार्य है - (i) एल्कोहलिक पेयों का आसवन व इनसे शराब बनाना, (ii) तम्बाकू के सिगार एवं सिगरेट तथा विनिर्मित तम्बाकू के अन्य विकल्प, (iii) इलैक्ट्रॉनिक एयरोस्पेस व सुरक्षा उपकरण, (iv) औद्योगिक विस्फोटक-

डिटोनटिव फ्यूज, सेफ्टीफ्यूज, गन पाउडर, नाइट्रोसेल्यूलोज तथा माचिसों सहित औद्योगिक विस्फोटक सामग्री, (v) खतरनाक रसायन।

2. **विदेशी पूँजी निवेश सीमा में परिवर्तन -** दिसम्बर, 1996 तक 48 उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में विदेशी पूँजी निवेश की सीमा को 51 प्रतिशत किया गया है। इससे पूर्व 1991 की नीति में यह सीमा केवल 34 उद्योगों के लिए निर्धारित की गयी थी।

खनन क्रियाओं से सम्बन्ध रखने वाले तीन उद्योगों में विदेश पूँजी निवेश की सीमा 50 प्रतिशत तथा 9 अन्य उद्योगों में विदेशी पूँजी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत तक सरकार द्वारा अनुमति प्रदान कर दी गयी है। इन उद्योगों के अतिरिक्त गैर-सूचीगत कम्पनियों में विदेशी संस्थागत निवेशक एक कम्पनी की पूँजी में 10 प्रतिशत तक (पूर्व में 5 प्रतिशत) निवेश कर सकते है।

3. **सरकारी खजिन उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोलना -** 26 मार्च, 1993 से उन 13 खनिजों को जो पहले सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित थे, निजी क्षेत्र के लिए खोल. दिया गया है।

4. **सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग -** 1991 की नीति के द्वारा सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित 17 उद्योगों की संख्या को घटा कर 8 किया गया तथा बाद में इसे भी सन् 2000 तक कम कर के केवल 4 तथा वर्ष 2002 तक केवल 3 कर दिया गया है। जिन 3 उद्योगों को सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित रखा गया है, वे इस प्रकार है (i) परमाणु ऊर्जा, (ii) रेल्वे परिवहन, तथा (iii) परमाणु ऊर्जा आदेश, 1953 में विनिर्दिष्ट खनिज।

5. **उत्पाद एवं आयात शुल्कों में कमी -** पूंजीगत वस्तुओं पर उत्पाद शुल्कों को युक्तियुक्त बनाया गया है और पूंजी संबंधी लागतों को कम करने तथा निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए आयात शुल्कों में और भी कटौती की गयी है।

6. **पूँजी लाभ पर कर में कमी -** पूंजी बाजार में विदेशी निवेश के स्तरों में वृद्धि करने के लिए विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए अल्पकालिक पूंजी लाभों पर 30 प्रतिशत की रियायती कर की दर आरम्भ की गयी है।

7. **नियमित निवेशकों को लाभ -** सहायता संघ के लिए अनिवार्यत: उधार देने की सीमा 5 करोड़ रूपये से बढ़ा कर 50 करोड़ रूपये कर दी गई। इससे निगमित निवेशकों को अपने बैंक का चयन करने में अत्यधिक लचीलापन मिलेगा और वे बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा का लाभ उठा सकेंगे।

8. **नये उद्योगों व विद्युत उत्पादन के लिए कर छूट-** औद्योगिक रूप से पिछडे हुए राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में नये उद्योगों के लिए और भार में कहीं भी विद्युत उत्पादन करने के लिए पांच वर्ष तक कर की छूट लाग की गई है। इसे बाद में बढ़ा कर सन् 2000 तक कर दिया गया है।

9. **निर्यात पुनर्वित ऋण आसान -** निर्यात ऋण पुनर्वित सीमाओं में वृद्धि की गई है। पुनर्वित ऋण का 90 प्रतिशत अब अमरीकी डॉलरों में उपलब्ध है।

10. **ऋण के लिए अनुपातों में कमी -** वाणिज्यिक क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण उपलब्ध कराने के लिए 'नकदी आरक्षण अनुपात' तथा वैद्यानिक तरल अनुपात' को संशोधित करके क्रमश: 10 प्रतिशत और 31.5 प्रतिशत कर दिया गया है। वर्तमान में नकद आरक्षण अनुपात अप्रैल 2000

से 8 प्रतिशत तथा 2007 में 6.5 प्रतिशत तथा वैद्यानिक तरल अनुपात 25 प्रतिशत किया गया है।

11. **थोक दवाओं के लिए लाइसेन्स समाप्त -**लगभग समस्त थोक दवाओं के लिए औद्योगिक लाइसेन्स समाप्त कर दिया गया है।

12. **दूर संचार में उदार निवेश -** आधारभूत दूरसंचार सेवा के क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी तथा विदेशी निवेश की अनुमति प्रदान की गई है।

13. **विदेशी निवेश की सीमा में वृद्धि -** विदेशी संस्थागत निवेशकों, अनिवासी भारतीयों तथा अनिवासी भारतीय विदेशी कम्पनी निकायों द्वारा किसी सूचीगत कम्पनी में कुल निवेश की सीमा 24 प्रतिशत से बढ़ा कर 2000-2001 के बजट में 40 प्रतिशत कर दी गयी है।

14. **उपक्रम पूंजी निधियों को छूट -** नये उपक्रमों में निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए उपक्रम पूंजी निधियों को अब यह सुविधा है कि वे किसी कम्पनी में अपनी संग्रहित राशि का 20 प्रतिशत तक निवेश कर सकती है (पहले यह सीमा मात्र 5 प्रतिशत तक ही थी)।

15. **उपढांचे के निर्माण में कर छूट -** उपढाचें के निर्माण, रख-रखाव तथा विकास की दृष्टि से सड़क, पुल, बन्दरगाह एवं प्रमुख उपढाचें वाली सेवाओं में संलग्न कम्पनियों व संगठनों को प्रदान की जा रही 5 वर्षीय कर छूट का लाभ जलापूर्ति, सफाई, गन्दे पानी का निकास आदि सेवाओं को भी दिया जाने लगा है। जनवरी, 1997 से दूर संचार की परियोजनाओं को भी इस योजना के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया है।

16. **मोडेवेट प्रणाली का विस्तार -** संशोधित मूल्य आधारित प्रणाली का विस्तार कर इसे वस्त्र उद्योग, पेट्रोलियम पदार्थो तथा पूंजीगत माल पर भी लागू किया गया हैं मोडेवेट स्कीम का स्थान अब 2000-2001 के बजट के आधार पर 'सेनवैट' ने ले लिया है। इस के तहत अब 16 प्रतिशत की दर से सेनवैट की केवल एक दर केन्द्रीय उत्पाद के लिए लगाई गयी है। विशिष्ट उत्पाद शुल्क के लिए तीन दरें - 8 प्रतिशत, 16 प्रतिशत व 24 प्रतिशत लागू की गयी है।

17. **लघु उद्योगों में निवेश सीमा में वृद्धि -** फरवरी 1997 में की गयी घोषणा पर लघु उद्योगों में निवेश की सीमा को बढ़ा कर 3 करोड़ रूपये कर दिया गया था लेकिन लघु उद्योगों की मांग पर फरवरी 1999 में इसे पुन: घटाकर एक करोड़ रूपये कर दिया गया है। 2007-08 के बजट भाषण में वित्त मंत्री ने लघु उद्योगों में निवेश सीमा को बढ़ाकर 1.5 करोड़ रूपये कर दिया है।

18. **लघुत्तर इकाईयों की निवेश सीमा में वृद्धि -** आबिदहु सैन समिति की सिफारिशों के आधार पर 1997 में लघुत्तर इकाईयों में भी प्लाण्ट एवं मशीनरी में निवेश की सीमा 5 लाख रूपये से बढ़ाकर 25 लाख रूपये कर दी गयी है।

19. **लघु उद्योग क्षेत्र में आरक्षण -** लघु उद्योग क्षेत्र के अन्तर्गत निर्मित की जाने वाली आरक्षित वस्तुओं की संख्या जो 836 थी, इसे घटाकर 821 तथा 2001-02 में 797 कर दिया गया है।

20. **लद्यु उद्योगों में विदेशी निवेश -** लद्यु उद्योगों की इकाईयों को नवीनतम तकनीक उपलब्ध कराने के उद्देश्य से इनमें 24 प्रतिशत विदेशी पूंजी निवेश की अनुमति प्रदान कर दी गयी है।

21. **विदेशी निवेश संवर्धन के प्रयास -** विदेशी निवेश संवर्धन को प्रोत्साहन देने हेतु विदेशी निवेश संवर्धन परिषद का गठन किया गया है तथा विदेशी निवेश संवर्धन मण्डल का पुनर्गठन किया गया है।

22. **विनिवेश आयोग -** सार्वजनिक उपक्रमों की समता अंशपूंजी के विनियोग हेतु योजना आयोग के पूर्व सदस्य श्री जी.बी.रामकृष्ण की अध्यक्षता में अगस्त, 1996 में विनिवेश आयोग की स्थापना की गयी है। सुझाव प्रदान करने के लिए आयोग के पास 50 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के मामले भेजे गये थे।

23. **बीमा व्यवसाय हेतु निजी कम्पनियों को अनुमति -** भारत में बीमा व्यवसाय के क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों का वर्चस्व समाप्त हो गया है। अक्टूबर, 2000 में बीमा नियामक विकास प्राधिकरण ने निजी क्षेत्र की तीन कम्पनियों को बीमा व्यवसाय प्रारम्भ करने का अनुज्ञापन प्रदान कर दिया है। बीमा प्राधिकरण ने जीवन बीमा क्षेत्र मे कारोबार के लिए एच.डी.एफ.सी., स्टैन्डर्ड लाइफ इन्शयोरेन्स कम्पनी लि. को तथा साधारण बीमा क्षेत्र में 'रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कम्पनी लि.' व रॉयल सुन्दरम् एलायंस इंश्योरेन्स कम्पनी लि.' को अनुज्ञापन प्रदान किये गये है। सरकार ने इस प्रक्रिया से जीवन बीमा व साधारण बीमा को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया है। यहां यह उल्लेखनीय है कि जीवन बीमा मे भारतीय जीवन बीमा निगम का 44 वर्ष व साधारण बीमा में साधारण बीमा निगम व इसकी चार कम्पनियों का 28 वर्ष तक वर्चस्व कायम रहा है।

24. **फिल्म और मनोरंजन को उद्योग का दर्जा -** सरकार ने अक्टूबर, 2000 में फिल्मों सहित मनोरंजन क्षेत्र को भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम 1964 के अन्तर्गत उद्योग का दर्जा प्रदान कर दिया है। इस निर्णय से फिल्म व मनोरंजन क्षेत्र के विकास में काफी सहायता मिलेगी। फिल्म उद्योग को बैंक ऋण प्राप्त करने, फिल्मों का बीमा कराने तथा करों को विवेकीकरण करने में सुविधा हो जायेगी।

4.7 सारांश (Summary)

औद्योगिक नीति द्वारा सरकार उद्योगों के प्रति अपनायी जाने वाली व्यवस्थाओं का उल्लेख करती है ताकि देश के औद्योगिक विकास का ढांचा तैयार कर, देश को स्वावलम्बी एवं समृद्ध बनाना संभव हो सके। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने औद्योगिक नीति- के माध्यम से उद्योगों को अनेक प्रोत्साहन व सुविधाऐं देकर विकास का मार्ग प्रशस्त किया। सरकार की वर्तमान उदार औद्योगिक नीति का लाभ प्रमुख रूप से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को प्राप्त होगा, जिनकी निगाहें भारत के विशाल उपभोक्ता बाजार पर है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की जितनी आतुरता उपभोग वस्तुओं के क्षेत्र में है, उतनी आतुरता तेल, परिवहन व बिजली जैसे आधारभूत क्षेत्रों में नहीं है। लेकिन हम आशा कर सकते है कि नयी औद्योगिक नीति के माध्यम से देश के औद्योगिक विकास के वातावरण में वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक विकास में तीव्र वृद्धि होगी।

4.8 शब्दावली

आधारभूत उद्योग - वे उद्योग जो देश के आधारभूत विकास मे सहायक होते है जैसे बिजली, परिवहन, तेल आदि।

उपभोक्ता उद्योग - वे उद्योग जो उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में संलग्न होते है।

लघु उद्योग - वे उद्योग जिनकी निवेश सीमा एक करोड रू. तक है।

कुटीर उद्योग - वे उद्योग जिनमें उत्पादन कार्य में केवल परिवार के सदस्य ही संलग्न होते है।

विदेशी पूंजी - वह पूंजी जो कि स्थानीय उद्योगों में विदेशी नागरिक, विदेशी संस्थाओं तथा विदेशी सरकारों द्वारा विनियोजित की जाती है।

निजी क्षेत्र - अर्थ व्यवस्था का वह क्षेत्र जिसमें उत्पादन साधनों पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व होता है तथा जो लाभ की प्रेरणा से कार्य करते है।

सार्वजनिक क्षेत्र - अर्थव्यवस्था का वह क्षेत्र जिनमें उत्पादन साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है तथा जो सामाजिक कल्याण के उद्देश्य से कार्य करते है।

4.9 स्वपरख प्रश्न

1. आर्थिक नीति का अर्थ व उद्देश्य बताइये।
2. स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व व स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की औद्योगिक नीति में अन्तर बताईये।
3. औद्योगिक नीति, 1991 के उद्देश्य स्पष्ट कीजिये।
4. औद्योगिक नीति, 1991 का वर्णन कीजिये।
5. 1991 की औद्योगिक नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

इकाई 5

भारत की निर्यात-आयात नीति

(Export & Import Policy of India)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 निर्यात-आयात नीति का महत्त्व

5.3 निर्यात-आयात नीति के प्रकार

5.4 निर्यात-आयात नीति के प्रकार

5.5 भारत की निर्यात-आयात नीति

5.5.1 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व की निर्यात-आयात नीति

5.5.2 स्वतंत्र भारत की निर्यात-आयात नीति

5.5.3 विदेशी व्यापार नीति 2004 से 2009

5.3 सारांश

5.4 शब्दावली

5.5 स्वपरख प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगें कि -

- निर्यात-आयात नीति के अर्थ का वर्णन कर सकें।
- निर्यात-आयात नीति का महत्व स्पष्ट कर सकें।
- स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व की निर्यात-आयात नीति का ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की निर्यात-आयात नीति (नवीन नाम विदेशी व्यापार नीति) का ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- यह बता सकें कि निर्यात-आयात नीति (विदेशी व्यापार नीति) का राष्ट्र के आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है।

5.1 प्रस्तावना

एक राष्ट्र के तीव्र आर्थिक विकास में राष्ट्र की निर्यात-आयात नीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसके द्वारा कृषि, व्यापार, यातायात, रोजगार, राष्ट्रीय आय, विदेशी मुद्रा भण्डार इत्यादि को प्रोत्साहन मिलता है। इसका सुव्यवस्थित संचालन राष्ट्र को स्वावलम्बी व समृद्ध बनाने में मदद करता है। अत: राष्ट्र की निर्यात-आयात नीति सुपरिभाषित, स्पष्ट व प्रगतिशील होनी चाहिए ताकि राष्ट्र के सुदृढ़ विकास के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

5.2 निर्यात-आयात नीति का अर्थ (Meaning of Export-Import Policy)

किसी देश की सरकार निर्यात-आयात के सम्बन्ध मे जो नीति अपनाती है उसे निर्यात-आयात नीति कहते है। सामान्यत: किसी देश की आयात-निर्यात नीति को ही इस देश की वाणिज्यिक नीति भी कहा जाता है। प्रो. हेबरलर ने वाणिज्यिक नीति को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "व्यावसायिक या वाणिज्यिक नीति से आशय उन सब उपायों से है, जो कि किसी देश के बाह्य आर्थिक सम्बन्धों का नियमन करते है। ये उपाय एक ऐसी क्षेत्रीय सरकार या प्रादेशिक सरकार, जिसमें वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात व आयात में बाधा डालने या सहायता पहुंचाने की शक्ति होती है, द्वारा किये जाते है।" इन उपायों में आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध, सहयोग, किराया-भाड़ा दरों में अन्तर, माल की पैकिंग विधि में फेरबदल आदि सम्मिलित किये जाते है।

5.3 निर्यात-आयात नीति का महत्व (Importance of Export-Import Policy)

किसी भी देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक अनिवार्यता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, सहायता, समझौते, पूंजी का आगमन आदि देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करते है। विकासशील देशों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विशेष महत्व है। इसको नियमित करने एवं सही दिशा देने के लिए निर्यात-आयात नीति की आवश्यकता पड़ती है। अधिकांश विकासशील देशों का व्यापार शेष घाटे में रहने के कारण वे आयात कम करने व निर्यात बढ़ाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते है। आयात पर प्रतिबन्ध लगाकर ये स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहित करना चाहते है। आज विश्व के उन्नत माने जाने वाले देशों, जर्मनी, जापान, अमेरिका आदि ने विकास के प्रारम्भिक समय में आयातों को कम करने के लिए तटकर लगाये थे। विकासशील देशों को अपने उद्योगों का विकास करने के लिए संरक्षित बाजार उपलब्ध कराना होता है क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में यहां के उद्योग विकसित देशों की प्रतिस्पर्द्धा में नही टिक पाते हैं। यहां न तो उत्पादन की किस्म अच्छी होती और न ही कम उत्पादन लागत। अत: निर्यात-आयात नीति स्वदेशी उद्योगों का संरक्षण देने का महत्वपूर्ण माध्यम है। लेकिन वर्तमान में संरक्षण की नति बहुत सफल नहीं है, क्योंकि शक्तिशाली विकसित देश अनेक तरीकों से इसे तोड़ने में सफल होते है। विदेशी उत्पादक लागत से भी कम मूल्य पर माल बेचकर तटकर की बाधा पार कर जाते है। अत: आयात कोटा अथवा विलासिता पूर्ण वस्तुओं के आयात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाकर आयात रोका जाता है और घरेलु आयात प्रतिस्थापक उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाता है।

निर्यात वृद्धि की दृष्टि से भी निर्यात-आयात नीति का विशेष महत्व है। सरकार निर्यातकों को वित्त प्रदान कर, विदेशी व्यापारिक सूचनाऐं उपलब्ध कराकर, विदेशों से माल का प्रचार कर, मेले लगा कर निर्यातों को बढ़ावा देती है। विकासशील देशों के पास विदेशी मुद्रा के सीमित भण्डार हैं अत: उन्हें आयात एवं निर्यातों द्वारा कोषों को समायोजित करना पड़ता हैं। निर्यात-आयात नीति इसमें सहायता करती है। इसके साथ ही आयात-निर्यात को योजनाबद्ध विकास के अनुरूप

बनाया जाता है, क्योंकि विकास के लिए आयात भी आवश्यक है। यद्यपि निर्यात-आयात नीति अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों तक ही सीमित होती है, किन्तु इसका देश के समग्र आर्थिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अत: निर्यात-आयात नीति का महत्व निम्नलिखित है -

1. विकसित देशों के प्रभाव से बचने तथा स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना।
2. आयात प्रतिस्थापन को प्रोत्साहन देना।
3. स्वदेशी उद्योगों व उत्पादों को प्रोत्साहन देकर विकसित करना तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त कर विदेशों में विक्रय करना।
4. निर्यातों को प्रोत्साहन तथा निर्यात संवर्द्धन हेतु।
5. देश के आयात-निर्यात को विदेशी मुद्रा की एक निर्धारित सीमा तक रखने तथा योजनाबद्ध विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु।
6. भुगतान संतुलन की अनुकूल बनाना तथा विदेशी विनिमय कोष में वृद्धि करने के लिये।
7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अभिवृद्धि एवं आपसी सद्भाव तथा मैत्रीपूर्ण व्यापारिक संबंध स्थापित करने के लिये।
8. उत्पादन के स्तर में वृद्धि के साथ-साथ लघु एवं कुटीर उद्योगों का भी विकास करने के लिये।
9. देश की आर्थिक विकास में वृद्धि करने हेतु।

5.4 निर्यात-आयात नीति के प्रकार (Types of Export-Import Policy)

निर्यात-आयात नीति दो प्रकार की होती है (1) स्वतन्त्र व्यापार नीति (2) संरक्षणवादी व्यापार नीति।

1. **स्वतन्त्र व्यापार नीति -** जब सरकार आयात-निर्यात पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती है तो इसे स्वतन्त्र या मुक्त व्यापार नीति कहते है। इस नीति के अनुसार यदि सरकार तटकर लगाती है तो उसका उद्देश्य आयात-निर्यात को प्रतिबन्धित करना न होकर सरकारी आय बढ़ाना होता है।

2. **संरक्षणवादी व्यापार नीति** - संरक्षण की नीति का तात्पर्य सरकार की उस नीति से है जिसमें देश के नये एवं शिशु उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए आयात पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। इस नीति में दो देशों के मध्य वस्तुओं का स्वतन्त्र आदान-प्रदान नहीं होता है। विकासशील देशों के लिए यह नीति आवश्यक है क्योंकि इसके बिना वे स्वदेशी उद्योगों का विकास नहीं कर पाते है। इससे विकासशील देशों में पूंजी निर्माण व विनियोग का अनुकूल वातावरण बनता है और भुगतान सन्तुलन की असाम्यता को कम करने में मदद मिलती है।

5.5 भारत की निर्यात-आयात नीति (Export-Import Policy of India)

भारत की निर्यात-आयात नीति को निम्नलिखित प्रकार से दो भागों में बांटा जा सकता है:

5.5.1 स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व की निर्यात-आयात नीति - भारत के निर्यात-आयात नीति के सम्बन्ध में 1923 का वर्ष एक विभाजन रेखा हैं सन् 1923 से पूर्व भारत में स्वतन्त्र व्यापार नीति अपनायी गयी थी। उस समय ब्रिटिश शासकों से भारत के औद्योगिक विकास में सहायक निर्यात-आयात नीति की आशा नहीं थी। सन् 1923 में स्वतन्त्र व्यापार नीति का त्याग कर विभेदात्मक संरक्षण की नीति अपनायी गई। यह नीति भारतीय हितों की तुलना में ब्रिटिश हितों के अधिक संरक्षण प्रदान करती थी। सन् 1929 की विश्वव्यापी मन्दी का भारतीय विदेशी व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। सन् 1932 में ब्रिटिश सरकार ने साम्राज्य अधिमान की नीति अपनाई, जिसमें ब्रिटिश हितों का ही ध्यान रखा गया। इसलिए भारतीयों ने इसका विरोध किया। लेकिन वायसराय ने अपने विशेषाधिकारों के माध्यम से इसे 1939 तक जारी रखा। द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय व्यापार नीति में आयात-निर्यात पर कड़े प्रतिबन्ध लगाये गये तथा विनिमय नियन्त्रण कानून लागू किया गया।

5.5.2 स्वतन्त्र भारत की निर्यात-आयात नीति - स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की निर्यात-आयात नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अब इस नीति का उद्देश्य योजनाबद्ध विकास, तीव्र औद्योगिकीकरण एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना था। इसके साथ ही व्यापार के भारतीयकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। सरकार ने स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से आयात पर नियन्त्रण, सीमा शुल्क, सरकार द्वारा खरीद में स्वदेशी माल को प्राथमिकता देने जैसे अनेक कदम उठाये गये। सरकार ने विदेशों से अनेक द्विपक्षीय एवं बहुपक्षी समझौते किये। इस सम्बन्ध में सन् 1947 का 'अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौता' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सन् 1948 से 1952 तक सरकार ने अमेरिका व अन्य नरम मुद्रा क्षेत्रों से आयात में उदारता की नीति अपनायी। सन् 1956 के बाद विदेशी मुद्रा संकट के कारण सरकार को आयातों पर नियन्त्रण बढ़ाने पड़े तथा विदेशी मुद्रा नियन्त्रण लागू किये गये। तीसरी योजना काल से पूंजीगत माल तथा महत्वपूर्ण कच्चे माल में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से आयात प्रतिस्थापन पर बल दिया गया। द्वितीय योजना के बाद ऋण दायित्व बढने से सरकार ने निर्यात प्रोत्साहन पर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया। हमारे देश में प्रतिवर्ष आयात-निर्यात नीति घोषित की जाती रही है। इसमें आयात-निर्यात सम्बन्धी महत्वपूर्ण घोषणाऐं की जाती है। किन्तु सन् 1985 से तत्कालीन वाणिज्य मंत्री श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने 12 अप्रैल, 1985 को पहली बार तीन वर्षीय निर्यात-आयात नीति की घोषणा की। इसकी प्रमुख विशेषताएँ थी:

1. स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण
2. आयात-निर्यात पास बुक योजना की शुरूआत
3. स्वत: लाइसेंस व्यवस्था की समाप्ति,
4. प्रौद्योगिकी एवं विदेशी सेवाओं के आयात को प्रोत्साहन; तथा
5. कम्प्यूटर प्रणाली के आयात में उदारता।

1992 में सरकार ने 1992- 1997 के लिए पांच वर्षीय आयात-निर्यात नीति घोषित की। तत्पश्चात् 1997-02, 2002-07, 2004-09 की निर्यात-आयात नीति की घोषणा की गयी तथा इसका नाम विदेश व्यापार नीति रखा गया।

5.2.3 विदेशी व्यापार नीति (Foreign Trade Policy) - 2004 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार के गठन के बाद 31 अगस्त 2004 को केन्द्र सरकार ने आगामी पांच वर्ष के लिए अपनी विदेशी व्यापार नीति की घोषणा की। इस नीति में अगले पांच वर्षो में विश्व व्यापार में देश का निर्यात हिस्सा दुगुना कर 2009 तक प्रतिवर्ष 150 बिलियन डॉलर के निर्यात का लक्ष्य रखा गया है।

उद्देश्य - नई विदेशी व्यापार नीति (जिसे पूर्व में निर्यात-आयात नीति के रूप में माना जाना जाता था) में भारत के विदेशी व्यापार के समग्र विकास का उद्देश्य रखा गया है। भारतीय विदेश व्यापार नीति 2004-09 के निम्नलिखित दो मुख्य उद्देश्य है-

(अ) वर्ष 2009 तक वैश्विक वस्तु व्यापार में भारत के हिस्से को दुगुना करना, और

(ब) रोजगार सृजन का ध्यान रखते हुए व्यापार नीति को आर्थिक विकास के एक प्रभावी साधन के रूप में प्रयोग

विदेशी व्यापार नीति 2004-09 के उपर्युक्त दोनों उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु निम्नाकिंत व्यूह-रचना अपनाई जाएगी -

1. विदेशी व्यापार को नियंत्रणों से मुक्त करना और विश्वास तथा पारदर्शिता का वातावरण सृजित करना,
2. प्रक्रियाओं का सरलीकरण और लेन-देन की लागत को कम करना,
3. निर्यात उत्पादों के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले निवेश-साधनों पर सभी तरह के करों के प्रभाव को कम करना।
4. विनिर्माण, व्यापार और सेवाओं के क्षेत्र में एक वैश्विक केन्द्र के रूप में भारत के विकास को सहज बनाने, रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का सृजन करने के लिए विशेष संकेद्रण वाले क्षेत्रों की विशेष रूप से अर्द्ध-शहरी और ग्रामीण इलाकों में, पहचान करना और उन्हें विकसित करना।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रौद्योगिकीय और संरचनात्मक उन्नयन की विशेष रूप से पूंजीगत वस्तुओं और उपकरणों के आयात के जरिए सरल बनाना।
6. व्युत्क्रमित शुल्क तंत्र से बचना और यह सुनिश्चित करना कि व्यापारिक समझौतों में घरेलू क्षेत्रों को कोई नुकसान नहीं होगा।
7. अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों के प्रति विदेश व्यापार की सम्पूर्ण श्रृंखला से सम्बन्धित आधारढांचा नेटवर्क को उन्नत बनाना।
8. व्यापार मण्डल की भूमिका को पुन निर्धारित करते हुए तथा इसमें व्यापार नीति विशेषज्ञों को शामिल करते हुए इसकी पुन: स्थापना करना, और
9. निर्यात संबंधी रणनीति में प्रमुख भूमिका निभाने के लिए भारतीय दूतावासों को सक्रिय करना।

विदेशी व्यापार नीति 2004-09 की प्रमुख विशेषताऐं

भारत की नई विदेश व्यापार नीति (2004-09) कर प्रमुख विशेषताऐं निम्नाकिंत है:

1. **विश्व निर्यात हिस्से मे वृद्धि -** आगामी पांच वर्षो में विश्व व्यापार में देश का निर्यात हिस्सा दुगुना कर 1.5 प्रतिशत तक ले जाने का लक्ष्य रखा गया है, जिसके लिये प्रतिवर्ष 150 बिलियन डीलर के निर्यात का लक्ष्य रखा गया है। इस नीति की घोषणा करते हुए भारत के वाणिज्य मंत्री श्री कमल नाथ ने कहा कि वर्ष 2009 तक विश्व व्यापार में भारत का निर्यात हिस्सा 1.5 प्रतिशत तक करने के लिए प्रति वर्ष निर्यात कारोबार में लगभग 20 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त करनी होगी।

2. **विशेष नीतिगत उपाय -** विदेशी व्यापार नीति 2004-09 में ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों का पता लगाया है जहां निर्यात विस्तार और रोजगार सृजन की पर्याप्त सम्भावनाएं है। जैसे कृषि, हस्तशिल्प और हथकरघा, रत्न और जवाहरात तथा चमड़ा एवं फुटवेयर क्षेत्र। इसके लिये विशेष कृषि उपज योजना नामक एक नई योजना शुरू करना शामिल है। इस योजना के तहत, इन उत्पादों के निर्यातों को निवेश साधनों और अन्य वस्तुओं का आयात करने के लिए शुल्क मुक्त ऋण के लिये पात्र माना गया है।

इसके अलावा कृषि क्षेत्र के लिए अन्य घटकों में, निर्यात संवर्द्धन पूंजीगत वस्तु योजना के तहत पूंजीगत वस्तुओं का शुल्क मुक्त आयात करना, कृषि निर्यात क्षेत्र में कहीं से भी कृषि के लिए EPCG के तहत आयातित पूंजीगत वस्तुओं की अनुमति देना, कृषि निर्यात क्षेत्रों के विकास के लिए निर्यात हेतु बुनियादी सुविधा के विकास हेतु राज्यों को दी गई सहायता की धनराशि का उपयोग करना, बीजों, कंदों (बल्बों), ट्यूबों और रोपण सामग्री और जड़ी-बूटी संबंधी उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए पौधों के अंशों, व्युत्पन्नों और अर्क के निर्यात का उदारीकरण करना शामिल है।

3. **हथकरघा एवं हस्तशिल्प क्षेत्र -** हथकरघा एवं हस्तशिल्प क्षेत्रों के लिए निम्न उपायों पर विशेष ध्यान दिया गया है:

(अ) हथकरघा और हस्तशिल्प के लिए उपकरणों और अलंकरणों के शुल्क मुक्त आयात में वृद्धि की गई है।

(ब) नमूनों को प्रतिकारी शुल्क से छूट प्रदान की गई है।

(स) छोटे निर्माताओं के लिए उपकरणों, अलंकरणों और नमूनों का आयात करने के लिए हस्तशिल्प निर्यात संवर्द्धन परिषद को प्राधिकृत किया गया है, और

(द) एक नए हस्तशिल्प विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना करने की सुविधाएँ प्रदान की जाएंगी।

4. **रत्न एवं जवाहरात क्षेत्र -** रत्न एवं जवाहरात क्षेत्र के तहत निम्न प्रमुख नीतिगत घोषणाएं की गई-

(अ) स्वर्ण एवं प्लैटिनम से भिन्न धातुओं की उपयोग्य वस्तुओं के निर्यातों के पोत पर्यन्त निःशुल्क मूल्य के 2 प्रतिशत तक के शुल्क मुक्त आयात की मंजूरी।

(ब) अस्वीकृत जवाहरातों के निर्यातों के पोत पर्यन्त निःशुल्क मूल्य के 2 प्रतिशत तक अनुमेय शुल्क मुक्त पुनर्आयात की पात्रता होगी।

(स) एक लाख रू. तक के जवाहरातों के वाणिज्यिक नमूनों के शुल्क मुक्त आयात में वृद्धि की गई, तथा

(द) संपूर्ति योजना के तहत 18 कैरेट और इससे ऊपर के स्वर्ण के आयात की मंजूरी दी गई है।

5. **चमड़ा एवं फुटवेयर क्षेत्र -** चमड़ा एवं फुटवेयर क्षेत्र में विशिष्ट नीतिगत उपाय मुख्यत: निवेदश साधनों और संयंत्रों एवं मशीनों पर सीमा शुल्क लगाने के मामलों में कमी करने के रूप में हैं। इस क्षेत्र के लिए प्रमुख नीतिगत घोषणायें निम्नलिखित है -

(अ) उपकरणों (ट्रिमिंग), अलंकरणों और चमड़ा उद्योग के लिए फुटवेयर घटकों के निर्यातों के पोत पर्यन्त निःशुल्क मूल्य के 3 प्रतिशत तक शुल्क आयात और चमड़ा क्षेत्र के लिए विनिर्दिष्ट मदों का निर्यातों के पोत पर्यन्त निःशुल्क मूल्य के 5 प्रतिशत तक शुल्क मुक्त आयात की पात्रता की सीमा बढ़ाई गई है।

(ब) चमड़ा उद्योग के एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांटों के लिए मशीनों एवं उपकरणों के आयात को सीमा शुल्क से छूट दी गई है।

(स) अनुपयुक्त सामग्रियों जैसे कि कच्चा माल, चमड़ा और गीला नीला चमड़ा के पुनर्निर्यात की अनुमति दी गई है।

6. **उपर्युक्त महत्वपूर्ण क्षेत्रों-** जैसे कृषि, हथकरघा एवं हस्तशिल्प, रत्न एवं जवाहरात, चमड़ा एवं फुटवेयर में नामित 'टाउंस ऑफ एक्सपोर्ट एक्सीलेन्स' की प्रारम्भिक सीमा 1,000 करोड़ रू. से घटाकर 250 करोड़ रू. कर दी गई है।

7. **सेवाकर से मुक्ति -** इस नीति में निर्यात करने के काम आने वाली उत्पादों को सेवाकर से मुक्त कर दिया गया है।

8. **व्यापार मण्डल का गठन -** निर्यात लक्ष्य प्राप्त करने के लिए इस नीति में एक व्यापार मण्डल के गठन का निर्णय लिया गया है।

9. **बैंक गारण्टी से मुक्ति -** विदेशी व्यापार नीति में पांच करोड़ रू. के टर्नओवर वाले निर्यातकों को बैंक गारण्टी से मुक्त कर दिया गया है।

10. **नई योजना टारगेट प्लस -** इस नीति के अन्तर्गत निर्यात में तीव्र वृद्धि हासिल करने के लिए एक नई योजना टारगेट प्लस शुरू करने की घोषणा की गई है। इस योजना के तहत जो भी निर्यातक वार्षिक निर्यात वृद्धि के लक्ष्य से ज्यादा निर्यात करेगें, वह उतने ही शुल्क मुक्त आयात के हकदार हो जायेंगे। वार्षिक निर्यात लक्ष्य से 20 प्रतिशत, 25 प्रतिशत और 100 प्रतिशत अधिक निर्यात वृद्धि पर निर्यातकों को क्रमश: 5 प्रतिशत, 10 प्रतिशत और 15 प्रतिशत शुल्क मुक्त क्रेडिट सुविधा उफ्लब्ध होगी। यह सुविधा माल के लदान मूल्य में हुई वृद्धि पर मिलेगी।

11. **निर्यात संवर्द्धन पूंजीगत वस्तु स्कीम में सुधार -** वाणिज्यिक एवं उद्योग मंत्री श्री कमल नाथ ने निर्यात संवर्द्धन की पूंजीगत सामान योजना यानी EPCG स्कीम में कई सुधारों की घोषणा की जिसमें निर्यात दायित्वों को पूरा करने वाली समस्याओं के प्रति और लचीला रूख अपनाया गया है। कमल नाथ ने कहा कि निर्यातकों के लिए शुल्क पात्रता पासबुक DEBP योजना तक जारी रहेगी, जब तक कि इसे स्थापन पर कोई नई योजना नहीं आ जाती है।

12. **मुक्त आधार भण्डारण क्षेत्र का निर्माण -** भारत को विश्व व्यापार का बड़ा केन्द्र बनाने के लिए एक मुक्त व्यापार और भण्डार क्षेत्र स्थापित किया जायेगा। इस क्षेत्र की स्थापना का उद्देश्य व्यापार संबंधी गतिविधियों के लिए बुनियादी सुविधाओं को खड़ा करना है ताकि उस क्षेत्र में सामान के निर्यात एवं आयात की सेवाओं को बिना किसी बड़ी अड़चन के अंजाम दिया जा सके।

भारत के उद्योग जगत और उपभोक्ता समूहो ने संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार की विदेशी व्यापार नीति की सराहना करते हुए कहा कि निर्यात बढ़ाने के लिए राज्य सरकारों, उद्योग मण्डलों के साथ निरंतर बातचीत के साथ निर्यातकों को पर्याप्त मात्रा में ऋण की उपलब्धता तथा बुनियादी ढांचे को बेहतर बनाए जाने की जरूरत है।

5.6 सारांश

विदेश व्यापार नीति राष्ट्र के विदेशी व्यापार के लिए अपनायी जाने वाली व्यवस्थाओं व व्यवहारों का उल्लेख करती है ताकि देश को स्वावलम्बी बनाने व विकसित करने के लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो सके। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने भारतीय उद्योगों में उत्पादकता, आधुनिकीकरण व प्रतिस्पर्द्धा क्षमता में वृद्धि के साथ-साथ विदेशों में भारतीय माल की साख में वृद्धि के लिये भारतीय उत्पादित माल की गुणवत्ता को अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों के अनुरूप बनाने का प्रयास करने के साथ-साथ आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया है। इसके अलावा भारतीय निर्यातकों को सरकार ने कर राहत, अनुदान व आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध करवाकर विदेशी व्यापार में भारत के योगदान का विस्तार किया है। अब सरकार का भरोसा निर्यातकों पर है कि वे किस प्रकार विश्व व्यापार में अपना योगदान बढ़ाते हैं।

5.7 शब्दावली

आयात : एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रों से खरीदी जाने वाले वस्तुऐं एवं सेवाऐं

निर्यात : एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रों को विक्रय की जाने वाली वस्तुऐं एवं सेवाऐं

स्वदेशी उद्योग : राष्ट्र में स्थापित स्वयं के उद्योग

पूंजीगत वस्तुऐं : ये वस्तुऐं जिनका दूसरी वस्तुओं के उत्पादन में दीर्घकाल तक उपयोग किया जाता है।

सीमा शुल्क : राष्ट्र द्वारा आयातों पर लगाया जाने वाला शुल्क

वैश्वीकरण : वह दशा जिसमें एक राष्ट्र द्वारा शेष विश्व के साथ वस्तुओं व सेवाओं, श्रम व पूंजी व तकनीक का स्वतंत्र प्रवाह होता है।

5.8 स्वपरख प्रश्न

1. निर्यात-आयात नीति का अर्थ व महत्व बताइये।
2. स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व व स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की निर्यात-आयात नीति में अन्तर बताइये।
3. विदेशी व्यापार नीति 2004-09 का वर्णन कीजिये।
4. विदेशी व्यापार नीति 2004-09 के उद्देश्य व उनकी प्राप्ति के लिये अपनायी जाने वाली व्यूह-रचना का वर्णन कीजिये।

इकाई 6

भारत में आर्थिक नियोजन-उद्देश्य एवं व्यूह-रचना (Economic Planning in India-Objectives and Strategies)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य व्यूह-रचना

- 6.2.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना
- 6.2.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना
- 6.2.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना
- 6.2.4 तीन वार्षिक योजना
- 6.2.5 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना
- 6.2.6 पाँचवीं पंचवर्षीय योजना
- 6.2.7 छठी पंचवर्षीय योजना
- 6.2.8 सातवीं पंचवर्षीय योजना
- 6.2.9 आठवीं पंचवर्षीय योजना
- 6.2.10 नवीं पंचवर्षीय योजना
- 6.2.11 दसवीं पंचवर्षीय योजना

6.3 सारांश

6.4 शब्दावली

6.5 स्वपरख प्रश्न

6.6 संदर्भ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

1. भारत में आर्थिक नियोजन की पृष्ठभूमि जान सकें।
2. भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के स्वरूप व आकार का आंकलन कर सकें।
3. भारतीय आर्थिक नियोजन अर्थात् विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य एवं व्यूह रचना का विश्लेषण कर सकें।
4. विभिन्न योजनाओं के परिव्यय एवं मूल्यांकन की जानकारी प्राप्त कर सकें।
5. भारत में आर्थिक नियोजन की शुरूआत से अभी तक लक्ष्यों व उद्देश्यों का सारांश जान सकें।

6.1 प्रस्तावना

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन् 1951 में आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया अपनाई गई। जिसके परिणामस्वरूप भारत में आर्थिक विकास का एक नया अध्याय शुरू हुआ। देश में समय तथा परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक उद्देश्यों का समावेश किया गया है। भारत मे आर्थिक नियोजन के प्रारम्भ से ही इसके मूलभूत उद्देश्य थे-संतुलित एवं सर्वांगीण आर्थिक विकास, आधुनिकीकरण, आत्म निर्भरता एवं सामाजिक न्याय की अवधारणा की स्थापना करना आदि। परन्तु नियोजन के अन्तर्गत प्रत्येक योजना में नई परिस्थितियों, चुनौतियों व नई सम्भावनाओं के अनुसार प्राथमिकताओं में आवश्यक परिवर्तन व समायोजन किये जाते है। भारत में 1 अप्रैल, 1951 से अब 31 मार्च 2007 तक दस पंचवर्षीय योजनायें पूरी हो चुकी हैं तथा 1 अप्रैल 2007 से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की शुरूआत हो चुकी है। योजनाकाल की इन विभिन्न योजनाओं के उद्देश्य एवं व्यूह रचनायें निम्नलिखित है।

6.2 भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य एवं व्यूह-रचना

6.2.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि 1 अप्रैल, 1951 रो 31 मार्च, 1956 तक निर्धारित की गई। इस योजना के निम्न दो प्रमुख उद्देश्य थे -

1. द्वितीय विश्वयुद्ध एवं देश के विभाजन के कारण उत्पन्न हुये आर्थिक असन्तुलन को दूर करना, तथा
2. सर्वांगीण और सन्तुलित विकास की ऐसी पद्वति शुरू करना जिसके फलस्वरूप देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सके तथा लोगों के रहन-सहन के जीवन स्तर में शीघ्र वृद्धि हो सके।

उपर्युक्त प्रमुख उद्देश्यों के अतिरिक्त इस योजना के कुछ गौण, उद्देश्य भी थे जिनमें मुद्रा स्फीति की प्रवृत्तियों पर रोक लगाना, खाद्यान्न एवं कच्चे माल का उत्पादन बढ़ाना, ऐसे विकास कार्यक्रमों को प्रारम्भ करना जो आने वाले वर्षो में विकास कार्यो की नींव डाल सकें तथा बड़े पैमाने पर सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था करना आदि।

इस योजना के उक्त प्रमुख उद्देश्यों में पहला उद्देश्य अल्पकालीन जबकि दूसरा उद्देश्य दीर्घकालीन तथा सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे में प्रजातांत्रिक ढंग से परिवर्तनों के लक्ष्य से सम्बन्धित था जिससे देश के मानवीय एवं भौतिक संसाधनों के विकास तथा समुचित उपयोग से आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सके।

प्रथम योजना की व्यूह-रचना (Strategy)

व्यूह-रचना या रणनीति शब्द का प्रयोग सामान्यत: युद्ध एवं खेल में विजय प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। परन्तु आधुनिक युग में यह शब्द आर्थिक क्षेत्र में भी काफी प्रचलित है। जिस प्रकार से युद्ध या खेल में प्रतिद्वन्दी को पराजित करने हेतु रणनीति तैयार की जाती है ठीक उसी प्रकार आर्थिक नियोजन में भी विभिन्न आर्थिक चुनौतियों तथा गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी, अशिक्षा, असमानता एवं आर्थिक पिछड़ेपन का सामना करने हेतु सुव्यवस्थित नीति एवं व्यूह रचना तैयार की जाती है ताकि आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत योजना के पूर्व निर्धारित

उद्देश्यों की सहजता से प्राप्ति की जा सके। अत: आर्थिक योजना के उद्देश्यों, प्राथमिकताओं, उपायों व तकनीक आदि के निर्धारण की क्रिया को योजना की व्यूह रचना या रणनीति कहते है। जहाँ तक भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना की व्यूह रचना का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में योजना के विनियोग प्रारूप में कृषि एवं सिचाई विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी ताकि कृषि उत्पादन में वृद्धि से खाद्यान्नों व कच्चे माल की पूर्ति बढ़ सके और औद्योगिकरण की तरफ अग्रसर हो सकें। ग्रामीण जनता के लिये आर्थिक समृद्धि एवं उच्च जीवन स्तर हेतु 1952 में सामुदायिक विकास योजना तथा 1953 में राष्ट्रीय सेवा विस्तार कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये।

परिव्यय

यह योजना प्रारम्भ में 2069 करोड़ रूपये की निर्धारित की गई। बाद में यह राशि बढ़ाकर 2378 करोड़ रूपये कर दी गई, परन्तु वास्तविक व्यय 1960 करोड़ रूपये का ही हुआ जो प्रस्तावित व्यय से भी कम था। वास्तविक व्यय का 4.4 प्रतिशत कृषि, सिंचाई एवं शक्ति के साधनों के विकास पर व्यय किया गया। 27 प्रतिशत भाग परिवहन एवं संचार पर, 23 प्रतिशत भाग सामाजिक सेवाओं पर एवं 6 प्रतिशत उद्योग एवं खनिज विकास पर व्यय किया गया।

मूल्यांकन

प्रथम योजना अपने अल्पकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति में काफी सफल रही। द्वितीय विश्वयुद्ध व देश के विभाजन से उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन बहुत कुछ सीमा तक दूर हो गये थे, देश में खाद्यान्न उत्पादन की स्थिति बेहतर हो गई थी और मूल्य स्तर भी योजना के अंत में इसके आरम्भ की तुलना में नीचा हो गया था। राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो निर्धारित लक्ष्य 11 प्रतिशत से अधिक थी। कृषि उत्पादन में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई। मूल्य स्तर में 13 प्रतिशत की कमी हुई तथा भुगतान सन्तुलन की स्थिति भी बेहतर हो गयी थी। जहाँ एक ओर इस योजना की अनेक सफलतायें रही, वहीं दूसरी तरफ कुछ असफलतायें भी रही जिनमें प्रमुख रूप से औद्योगिक क्षेत्र के विकास की उपेक्षा, बेरोजगारी की समस्या का समुचित निवारण न हो पाना, केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति व आर्थिक विषमता आदि हैं। परन्तु प्रथम योजना आर्थिक विकास की कोई सम्पूर्ण योजना न होकर आर्थिक नियोजन की शुरूआत थी। जिसने हमें भविष्य के लिये आर्थिक विस्तृत व व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। स्वयं योजना आयोग के शब्दों में "कुल मिलाकर योजना के परिणाम संतोषजनक रहे है।"

6.2.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि 1 अप्रैल, 1956 से 31 मार्च, 1961 तक थी। द्वितीय योजना के आरम्भ होने से पूर्व दिसम्बर 1954 में आर्थिक नीति का उद्देश्य 'समाजवादी समाज' की स्थापना करना स्वीकार किया गया। अत: द्वितीय योजना के उद्देश्य निर्धारित करते समय इस व्यापक लक्ष्य को ध्यान में रखा गया। द्वितीय योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे।

1. योजनाकाल में राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि करना तथा प्रति व्यक्ति आय में 18 प्रतिशत वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया ताकि जनता का जीवन स्तर ऊँचा किया जा सके।

2. द्रुतगति से औद्योगिकरण और आधारभूत एवं भारी उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया जिससे भावी औद्योगिकरण का सुदृढ़ आधार तैयार हो सके।
3. रोजगार के अवसरों में वृद्धि - इस योजना में बेरोजगारी दूर करने हेतु श्रम प्रधान उद्योगों के विकास पर बल दिया गया और गैर कृषि क्षेत्रों में अधिक रोजगार अवसर उपलब्ध करवाने का लक्ष्य रखा गया।
4. आर्थिक एवं सम्पत्ति की विषमताओं में कमी तथा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण पर रोक लगाने का उद्देश्य रखा गया ताकि समाजवादी समाज की स्थापना की परिकल्पना को साकार रूप प्रदान किया जा सके।

द्वितीय योजना की व्यूह रचना

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु द्वितीय योजना की व्यूह रचना अधिक महत्वाकांक्षी थी। देश में द्रुतगति से औद्योगिकरण हेतु 1956 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा तथा औद्योगिक क्षेत्र में आधारभूत एवं भारी उद्योगों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई और इनके विकास का अधिकाधिक दायित्व सार्वजनिक क्षेत्र पर रखा गया। उद्योगों की वित्त सम्बन्धी पूर्ति के लिये वित्तीय निगमों की स्थापना की गई। औद्योगिक नीति में राष्ट्रीयकरण के भय का समाधान करके विदेशी उद्योगपतियों को औद्योगिकरण में अपना योगदान देने की प्रेरणा दी गई। क्षेत्रीय असमानता को दूर करने तथा आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण हेतु उचित व्यवस्था की गई। 1957 में विदेशी विनिमय संकट का सामना करने हेतु आयात नियंत्रण एवं निर्यात सम्बर्द्धन की नीति अपनाई गई। कृषि एवं सिंचाई विकास को प्राथमिकता क्रम में तीसरे स्थान पर रखा गया।

परिव्यय

इस योजना की प्रस्तावित व्यय राशि 4800 करोड़ रूपये थी जबकि वास्तविक व्यय 4672 करोड़ रूपये हुआ। कुल वास्तविक व्यय का 21 प्रतिशत कृषि तथा सिंचाई विकास पर, 10 प्रतिशत विद्युत विकास पर, 4 प्रतिशत ग्रामीण एवं लघु उद्योगों पर, 20 प्रतिशत उद्योग एवं खनिज विकास पर, 27 प्रतिशत परिवहन एवं संचार साधनों पर तथा 18 प्रतिशत सामाजिक सेवाओं एवं अन्य कार्यो पर व्यय किया गया। द्वितीय योजना के कुछ परिव्यय की कुल राशि 4672 करोड रूपये में से 1049 करोड़ रूपये की विदेशी सहायता प्राप्त हुई जो कुल परिव्यय का 24 प्रतिशत भाग थी।

मूल्यांकन

देश में आधारभूत एवं भारी उद्योगों के विकास पर इस योजना में विशेष बल दिया गया। इस योजना की उपलब्धियों का मिला-जुला रूप निम्न प्रकार था -

1. **राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि -** इस योजनावधि में राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य के बजाय 20 प्रतिशत वृद्धि ही हुई तथा प्रति व्यक्ति आय में केवल 9.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो निर्धारित 18 प्रतिशत के लक्ष्य से कम रही।
2. **कृषि उत्पादन -** इस योजना में भूमि सुधार कार्यक्रमों में तेजी, सिंचित क्षेत्र में वृद्धि तथा विद्युत उत्पादन में वृद्धि हुई। मानसून की परिस्थितियाँ अनुकूल न होने के बाद भी खाद्यान्न उत्पादन 6.8 करोड़ टन से बढ़कर 8.2 करोड़ टन हो गया, परन्तु यह देश की आवश्यकताओं से कम था।

3. **औद्योगिक विकास -** देश की अर्थव्यवस्था को दीर्घकाल में आत्मनिर्भरता प्रदान करने हेतु औद्योगिक विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता तथा आधारभूत एवं भारी उद्योगों के विकास पर बल दिया गया, जिसके फलस्वरूप भारी लोहा-इस्पात, सीमेंट, मशीन, निर्माण, चीनी उद्योगों तथा प्राकृतिक तेल एवं गैस आयोग की स्थापना की गई।
4. यातायात एवं संचना विकास के परिणामस्वरूप रेल लाईनों के दोहरी करण एवं विद्युतीकरण का विस्तार किये जाने पर बल दिया गया।
5. सामाजिक सेवाओं के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास व्यवस्था आदि सेवाओं के विकास के कार्यक्रम लागू किये गये।
6. मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण तथा रोजगार अवसरों में वृद्धि हेतु लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास का प्रयत्न लाभदायक था।

द्वितीय योजना की उपर्युक्त सफलताओं के साथ इसकी कुछ विफलतायें भी रही। इस योजना का प्रमुख ध्येय समाजवादी समाज की स्थापना हेतु आर्थिक विषमताओं में कमी के प्रयास सफल नही हो सके और सत्ता के केन्द्रीयकरण को बढ़ावा मिला एवं एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ प्रबल हुई। कृषि को कम महत्व देना भी इस नीति की सफलता के लिये बाधक साबित हुआ। जिससे खाद्यान्न पी.एल. 480 के तहत विदेशों से आयात करने पड़े। मूल्य स्तर में भी 30% की वृद्धि से आम जन को जीवनयापन में कठिनाई का अहसास हुआ। साथ ही विदेशी विनिमय संकट का भी सामना करना पड़ा।

6.2.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना

यह योजना 1 अप्रैल, 1961 को प्रारम्भ होकर 31 मार्च, 1966 को समाप्त हुई। यह योजना प्रथम दो योजनाओं के अनुभव एवं सफलता के बाद अधिक विश्वास के साथ बनाई गई। तृतीय पंचवर्षीय योजना देश की अर्थव्यवस्था को स्वयं स्फूर्ति अवस्था में पहुँचाने की ओर एक महत्वपूर्ण कदम माना गया। इस योजना के उद्देश्यों का निर्धारण आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को ध्यान में रखकर किया गया। इस योजना के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थे-

1. तृतीय योजना की अवधि में प्रतिवर्ष 5% से अधिक राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना तथा पाँच वर्षा में 30 प्रतिशत वृद्धि करना एवं विनियोगों का ढांचा इस प्रकार बनाना जिससे भावी योजनाओं में भी विकास की यह दर कायम रह सके।
2. खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना एवं उद्योगों व निर्यात की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कृषि का उत्पादन बढ़ाना।
3. आधारभूत उद्योगों जैसे इस्पात, रासायनिक उद्योग, ईधन व शक्ति का विस्तार करना तथा मशीन निर्माण की क्षमता स्थापित करना जिससे आगामी लगभग दस वर्षो में देश के स्वयं के साधनों से औद्योगीकरण की आवश्यकतायें पूरी की जा सके।
4. देश की श्रम शक्ति का अधिकतम उपयोग करना और रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।
5. अवसर की समानता को अधिकाधिक रूप से बढ़ाना और आय तथा धन के वितरण की असमानता को हटाना तथा आर्थिक शक्ति का अधिक समान वितरण करना।

तृतीय योजना की व्यूह रचना

इस योजना में खाद्यान्नों की आत्मनिर्भरता पर विशेष रूप से बल दिया गया जो द्वितीय योजना काल के अनुभवों के कारण आवश्यक हो गया था। अर्थव्यवस्था को तेजी से आत्म-निर्भर विकास की ओर ले जाना का लक्ष्य रखा गया था। देश में पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन वृद्धि पर जोर दिये जाने की बात कही गयी ताकि भविष्य में विदेशों पर निर्भरता कम की जा सके। इस प्रकार इस योजना में कृषि व औद्योगिक क्षेत्र का संतुलन तथा विकास, अवसरों की समानता व रोजगार अवसरों में वृद्धि पर बल दिया गया।

परिव्यय

तृतीय योजनावधि में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल प्रस्तावित परिव्यय राशि 7500 करोड़ रूपये रखी गई जबकि वास्तविक व्यय 8577 करोड रूपये हुआ इसमें से सर्वाधिक 24.6 प्रतिशत परिवहन एवं संचार साधनों पर, 22.9 प्रतिशत उद्योगों पर, 20.5 प्रतिशत कृषि एवं सिंचाई पर, 17.4 सामाजिक सेवाओं पर तथा 14.6 प्रतिशत शक्ति विकास पर व्यय किया गया। इस योजना में आंतरिक एवं बाह्य साधनों का अनुपात 72:28 रहा।

मूल्यांकन

तृतीय योजनावधि में दो बार क्रमश: 1962 में चीनी आक्रमण तथा 1965 में पाकिस्तानी आक्रमण से देश के समक्ष सुरक्षा व विकास दोनों में परस्पर समन्वय स्थापित करने की समस्या उत्पन्न हो गई थी। साथ ही 1965-66 मे देश में अभूतपूर्व अकाल व सूखे की स्थिति से भी कृषि खाद्यान्नों की स्थिति विकट हो गई थी। इस योजना में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में निराशा ही हाथ लगी। इस योजना की उपलब्धियों का विवरण निम्न है -

1. राष्ट्रीय आय में लक्ष्य से बहुत कम वृद्धि हुई। राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत के लक्ष्य के बजाय 2.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि ही हो पाई। प्रति व्यक्ति आय में केवल 0.2 प्रतिशत ही वार्षिक वृद्धि हुई।
2. कृषि खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य 6 प्रतिशत निर्धारित किया था जो केवल 2 प्रतिशत ही हासिल हुआ।
3. औद्योगिक उत्पादन में वार्षिक वृद्धि 7.5 प्रतिशत रही जो लक्ष्य 14.1 से लगभग आधी थी।
4. योजनाकाल में 140 लाख लोगों को रोजगार प्रदान किया गया।

यह योजना क्षेत्रीय विषमताओं में आशानुकूल कमी नहीं कर पाई। सामाजिक उद्देश्य भी अधूरे रहे। एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ प्रबल हुई। कर भार एवं मूल्य स्तर मे वृद्धि से जीवन स्तर सुधार में बाधा आयी। बेरोजगारी के सम्बन्ध में 140 लाख लोगों को रोजगार देने के बावजूद भी योजना समाप्ति पर 120 से 160 लाख बेरोजगारी व्यक्ति थे।

6.2.4 तीन वार्षिक योजनायें

तृतीय योजना के बाद देश में अकाल व युद्धों से रक्षा व्यय एवं मूल्य स्तर में निरन्तर वृद्धि व विदेशी सहायता की अनिश्चितता के कारण चतुर्थ पंचवर्षीय योजना अपने निर्धारित समय से लागू नहीं की जा सकी और तीन वार्षिक योजनाओं का निर्धारण किया गया। इन तीन वार्षिक योजनाओं को (1998-67, 1967-68 तथा 1968-69) पंचवर्षीय योजनाओं के बीच अवकाश (Holiday in Planning) कहा जाता है।

उद्देश्य एवं व्यूह रचना

इन वार्षिक योजनाओं के कोई विस्तृत उद्देश्य निर्धारित नहीं किये गये। इनके उद्देश्य तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में अर्थव्यवस्था में उत्पन्न तनावों को दूर करना, मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करना तथा देश में उपलब्ध साधनों का सर्वोत्तम उपयोग करना था।

परिव्यय एवं मूल्यांकन

इन तीन वार्षिक योजनाओं का वास्तविक व्यय 6625.4 करोड़, रूपये थे। इन वार्षिक योजनाओं की अवधि में राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत की दर से तथा प्रति व्यक्ति आय में 1.8 प्रतिशत की दर से वार्षिक वृद्धि हुई। खाद्यान्न व औद्योगिक उत्पादन भी बढ़ा परन्तु विकास की गति मंद ही रही क्योंकि तत्कालीन कठिन परिस्थितियों से अर्थव्यवस्था को बाहर निकालना बड़ा कठिन था।

6.2.5 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

इस योजना की अवधि 1 अप्रैल, 1969 से 31 मार्च, 1974 तक रही। इस योजना के उद्देश्य देश में स्थिरता के साथ आर्थिक विकास (Growth with Stability) तथा आत्मनिर्भरता की प्राप्ति करना था। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे -

1. स्थिरता के साथ आर्थिक विकास करना।
2. सामाजिक एवं आर्थिक समानता की प्राप्ति।
3. संतुलित क्षेत्रीय विकास-आर्थिक विकास का लाभ देश के सभी क्षेत्रों को समान रूप से मिलना चाहिए। इस हेतु पिछड़े क्षेत्रों का अधिकाधिक विकास करना तथा क्षेत्रीय विषमता को दूर करना।
4. विदेशी सहायता पर निर्भरता समाप्त करके तेजी से आत्म निर्भरता की ओर बढ़ाना, इस हेतु कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि कार्यक्रम लागू किये जावें।
5. निर्यातों में 7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि करना।
6. मूल्य स्तर में स्थायित्व लाने के उद्देश्य से मुद्रा प्रसार संबंधी तत्वों को नियंत्रित करना।
7. जनसंख्या नियंत्रण व जीवन स्तर में सुधार हेतु परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू करना।
8. रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

व्यूह रचना

आर्थिक नियोजन के क्षेत्र में उत्पन्न बाधाओं व लक्ष्यों तथा उपलब्धियों के बीच अन्तर को ध्यान रखते हुए चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के विकास की व्यूह रचना अधिक रचनात्मक, विवेकशील एवं व्यापक थी। स्थायित्व के साथ आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय एवं समानता पर आधारित इस योजना की विकासात्मक रणनीति में कृषि में हरित क्रान्ति की शुरुआत और सुरक्षात्मक कार्यों का समावेश था। कृषि एवं सिंचाई पर कुल 3815 करोड रूपये व्यय की व्यवस्था थी, खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता हेतु बफर स्टॉक का निर्माण, आत्मनिर्भरता तथा स्वावलम्बन के लिये उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। राज्य स्तर एवं जिला स्तर पर योजना निर्माण मशीनरी को अधिक सुदृढ़ करना, बैंकिंग पर प्रभावी सामाजिक नियंत्रण, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की उत्पादन क्षमता का पूर्ण सदुपयोग तथा विदेशी सहायता को कम करने हेतु निर्यातों में वृद्धि तथा आयातों में कमी प्रमुख नीति रही थी।

परिव्यय

इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल 15,902 करोड़ व्यय करने का प्रावधान था परन्तु वास्तविक व्यय 15,789 करोड़ रूपये हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र में कुल प्रस्तावित व्यय 15,902 करोड़ रूपये में से वृहद उद्योगों व खनिज विकास पर 3387.3 करोड़ रूपये तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों पर 293 करोड़ रूपये व्यय का प्रावधान था। योजना की वित व्यवस्था में 83.5 प्रतिशत घरेलू साधनों से तथा 16.5 प्रतिशत भाग विदेशी सहायता से प्राप्त किया गया।

मूल्यांकन

राष्ट्रीय आय में 1970-71 के मूल्यों पर 3.4 प्रतिशत एवं प्रति व्यक्ति आय में 1.1 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई जो निर्धारित लक्ष्य 5.7 प्रतिशत से बहुत कम थी। कृषिगत उत्पादन एवं औद्योगिक उत्पादन वृद्धि भी लक्ष्य से कम रही। यद्यपि यह योजना अधिक व्यावहारिक व उद्देश्यों के अनुरूप थी परन्तु इस योजना के दौरान मूल्यों में भारी वृद्धि, आर्थिक विषमताओं में वृद्धि, बेरोजगारी की समस्या तथा विदेशी सहायता की संदिग्धता एवं विदेशी विनिमय संकट आदि तत्व इसके दुर्बल पक्ष को भी इंगित करते है।

6.2.6 पाँचवी पंचवर्षीय योजना-उद्देश्य एवं व्यूह रचना

यह योजना 1 अप्रैल, 1974 से 31 मार्च, 1979 तक की अवधि के लिये निर्धारित की गई थी परन्तु जनता सरकार ने इरा योजना को निर्धारित अवधि से एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च 1978 को समाप्त कर दिया। इस योजना के दो प्रमुख उद्देश्य थे - (1) गरीबी का उन्मूलन तथा (2) आत्मनिर्भरता की प्राप्ति। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु योजना की व्यूह रचना में निम्न तत्वों को शामिल किया गया-

1. राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि जिसे संशोधित कर 4.37 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि की गई किन्तु वास्तविक वृद्धि 3.9 प्रतिशत वार्षिक रही।
2. रोजगार व अवसरों का विस्तार करना।
3. न्यूनतम आवश्यकताओं का राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू करना।
4. सामाजिक कल्याण का विस्तृत कार्यक्रम लागू करना।
5. परिवार नियोजन का व्यापक कार्यक्रम लागू करना।
6. कृषि, आधारभूत उद्योगों तथा उपभोग उद्योगों का तेजी से विकास एवं विस्तार करना।
7. आय, मजदूरी एवं कीमतों में संतुलन स्थापित करना।
8. गरीबों को उचित मूल्यों पर अनिवार्य वस्तुयें उपलब्ध कराने के लिये सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्यवस्था करना।
9. निर्यात सम्बर्द्धन एवं आयात प्रतिस्थापन के प्रभावी कदम उठाना।
10. सामाजिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के लिये संस्थागत, राजकोषीय एवं अन्य उपायों का सहारा लेना।

परिव्यय

योजना के प्रारम्भ में सार्वजनिक क्षेत्र में 42,303 करोड़ रूपये व्यय का प्रावधान था परन्तु इस योजना पर वास्तविक व्यय 30426.2 करोड़ रूपये रहा। कुल परिव्यय का 22.1 प्रतिशत कृषि एवं सिंचाई पर, 24.3 प्रतिशत उद्योगों पर, 18.8 प्रतिशत विद्युत पर, 17.4

प्रतिशत यातायात एवं संदेशवाहन साधनों पर तथा शेष 17.4 प्रतिशत सामाजिक सेवाओं पर व्यय किया गया।

मूल्यांकन

पाँचवी पंचवर्षीय योजना का मुख्य लक्ष्य गरीबी हटाना था। अत: इस योजना में गरीबी उन्मूलन एवं न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम की दिशा में काफी प्रयत्न किये गये। साथ ही इस योजना में पूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा 20 सूत्रीय कार्यक्रम लागू किये गये। इस योजना में आर्थिक नीतियों का क्रियान्वयन इस प्रकार किया गया कि स्थायित्व के साथ विकास हो सके। विदेशी मुद्रा पूर्ति में वृद्धि हेतु निर्यातों में वृद्धि व आयातों में प्रतिस्थापन की पूरी कोशिश की गई। परन्तु इस योजना में दूसरी तरफ घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया गया जिससे मूल्यों में वृद्धि हुई तथा बेकारी की समस्या भी ज्यों की त्यों रही। इस अवधि में ही आपातकाल की घोषणा की गई। आपातकाल के दौरान बढते मूल्यों पर नियंत्रण लगाया गया।

6.2.7 छठी पंचवर्षीय योजना

मार्च 1977 में आम चुनावों की घोषणा हुई तथा जून 1977 में जनता सरकार ने सत्ता सम्भाली और पाँचवी पंचवर्षीय योजना को उसकी अवधि से एक वर्ष पूर्व ही समाप्त करके 1 अप्रैल 1978 में छठी पंचवर्षीय योजना (1978-1983) की घोषणा की गई। परन्तु जनवरी 1980 में पुन: कांग्रेस सतारुढ़ हुई और जनता सरकार द्वारा घोषित छठी पंचवर्षीय योजना को बीच में समाप्त कर दिया गया तथा एक नई छठी पंचवर्षीय योजना (1980-1985) की घोषणा की गई। इस योजना के मुख्य उद्देश्य एवं व्यूह रचना निम्नलिखित थे-

1. आर्थिक विकास दर में 5.2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। कृषि मे 4 प्रतिशत, औद्यौगिक उत्पादन मे 8 से 9 प्रतिशत तथा निर्यातों में 10 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि करना।
2. गरीबी एवं बेरोजगारी की स्थिति में लगातार कमी करना।
3. आर्थिक और प्रोद्योगिक आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने के लिये आधुनिकीकरण को बढ़ावा देना।
4. ऊर्जा के घरेलु संसाधनों का तेजी से विकास जिसमें ऊर्जा के संरक्षण एवं कार्यकुशल उपयोग पर बल दिया गया।
5. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से लोगों के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार करना।
6. गरीबों के हित में सार्वजनिक नीतियों और सेवाओं को ऐसा रुप देना जिससे आय और सम्पत्ति की असमानतायें कम हो।
7. विकास की नीति और तकनीकी लाभों के प्रसार में क्षेत्रीय असमानताओं में कमी करना।
8. छोटे परिवार के मानक की स्वैच्छिक रुप से स्वीकृति के द्वारा जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने हेतु विविध नीतियों को प्रोत्साहन देना।
9. परिस्थिकीय संतुलन एवं पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना।
10. उपयुक्त शिक्षा, संचार और संस्थागत कार्य नीतियों के माध्यम से विकास की प्रकिया में समाज के सभी वर्गो की सक्रिय सहभागिता को बढ़ावा देना।

परिव्यय एवं मूल्यांकन

इस योजना के अर्न्तगत प्रस्तावित सार्वजनिक परिव्यय 97,500 करोड़ रुपये था, जबकि वास्तविक परिव्यय 1,09,291.7 करोड़ रुपये था जिसमें से 23.9% कृषि एवं ग्रामीण विकास एव संचाई विकास पर, 28.1 प्रतिशत ऊर्जा विकास पर, 15.5 प्रतिशत उद्योग व खनिज विकास पर, 17.1 प्रतिशत यातायात एवं संचार विकास पर तथा 15.4 प्रतिशत अन्य सामाजिक सेवाओं पर व्यय किया गया।

छठी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर 5.4 प्रतिशत वार्षिक रही तथा प्रति व्यक्ति आय में 3.1 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। निर्धनता एवं बेरोजगारी निवारण हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम अपनाये गये। खाद्यान्न उत्पादन लगभग 129.6 मि. टन से बढ़कर 145.5 मि. टन हो गया। औद्यौगिक उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य 8-9% था परन्तु वास्तविक उत्पादन 6 प्रतिशत की दर से ही बढ़ा। गरीबी का अनुपात जो 1977-78 में 48.3 प्रतिशत था, इस योजना के अंत में 1984-85 में घटकर 36.9 प्रतिशत रह गया। मोटे तौर पर इस योजना को लक्ष्यों की पूर्ति की दृष्टि से संतोषजनक माना जा सकता है। परन्तु इस योजना में कीमत स्तरों में 10 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर से आमजन को परेशानी का सामना करना पड़ा तथा व्यापार घाटा 5390.5 करोड रूपये रहा।

6.2.8 सातवीं पंचवर्षीय योजना

यह योजना 1985-1990 के लिये बनाई गई। इस योजना में 'रोजी, रोटी एवं उत्पादकता' (Food, Work and Productivity) पर प्रमुख बल दिया गया। इस योजना में ऐसी नीतियों एवं कार्यक्रमों पर बल दिया जो खाद्यान्नों का उत्पादन बढाने, रोजगार बढाने एवं उत्पादकता में वृद्धि करने में सहायक हों।

व्यूह रचना

सातवीं योजना के व्यापक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर इसमें निम्न व्यूह रचना अपनाई गई -

1. राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया था, कृषि विकास दर को 4 प्रतिशत तथा औद्योगिक विकास दर 7.8 प्रतिशत को बनाये रखना।
2. सम्पूर्ण जनसंख्या के लिये खाद्यान्नों की पर्याप्त पूर्ति हेतु खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता प्राप्त करना।
3. समाज के सभी कार्यशील व्यक्तियों को उत्पादक रोजगार दिलाना, पाँच वर्षो में 4 करोड़ अतिरिक्त मानव श्रम के लिए रोजगार की व्यवस्था करना।
4. सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को प्रभावी रूप से कम करना।
5. उत्पादकता में वृद्धि हेतु औद्योगिक विकास, आधुनिकीकरण तथा प्रशासनिक कुशलता में वृद्धि।
6. निर्यात सम्वर्द्धन एवं आयात प्रतिस्थापन द्वारा स्वावलम्बन।
7. ऊर्जा संरक्षण एवं गैर परम्परागत स्त्रोतो का विकास करना।
8. पारिस्थितिकीय एवं पर्यावरण संरक्षण।
9. देश में तकनीकी विकास के लिये सुदृढ़ आधार तैयार करना।

10. आर्थिक विकास एवं योजना की सफलता के लिये जन सहयोग प्राप्त करना।

परिव्यय एवं मूल्यांकन

सातवीं योजना के अन्तर्गत कुल प्रस्तावित परिव्यय राशि (1984-85 के मूल्यों पर) 3,48,148 करोड़ रूपये थी, जिसमें से सार्वजनिक क्षेत्र में 1,80,000 करोड़ रूपये व्यय किये जाने का प्रावधान था। यह परिव्यय छठी योजना के वास्तविक व्यय से 64 प्रतिशत अधिक था। इस योजना में ऊर्जा विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। इस योजना में कृषि एवं सम्बद्ध कार्यक्रमों पर कुल परिव्यय का 22 प्रतिशत व्यय किये जाने का प्रावधान था। उद्योग एवं खजिन विकास पर 12.5 प्रतिशत, ऊर्जा विकास पर 30.5 प्रतिशत तथा सामाजिक सेवाओं पर 16.3 प्रतिशत व्यय किया गया। सातवीं योजना में विकास दर 6 प्रतिशत रही जो लक्ष्य दर 5 प्रतिशत से ज्यादा थी। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की कार्यकुशलता को सुधारा गया सबको रोजी एवं रोटी देने के स्वप्न को साकार रूप प्रदान करने हेतु गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाये गए। गरीबी का प्रतिशत इस योजना के अन्त में घटकर 36 प्रतिशत रह गया जबकि इस योजना के अन्त में गरीबी का अनुपात घटाकर 29.3 प्रतिशत करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस योजना में 14000 करोड़ रूपये के हीनार्थ प्रबन्धन की व्यवस्था की गई जिसके फलस्वरूप मूल्यों में वृद्धि हुई।

6.2.9 आठवीं पंचवर्षीय योजना

आठवीं पंचवर्षीय योजना जो 1 अप्रैल, 1990 से प्रारम्भ होनी थी, केन्द्र में राजनीतिक अस्थिरता के कारण दो वर्ष देरी से प्रारम्भ हुई। राष्ट्रीय विकास परिषद ने इस योजना के प्रारूप को 23 मई, 1992 को हुई बैठक में उस समय स्वीकृति दी जब देश आर्थिक एवं वित्तीय संकट से जूझ रहा था। अत: नरसिंह राव सरकार ने आर्थिक सुधारों के साथ इस योजना को 1 अप्रैल, 1992 से 31 मार्च, 1997 तक लागू किया।

उद्देश्य एवं व्यूह रचना

इस योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे -

1. रोजगार के पर्याप्त अवसरों का सृजन करना ताकि इस शताब्दी के अन्त तक पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सके।
2. जन सहयोग के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना।
3. प्रारम्भिक शिक्षा को सर्वव्यापक बनाना तथा 15 वर्ष से 35 वर्ष की आयु के लोगों में निरक्षरता को पूर्णत: समाप्त करना।
4. सभी गाँवों में पेयजल तथा प्राथमिक चिकित्सा सुविधाओं को उपलब्ध कराना तथा मैला ढोने की प्रथा का उन्मूलन करना।
5. कृषि का पर्याप्त विकास करना तथा उसका विविधीकरण करना ताकि खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता और निर्यातों के लिये अतिरेक उत्पन्न हो।
6. विकास प्रक्रिया को स्फूर्ति प्रदान करने हेतु आधारभूत ढाँचें को, जिसके अन्तर्गत ऊर्जा, परिवहन एवं संचार साधनों तथा सिंचाई सुविधाओं को मजबूत करना।

उपर्युक्त व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस योजना की व्यूह रचना निम्न प्रकार तय की गई

1. विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत रखा गया।
2. कृषि विकास में तेजी एवं विविधीकरण करना।
3. रोजगार में 2.3 प्रतिशत से 2.6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि करना ताकि योजना के 5 वर्षो में 4 करोड़ मानव के लिये रोजगार का श्रम सृजन हो सके।
4. औद्योगिक विकास की वार्षिक दर 8-10 प्रतिशत तक करना।
5. निर्यातों में वार्षिक वृद्धि दर 13.6 प्रतिशत तथा आयातों में 8.4 प्रतिशत तक करना।
6. उत्पादकता वृद्धि के लिये आधुनिकीकरण प्रौद्योगिकी विकास तथा प्रतिस्पर्धात्मक कुशलता में वृद्धि करना।
7. पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण पर प्रभावी नियंत्रण लागू करना।

परिव्यय एवं मूल्यांकन

आठवीं पंचवर्षीय योजना में 7,98,000 करोड़ रूपये परिव्यय का प्रावधान था, जिसमें से 4,34,100 करोड़ रूपये का परिव्यय सार्वजनिक क्षेत्र के लिये था। सार्वजनिक क्षेत्र की इस राशि में से 3,61,000 करोड़ रूपये की राशि नये निवेश तथा 73,100 करोड़ रूपये चालू खर्च के लिये रखे गये थे। सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक परिव्यय 4,95,669 करोड़ रूपये का रहा।

इस योजना में 6.7 प्रतिशत की विकास दर हासिल की गई जो लक्ष्य दर 5.6 प्रतिशत से 1.1 प्रतिशत अधिक थी तथा प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में औसत वृद्धि दर 4.6 प्रतिशत रही। यह योजना गरीबी, बेकारी तथा असमानता कम करने में असफल रही एवं मूल्य वृद्धि दर संतोषजनक रही।

6.2.10 नवीं पंचवर्षीय योजना

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के संशोधित मसौदे को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने 9 जनवरी, 1999 को अपनी मंजूरी प्रदान कर दी थी। इस योजना के दृष्टिकोण पत्र में विकास के 15 वर्षीय परिपेक्ष्य को दर्शाया गया। नवीं योजना में सामाजिक परिवर्तन पर ज्यादा ध्यान दिया गया। योजना में आर्थिक विकास के साथ 'मानवीय पक्ष' पर भी ध्यान दिया गया।

उद्देश्य एवं आयाम

देश में न्यायपूर्ण वितरण एवं समानता के साथ विकास (Growth with Equity and Distributive Justice) को नवीं योजना का मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया गया, इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे -

1. मूल्यों में स्थायित्व के साथ आर्थिक विकास की गति को तेज करना।
2. जनसंख्या वृद्धि दर पर नियंत्रण करना।
3. पर्याप्त एवं उत्पादक रोजगार अवसरों में वृद्धि करना तथा गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य से कृषि एव ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना।
4. सभी के लिये खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना।
5. सबके लिए सुरक्षित पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा तथा प्राथमिक शिक्षा आदि की व्यवस्था करना।
6. सभी स्तरों पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना।

7. महिलाओं और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछडी जातियों एवं अल्पसंख्यक जैसे वर्गो का सामाजिक आर्थिक उत्थान करना।
8. पंचायती राज संस्थाओं, सहकारी संगठनों तथा स्वयंसेवी संघो जैसे जन सहभागिता वाली संस्थाओं को प्रोत्साहित करना एवं विकसित करना।
9. आत्म निर्भरता प्राप्ति के प्रयत्नों को सुदृढ़ करना।

व्यूह रचना

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु योजना के प्रारूप में विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में निम्न व्यूह रचना गई -

1. विकास के सम्बन्ध में इस योजना के चार प्रमुख आयाम निर्धारित किये जो आत्मनिर्भरता, क्षेत्रीय सन्तुलन, जीवन स्तर में सुधार तथा रोजगार संवर्द्धन है।
2. विकास की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 6.5 प्रतिशत रखा गया जबकि मूल योजना में वृद्धि दर 7 प्रतिशत रखी गई थी।
3. रोजगार अवसरों में आगामी पाँच वर्षा में लगभग 5.02 करोड़ रूपये की वृद्धि करना।
4. औद्योगिक विकास पर 8.2 प्रतिशत तथा विद्युत उत्पादन में 9.3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि करना।
5. निर्यातों में 11.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना तथा आयातों को 10.8 प्रतिशत वृद्धि दर तक सीमित करना।
6. कृषि क्षेत्र में वार्षिक वृद्धि दर 3.9 प्रतिशत से 4 प्रतिशत करना।
7. सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यकुशलता में वृद्धि करना।
8. पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ करना एवं उन्हें स्वतन्त्रता देना तथा
9. पर्यावरण संरक्षण।

परिव्यय एवं मूल्यांकन

संशोधित नवीं योजना में कुल 8,59,200 करोड़ रूपये परिव्यय का प्रावधान किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र हेतु 2,90,000 करोड़ रूपये आवंटित किये गये। केन्द्रीय योजना 4,89,000 करोड़ रूपये तथा राज्यों की योजना 3,70,000 करोड़ रूपये की निर्धारित की गई। योजना के लिये बजटीय सहायता राशि 3,74,000 करोड़ रूपये निर्धारित की गई।

नवीं पंचवर्षीय योजना में विकास के 15 वर्षीय दृष्टिकोण को शामिल किया गया। इस योजना का प्रमुख लक्ष्य 'सामाजिक न्याय एवं समानता के साथ विकास' था। इस योजना में 6.5 प्रतिशत लक्षित विकास दर के विरूद्ध 5.4 प्रतिशत विकास की दर प्राप्त की गई। कृषि क्षेत्र में 3.9 प्रतिशत के लक्ष्य के विरूद्ध वास्तविक उपलब्धि 2.1 प्रतिशत रही। निर्यात की वास्तविक वृद्धि दर 7.4 प्रतिशत रही। जबकि लक्ष्य 11.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का था। साथ ही बेरोजगारी में कमी, ऋण भार में कमी आदि लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी नवीं योजना सफल नहीं रही।

6.2.11 दसवीं पंचवर्षीय योजना

दसवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि अप्रैल, 2002 से मार्च 2007 तक निर्धारित की गई। 21 दिसम्बर, 2002 को राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा अनुमोदित दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में 8 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि दर की परिकल्पना की गई। इस योजना में मानव विकास

और सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया। इस योजना के उद्देश्य एवं रणनीति निम्न प्रकार है -

उद्देश्य एवं रणनीति

दसवीं पंचवर्षीय योजना के विकास संबंधी रणनीति में एक सुदृढ़ और गतिमान निजी क्षेत्र के आविर्भाव, अवसंरचना के प्रावधान की आवश्यकता और राजकोषीय व मौद्रिक नीतियों में अधिक लचीलापन प्रदान करने की आवश्यकता के संदर्भ में सरकार की भूमिका को पुन: परिभाषित करने की परिकल्पना की गई। सभी राज्यों के संतुलित विकास की महत्ता पर जोर देने के लिये, राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप वृद्धि दरों तथा सामाजिक विकास के लक्ष्यों को शामिल करते हुए वृहद् विकासात्मक लक्ष्यों का एक राज्यवार विवरण शामिल किया गया। इस योजना में सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया। इससे सम्बन्धित विभिन्न लक्ष्य निम्न है -

1. योजना अवधि (2002-07) में सकल घरेलू उत्पादन में 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि।
2. सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 15,92,300 करोड़ रूपये।
3. योजना के पाँच वर्षो में 5 करोड़ अतिरिक्त रोजगार अवसरों का सृजन करना।
4. मानव संसाधनों के विकास के लिये 2006-07 तक साक्षरता का प्रतिशत 75 प्रतिशत करना तथा शिशु मृत्यु दर को घटाकर 45 प्रति हजार पर लाना।
5. प्रतिवर्ष 7.5 अरब डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का लक्ष्य।
6. योजनावधि में पाँच वर्षो में 78.000 करोड़ का विनिवेश करने का लक्ष्य।
7. वनाच्छदित क्षेत्रफल को बढ़ाकर 25 प्रतिशत तक लाना व सभी मुख्य नदियों के प्रदूषण की सफाई एवं सभी गाँवों में स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराना।
8. निवेश दर को सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 28.4 प्रतिशत तथा घरेलू बचत की दर जी डी पी का 26.8 प्रतिशत तक बढ़ाना।
9. राजकोषीय घाटे में कमी करना तथा आर्थिक निर्भरता हेतु विदेशी पूँजी पर निर्भरता को सकल घरेलू उत्पाद के 1.6 प्रतिशत तक लाना, कर राजस्व को 8.6 प्रतिशत से बढ़ाकर 10.3 प्रतिशत करना तथा गैर योजना व्यय को 11.3 प्रतिशत से घटाकर 9 प्रतिशत करना।

परिव्यय एवं मूल्यांकन

दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 15,92,300 करोड़ रूपये निर्धारित किया गया जिसमें से 9,21,291 करोड़ रूपये केन्द्रीय योजना परिव्यय के रूप में तथा 6,71,009 करोड़ रूपये राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों का परिव्यय रखा गया। केन्द्रीय बजट प्रावधान 7,06,000 करोड़ रूपये रखा गया। दसवीं पंचवर्षीय योजना का कुल परिव्यय 2001-02 की कीमतों पर 19,68,815 करोड़ रूपये है। इसमें केन्द्रीय योजना के लिये 7,06,000 करोड़ रूपये तथा राज्यों की योजनाओं के लिये 5,88,325 करोड़ रूपये और सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के लिये 6,74,790 करोड़ रूपये का परिव्यय शामिल है। इस परिव्यय के लिये 9,94,060 करोड़ रूपये की बजटीय सहायता परिकल्पित की गई। इस योजना में ऊर्जा, सामाजिक सेवाओं, परिवहन एवं दूर

संचार के विकास पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया। कुल परिव्यय का लगभग 71 प्रतिशत भाग इन क्षेत्रों पर व्यय किया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) ने 31 मार्च, 2005 को तीन वर्ष पूरे कर लिये थे, इन तीनों वर्षा में देश में औसत आर्थिक वृद्धि 6.5 प्रतिशत रही। कृषि क्षेत्र में आई बड़ी गिरावट योजना का लक्ष्य प्राप्त न कर पाने के कारणों में प्रमुख है। कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित था। किन्तु योजना के पहले तीन वर्षो में इस क्षेत्र का वास्तविक प्रदर्शन 1.5 प्रतिशत से ज्यादा नही रहा। देश में रोजगार वृद्धि तथा निर्धनता में कमी का सम्बन्ध मुख्यत: कृषि क्षेत्र से है, जिसके खराब निष्पादन के चलते इन दोनों क्षेत्रों में प्रगति का लक्ष्य ठीक से पूरा नहीं किया गया। कृषि क्षेत्र में धीमी वृद्धि को वितरणात्मक समस्या के स्थान पर संरचनात्मक समस्या के रूप में स्वीकार किया गया तथा इस क्षेत्र में प्रावैगिकता के संचार के लिये कृषि मंत्रालय व योजना आयोग द्वारा संयुक्त दीर्घकालीन ऐजेन्डा तैयार करने का निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद की जून 2005 की बैठक में लिया गया। दसवीं योजना के अन्तिम वर्ष 2007 के अन्त में वार्षिक विकास दर 8 प्रतिशत वार्षिक से अधिक रहने का अनुमान है।

6.3 सारांश

देश में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों में क्रियान्वयन के प्रारम्भिक काल से अब तक के साढे पांच दशकों में विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति सम्भव हो सकी है। यद्यपि इन योजनाओं में निवेशित भौतिक एवं आर्थिक संसाधनों की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं की तुलना में परिणाम संतोषजनक नहीं रहे लेकिन विशेष रूप से पिछले दो दशकों के परिणाम उत्साहवर्धक रहे हैं। वर्ष 1951-80 तक के प्रारम्भिक तीन दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर 3-4 प्रतिशत के बीच ही रही, जिसे विशेष तौर पर पश्चिमी अर्थशास्त्री उपेक्षा की दृष्टि से हिन्दू विकास दर (Hindu Growth Rate) करते थे (प्रो. राजकृष्णा)। लेकिन बाद में पिछले दो दशकों में यह 6.0 प्रतिशत के आसपास रही जिसे सेक्यूलर विकास दर का नाम दिया गया, यही नहीं आज भारत की अर्थव्यवस्था अमरीका, चीन तथा जापान के बाद चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, जहाँ 8 से 10 प्रतिशत वार्षिक विकास दर की क्षमता विद्यमान है।

6.4 शब्दावली

- आर्थिक नियोजन (Economic Planning) - आर्थिक संसाधनों का पूर्व मूल्यांकन करके पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को निश्चित अवधि में प्राप्त करने हेतु संसाधनों का योजनाबद्ध एवं पूर्ण उपयोग करने की प्रक्रिया आर्थिक नियोजन कहलाता है।
- व्यूह-रचना/रणनीति (Strategy) - किसी संगठन एवं कार्य के उद्देश्यों को स्पष्ट करने एवं उन्हें प्राप्त करने के लिये विस्तृत एवं सुव्यवस्थित कार्यक्रम।
- परिव्यय (Outlay) - योजना पर कुल प्रस्तावित व्यय तथा वास्तविक व्यय राशि।
- समाजवाद (Socialism) - अर्थव्यवस्था का वह स्वरूप जिसमें सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होता है।
- राष्ट्रीय आय (National Income) - किसी देश में एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं के अन्तिम मूल्य को राष्ट्रीय आय कहते है।

- मुद्रा स्फीति (Money Inflation) - मूल्य स्तर की वह अवस्था जिसमें मुद्रा का मूल्य गिर जाता है तथा वस्तुओं तथा सेवाओं के कीमत स्तर में वृद्धि होती है।

6.5 स्वपरख प्रश्न

1. भारत में आर्थिक नियोजन कब से शुरू हुआ?
2. भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यकाल बताइये।
3. भारत की दसवीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों का संक्षेप में विवेचन कीजिये।
4. भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों एवं व्यूह रचनाओं की विवेचना कीजिये।
5. भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिये।

इकाई 7

भारतीय आर्थिक नियोजन : उपलब्धियाँ एवं विफलताएँ (Indian Economic Planning: Achievements and Failures)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 भारतीय आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ

7.3 भारतीय में आर्थिक नियोजन की असफलताएँ/विफलताएँ

7.4 भावी नियोजन हेतु सुझाव

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 स्वपरख प्रश्न

7.8 संदर्भ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगें कि -

1. भारतीय आर्थिक नियोजन की समीक्षात्मक जानकारी प्राप्त कर सकें।
2. नियोजनकाल में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं की सफलताओं एवं उपलब्धियों के बारे में तथ्यों से अवगत हो सकें।
3. भारतीय आर्थिक नियोजन की कमियों एवं विफलताओं पर दृष्टिपात कर सकें।
4. भारतीय आर्थिक नियोजन की आलोचनात्मक समीक्षा कर सकें।
5. भारत में भावी आर्थिक नियोजन की सफलता हेतु सुझावों का विश्लेषण कर सके।

7.1 प्रस्तावना

भारत में तीव्र आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिये 01 अप्रैल 1951 से योजनाबद्ध आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई। पिछले 56 वर्षो में दस पंचवर्षीय योजनायें तथा 5 वार्षिक योजनायें पूरी की जा चुकी है। इस नियोजन अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था का बहुमुखी विकास हुआ है। निःसन्देह भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक रचनात्मक परिवर्तन हुये है। देश में आर्थिक समृद्धि एवं आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त हुआ है। योजनाकाल में किये गये प्रयासों का ही परिणाम है कि हम देश के भावी विकास के लिये एक सुदृढ़ आधार तैयार कर पाये है। डॉ. वी.के. आर.वी. राव के अनुसार "आज हम खाद्यान्न में आत्मनिर्भर है, हमारे यहाँ आधुनिक एवं विविधता पूर्ण औद्योगिक संरचना सुस्थापित है जो हमें विश्व दस सर्वाधिक उन्नत औद्योगिक राष्ट्रों में लाकर खड़ा कर देती है। वैज्ञानिकों एवं तकनीकी विशेषज्ञों की संख्या

की दृष्टि से हम विश्व में तीसरे-चौथे स्थान पर आते है।" इसी प्रकार नियोजित विकास की उपलब्धियों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डी. एल.के. झा ने लिखा है कि "विश्व के औद्योगिक देशों की पंक्ति में अब भारत ने भी ऊँचा दर्जा प्राप्त कर लिया है। हमारे उद्योग हमारी जरूरतों की लगभग सभी उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन तो करते ही है, साथ ही विभिन्न पूंजीगत वस्तुओं, भारी मशीनों, बिजली संयंत्रों, विमान और महासागरों में काम आने वाले जहाजों का निर्माण भी करते है। आज देश के राज्यों में सूखे की स्थिति और मानसून समय पर न आने के बावजूद हमारे पास जरूरत से अधिक खाद्यान्न उपलब्ध है।"

योजनाबद्ध विकास के साथ तस्वरी का दूसरा पक्ष भी जुड़ा हुआ है। यद्यपि नियोजन काल के विभिन्न विगत वर्षो में जहां एक ओर उपलब्धियों व सफलताओं को पाने में कामयाब रहे है वहीं दूसरी तरफ हमारी गलत नीतियों के कारण कुछ मूलभूत प्रमुख समस्यायें आज भी बरकरार हैं। देश में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अज्ञानता, आर्थिक असमानता, बढती मंहगाई, अलगाववाद, हिंसा, गुटबंदी एवं विरोध आदि समस्यायें सर्वत्र दिखाई देती हैं। अतः यहाँ पर भारतीय नियोजन की सफलताओं एवं विफलताओं का जो मिला जुला रूप हमारे सामने आया है, इसका समीक्षात्मक मूल्यांकन निम्न विभिन्न तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है।

7.2 भारतीय आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ (Achievements of the Indian Economic Planning)

1951 से सभी तक पिछले 56 वर्षा में भारत में आर्थिक नियोजन के माध्यम से अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की गई है जो इस प्रकार है:-

1. **आर्थिक विकास की दर में वृद्धि (Increase in Rate of Economic Development):**

योजनाकाल में भारत में विकास दर में वृद्धि हुई है। जहाँ 1950-51 में आर्थिक विकास की दर 1.2% वार्षिक थी वह बढ़कर 1996-97 में 7.8% तथा 2003-04 में 8.5% तथा 2006-07 में बढ़कर 9.2% होने का अनुमान है। यद्यपि नवीं पंचवर्षीय योजना में विकास दर 5.4% रही जो लक्ष्य दर 6.5% से कम रही। परन्तु दसवीं पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास की दर लगभग 8 से 9% के बीच में रहने का अनुमान है जो लक्ष्य दर (8%) से अधिक है। विभिन्न योजनाओं की विकास दर निम्न तालिका में दर्शायी गई है -

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में विकास की दर (प्रतिशत)

योजना	लक्ष्य	वास्तविक विकास दर
प्रथम योजना (1951-56)	2.1	3.6
द्वितीय योजना (1956-61)	4.5	4.21
तृतीय योजना (1961-66)	5.6	2.72
चतुर्थ योजना (1969-74)	5.7	2.05
पंचम योजना (1974-79)	4.4	4.83
छठी योजना (1980-85)	5.2	5.54

सातवीं योजना (1985-90)	5.0	6.02
आठवीं योजना (1992-97)	5.6	6.7
नवीं योजना (1997-02)	6.5	5.4
दसवीं योजना (2002-07)	8.0	-

स्त्रोत-विभिन्न पंचवर्षीय योजनायें।

तृतीय एवं चतुर्थ योजना में सूखे एवं अकालों, विदेशी आक्रमणों तथा अशान्ति के कारण विकास दर घट गई थी किन्तु उसके बाद उसमें पुन: वृद्धि हो गई।

2. **राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि (Increase in National and per Capita Income)**

मोटे तौर पर किसी भी देश के आर्थिक विकास का मापदण्ड उसकी राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को माना जाता है। नियोजन काल में भारत में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई हैं। जो क्रमश: 6 गुना तथा 2.5 गुना वृद्धि हुई है। चालू मूल्यों पर जहाँ 1950-51 में राष्ट्रीय आय 9142 करोड़ रूपये थी वह बढ़कर 2004-05 में 25,42,921 करोड़ रूपये तथा प्रति व्यक्ति आय 254.7 रूपये से बढ़कर 23,308 रूपये होने का अनुमान है।

3. **कृषि क्षेत्र में विकास**

योजनावधि में कृषि क्षेत्र की प्रगति को संतोषजनक मानने की दृष्टि से यही तथ्य प्रमाणस्वरूप है कि देश खाद्यान्न तथा कृषिगत कच्चे मालों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर चुका है। जहाँ 1950-51 में कृषि विकास की दर 0.5% थी वह बढ़कर 2003-04 में 9-6% हो गई है। खाद्यान्न का उत्पादन जो 1950-51 में केवल 5.4 करोड़ टन था वह बढ़कर 1984-85 में 15 करोड़ टन तथा 2004-05 में 21.04 करोड़ टन होने का अनुमान है। विभिन्न कृषि जन्य वस्तुओं का उत्पादन निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

कृषि क्षेत्र की मुख्य उपलब्धियाँ

	विवरण	इकाई	1950-51	1980-81	2004-05 (अनुमानित)
1.	कृषि उत्पादन सूचकांक	1981-82=100	46.2	102.1	179.2
2.	खाद्यान्न उत्पादन	करोड टन	5.5	12.96	21.04
3.	तिलहन	लाख टन	5.2	94	248
4.	गन्ना	मि.टन	57	154	234
5.	कपास	लाख गांठे	29	70	171
6.	जूट एवं मेस्टा	लाख गांठे	33	65	97
7.	उर्वरकों का उपयोग	लाख टन	0.7	55	168

स्त्रोत - आर्थिक समीक्षा 2004-05

हरित क्रान्ति के फलस्वरूप उन्नत बीजों एवं उर्वरकों के प्रयोग में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। 1969-70 में केवल 114 लाख हैक्टेयर में अधिक उपज देने वाली फसलें बोई गई, वहाँ 2004-05 में यह क्षेत्र बढ़कर 850 लाख हैक्टेयर होने का अनुमान है। साथ ही कृषि में यंत्रीकरण निरन्तर बढ़ रहा है। जहाँ 1956 में विद्युत संचालित पम्प सेटों की संख्या 47 हजार थी, जो

2004-05 में बढ़कर 180 लाख होने का अनुमान है। ट्रेक्टरों की मांग 1966-67 में 20 हजार थी, जो बढ़कर अब 6 लाख होने का अनुमान है। कीटनाशक दवाओं का वार्षिक उपयोग भी 110 हजार टन है।

4. औद्योगिक विकास

योजनाकाल में देश में औद्योगिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ है। आज हम आधुनिक एवं भारी मशीनों इंजीनियरिंग का सामान तथा परिवहन उपकरणों का निर्माण एवं निर्यात करने की स्थिति में है। आधारभूत उद्योगों में राऊरकेला, भिलाई, दुर्गापुर, बोकारो के इस्पात कारखानों, बैंगलौर, रांची तथा पिंजोर में मशीन टूल्स कारखाने, चितरंजन व वाराणसी में रेल इंजन कारखाने, हिन्दुस्तान उर्वरक निगम के 7 कारखाने, हिन्दुस्तान केबल्स, हिन्दुस्तान शिपयार्ड, जिंक स्मेल्टर, ताम्बा शोधन कारखाना, भोपाल हैवी इलेक्ट्रिकल कारखाना तथा बैंगलोर व कानपुर के जहाज निर्माण कारखाने योजनाबद्ध विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ है। 1999-2000 के अन्त तक सार्वजनिक क्षेत्र के लगभग 232 ऐसे औद्योगिक उपक्रम थे जिनमें लगभग 3,03,400 करोड़ रूपये की पूँजी लगी हुई थी। द्वितीय योजना से ही औद्योगिक एवं खनिज विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विगत 55 वर्षो में इन क्षेत्रों के विकास पर लगभग 1,80,000 करोड रूपये व्यय किये जा चुके है। परिणामस्वरूप 1993-94=100 के आधार पर औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक 1950-51 में 7.9 से बढ़कर 1960-61 में 15.6 तथा 2004-05 में 199.4 होने का अनुमान है। इस प्रकार 2004-05 में औद्योगिक उत्पादन 1951 के मुकाबले लगभग 25 गुना था। 2003-04 में औद्योगिक विकास की दर 6.7% रहने का अनुमान है। खनिजों का उत्पादन भी निरन्तर बढ़ रहा हैं जहाँ 1950-51 में खजिन उत्पादकों का कुल मूल्य 89 करोड़ रूपये था वह बढ़कर 2004-05 में 32000 करोड़ रूपये होने का अनुमान है।

5. **सिंचाई एवं विद्युत शक्ति विकास**

कृषि एवं औद्योगिक विकास के इन दोनों आधार स्तम्भों का नियोजनकाल में निरन्तर विकास हुआ है। पिछले 56 वर्षो में सिंचाई एवं विद्युत साधनों के विकास पर लगभग 3,65,000 करोड़ रूपये व्यय किये जा चुके है। जिसके परिणामस्वरूप जहाँ 1950-51 में कुल सिंचित क्षेत्र 208 लाख हैक्टेयर था, वह 1984-85 में 630 लाख हेक्टेयर तथा 2004 में 930 लाख हेक्टेयर होने का अनुमान है। नियोजनकाल में बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं में भॉखरा नॉगल दामोदर, घाटी, हीराकुण्ड, भॉखडा, चम्बल, नागार्जुन सागर, हिन्द, सेरावती परियोजना तथा काशी योजनाओं के नाम उल्लेखनीय है। विद्युत उत्पादन में पिछले 54-55 वर्षो में 53 गुना वृद्धि हुई है। जहाँ 1950-51 में केवल 23 लाख किलोवाट विद्युत उत्पादन क्षमता थी, जो 1984-85 में बढ़कर 460 लाख किलोवाट तथा 2004-05 में 1380 लाख किलोवाट होने का अनुमान है।

विद्युतीकृत बस्तियों की संख्या 1950-51 में 3671 से बढ़कर 1984-85 में 3.5 लाख तथा 2004-05 में 6.10 लाख हो गई।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में विद्युत शक्ति एवं सिंचाई क्षमता का विकास

विवरण	इकाई	1950-51	1960-61	1984-85	2004-05 (संभावित)
सिंचित क्षेत्र	लाख हैक्टेयर	208	283	630	930
विद्युत उत्पादन क्षमता	लाख किलोवाट	23	56	460	1380
विद्युतीकृत बस्तियाँ	संख्या	3671	25000	350000	610000

6. **परिवहन एवं संचार सुविधाओं का विकास**

नियोजनकाल के गत 56 वर्षो में देश में परिवहन साधनों एव संचार सुविधाओं का विस्तार हुआ है। स्ड़कों का विस्तार एवं रेल्वे का आधुनिकीकरण हुआ है। प्रथम योजना में वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। अनेक राज्यों में सड़क परिवहन का भी राष्ट्रीकरण किया गया है। बैंगलोर व कानपुर में वायुयान बनाने के कारखाने खोले गये है तथा विशाखापट्टनम व कोचीन में सामुद्रिक जहाज बनाने के शिपयार्ड कारखाने कार्यरत है। चितरंजन व वाराणसी में रेल ईंजन कारखाने, पैराम्बूर में रेल वैगन कारखाना आदि रेल विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ है। राष्ट्रीय राजमार्गो की लम्बाई 1950-51 में 19.8 हजार कि.मी. थी, जो 2000-01 में बढ़कर 52 हजार कि.मी. हो गई। सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय के साथ भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण उस राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना पर काम कर रहा है जिसके अन्तर्गत स्वर्णिम चतुर्भुज (फेज-I) और फेज-II आते हैं। जिसके तहत 54,000 करोड़ रूपये की लागत से करीब 13,150 कि.मी. विश्व स्तरीय राजमार्ग का विकास किया जाना शामिल है। इसके अलावा गलियारा फेज-III क में 4015 कि.मी. लम्बी 22,000 करोड़ रू. की अनुमानित लागत पर स्वीकृत, वर्ष 5 में बनाओं, चलाओ एवं हस्तांतरित करो (BOT) योजना के आधार पर 4,000 कि.मी. से अधिक काम लेने वाले राजमार्ग हैं। यह परियोजना दिसम्बर 2008 तक पूर्ण होने की संभावना है। रेलमार्गो की लम्बाई 1950-51 में 54 हजार कि.मी. थी जो बढ़कर 2004-05 में 63.5 हजार कि.मी. हो गई जिसमें से लगभग 28% नेटवर्क विद्युतीकृत था। विश्व के लगभग 35 राष्ट्रों में भारत मे वायुयान जाते हैं तथा 500 सामुद्रिक जहाज है। भारत में मार्च 2005 के अन्त में कुल टेलीफोन (बेसिक एवं मोबाइल) कनेक्शनों की संख्या 14 करोड थी। चीन, अमेरिका, जापान तथा जर्मनी के बाद भारत विश्व का पाँचवा बड़ा टेलीफोन नेटवर्क बन गया है। भारत में परिवहन एवं संचार क्षेत्र में प्रगति निम्न तालिका से स्पष्ट है।

परिवहन एंव संचार क्षेत्र में प्रगति

विवरण	इकाई	1950-51	1984-85	2004-05 (संभावित)
रेलमार्गो की लम्बाई	हज़ार कि.मी.	54	61.85	63.5
रेलों की माल ढोने की क्षमता	करोड टन	9.3	26.5	58.0
जहाजरानी क्षमता	लाख जीआरटी	3.9	65	75.0
सतहदार सड़के	लाख कि.मी.	1.56	8.3	22.5
डाकघर	हजार संख्या	36	105	160
तारघर	संख्या	8205	31000	38500

7. **विज्ञान एवं तकनीकी विकास**

योजनाकाल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि देश में आधुनिक औद्योगिक ढांच के लिए विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में हम न केवल आत्म निर्भर हुये है बल्कि निर्यात करने की स्थिति में है। भारत आज विश्व का तीसरा सबसे बड़ा राष्ट्र है, जहाँ विज्ञान एवं तकनीकी प्रोद्योगिकी से प्रशिक्षित मानव शक्ति एवं विशेषज्ञ उपलब्ध हैं। जहाँ कुशल विशेषज्ञों एवं प्रबन्धकीय संवर्गो का विकास हुआ है।

8. **सामाजिक सेवाओं का विकास एवं विस्तार**

सामाजिक सेवा के अन्तर्गत शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य सेवाओं, परिवार नियोजन, पेयजल, विद्युत, आवास व्यवस्था आदि को सम्मिलित किया जाता है। भारत में नियोजनकाल के अन्तर्गत इन सेवाओं पर 55 वर्षो में काफी राशि व्यय की जा चुकी है। भारत में शिक्षा का विस्तार हुआ है। विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालयों तक तकनीकी संस्थानों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई है। जिसके परिणामस्वरूप साक्षरता का प्रतिशत 1951 में 16.6% से बढ़कर 2001 की जनगणना के अनुसार 65.4% हो गई है। संविधान के 86वें संशोधन के अनुसार 6-14 वर्ष के आयु समूह वाले सभी बच्चों के लिये निशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में संख्यात्मक विस्तार के साथ-साथ गुणात्मक सुधार पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। योजनाबद्ध विकास के दौरान चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का भी विस्तार हुआ है। जहाँ 1951 में हॉस्पिटलों एवं डिस्पेन्सरियों की संख्या लगभग 9,110 थी वह बढ़कर 2004-05 में 54,000 के लगभग हो गई है। इसके अतिरिक्त सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा उपकेन्द्रों की संख्या भी 725 से बढ़ाकर 2 लाख हो गई है। इनमें कार्यरत डाक्टरों, नर्सो व कर्मियों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। इन स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के कारण मलेरिया, चेचक, हैजा जैसी महामारियों पर नियंत्रण पाया जा चुका है तथा देश में जन्म दर व मृत्यु दर में कमी आयी है। भारत में 1951 में औसत जीवन आयु जो 32 वर्ष थी वह बढ़कर 2004-05 में 64-65 वर्ष हो गई है। इनके अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों, आवास ग्रहों तथा जल प्रदाय योजनाओं आदि का भी विकास हुआ है।

9. **रोजगार अवसरों में वृद्धि**

योजनाकाल में मानवीय शक्ति का सदुपयोग करने हेतु विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 24.5 करोड़ अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार दिया गया है। प्रथम योजना में 75 लाख को, दूसरी में 92 लाख को तथा तीसरी योजना में 145 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया गया, इसके बाद भी विभिन्न योजनाओं में लोगों को निरन्तर रूप से रोजगार मुहैया कराने का प्रयास किया गया। आठवीं योजना में प्रतिवर्ष 80-90 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार देने का लक्ष्य था ताकि 2000 तक 'सबको रोजगार' का लक्ष्य पूरा किया जा सके, पर यह लक्ष्य पूरा नहीं हुआ। दसवीं पंचवर्षीय योजना में भी 5 करोड़ अतिरिक्त लोगों को रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया।

10. **पूँजी निर्माण एवं बचत दरों में वृद्धि**

योजनाकाल के पिछले 56 वर्षो में सकल घरेलू पूँजी विनियोग, पूँजी निर्माण एवं सकल घरेलू बचत दरों में वृद्धि हुई है। 1950-51 में जहाँ सकल घरेलू बचत दर 8.9% तथा सकल घरेलू पूँजी निर्माण दर 8.7% थी, 1990-91 में क्रमश: 23.1% तथा 26.3% हो गई किन्तु

अर्थव्यवस्था में तीव्र विकास के कारण 1995-96 में यह क्रमश: 25.1% तथा 26.9% हो गई। परंतु 1998-99 में सकल घरेलू पूँजी निर्माण दर घटकर 27.7% तथा बचत दर 21.7% होने का अनुमान है। 2003-04 में यह दर क्रमश: 28.1% तथा 26.3% रहने का अनुमान था। दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त में 2006-07 में बढ़कर 26.84% तथा पूँजी निर्माण दर 28% करने का लक्ष्य है। साथ ही पूँजी विनियोग भी 1950-51 में 866 करोड़ रूपये वार्षिक था उससे बढ़कर 2003-04 में 7,26,864 करोड़ रूपये वार्षिक हो गया।

11. **जीवन स्तर में सुधार**

नियोजनकाल में देश में विकास के फलस्वरूप आय, उत्पादन, रोजगार तथा उपभोग सभी क्षेत्रों में सुधार हुआ है। लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। आमजन के रहनसहन व उपभोग स्तर में संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही दृष्टियों से सुधार हुआ है।

7.3 भारत में आर्थिक नियोजन की असफलतायें / विफलतायें (Failures of Economic Planning in India)

जैसा कि पूर्व में विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भारत में नियोजन के पिछले 55-56 वर्षो में नियोजित विकास पद्धति द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ एवं प्रगतिशील बनाया गया है। परन्तु साथ ही योजनाओं के इस दीर्घावधि के दूसरे पहले पर विचार किया जाये तो कहा जा सकता है कि योजनाओं की अनेक विफलतायें भी रही है। देश में 26.1% जनसंख्या अभी भी गरीबी की रेखा की नीचे जीवन यापन करने को मजबूर है। बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, निराशा तथा असंतोष आदि विफलता भी इस नियोजन की ही देन कही जा सकती है, इन आर्थिक बुराईयों को नियोजन के माध्यम से आज तक नहीं मिटाया जा सका है।

संक्षेप में नियोजन की विफलतायें इस प्रकार है-

1. गरीबी

भारत में लगभग साढे पाँच दशक की नियोजन अवधि के बावजूद भी गरीबी को जड़-मूल से नष्ट नहीं किया जा सका है। देश में आज भी लगभग 26% लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे है। 2004-05 के अनुमान के अनुसार गरीबी का प्रतिशत 24.1% है। यद्यपि गरीबी का अनुपात तो घटा है पर संख्या में कोई कमी नहीं आई है। भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी हटाने के नारे व प्रयासों के बावजूद इस आकार व स्तर पर गरीबी का बने रहना आर्थिक नियोजन की घोर असफलता की ओर संकेत करता है।

2. **लक्ष्यों व उपलब्धियों में भारी अन्तर**

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों व उपलब्धियों में भारी अन्तराल रहा। जहाँ तीसरी योजना में आर्थिक विकास दर का लक्ष्य 5.6% था परन्तु वास्तविक विकास दर 2.72% ही रही। इसी प्रकार चतुर्थ योजना में लक्ष्य 5.7% तथा उपलब्धि 2.05% दर रही। छठीं योजना में विकास दर का लक्ष्य 5.2% रखा गया। परन्तु 1982-83 में 2% ही थी। औद्योगिक उत्पादन में 8 से 10% वृद्धि का लक्ष्य था, जहाँ 1982-83 में वास्तविक वृद्धि दर 3.9% रही।

नौवीं योजना में भी 6.5% विकास दर के लक्ष्य के मुकाबले वास्तविक दर 5.35% ही रही। आयातों पर निर्भरता आज भी बनी हुई है, जबकि आत्मनिर्भरता की कल्पना की गई थी।

3. **बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या**

भारत में बेरोजगारी की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। प्रत्येक योजना के अन्त में बेरोजगारों की संख्या घटने के बजाय बढ़ती जा रही है। जहाँ 1950-51 में बेरोजगारों की संख्या केवल 40 लाख थी, वह 2004-05 में बढ़कर 7.5 करोड़ होने का अनुमान है। इनमें लगभग 3 करोड़ शिक्षित बेरोजगार थे। दीर्घकालीन योजना समिति ने भी 5 करोड़ लोगों के बेकार होने की सम्भावना व्यक्त की थी। जहाँ रूस ने अपनी पहली योजना के 5 वर्षा में ही बेकारी का उन्मूलन कर दिया था वहाँ भारत में यह समस्या 56 वर्षो के बाद भी अधिक व्यापार एवं जटिल बनी हुई है। यहाँ पर अर्द्ध-बेरोजगारी की भी विकट समस्या है जो कृषि क्षेत्र में बहुत अधिक व्याप्त है। भारत सरकार द्वारा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में विभिन्न रोजगारपरक कार्यक्रम लागू किये गये परन्तु ये योजनायें रोजगार के क्षेत्र में सार्थक रूप से सफल सिद्ध नहीं हो पाई हैं।

4. **मूल्य स्तर में वृद्धि**

आर्थिक जीवन में स्थिरता और आर्थिक विकास दोनों ही दृष्टियों से सामान्य कीमत स्तर में स्थिरता का विशेष महत्व है। परन्तु दुर्भाग्य से कीमतों में स्थिरता के क्षेत्र में भारतीय नियोजन असफल रहा है। यहाँ पर उपयुक्त मूल्य नीति का भी अभाव रहा है। पहली बार तृतीय योजना में मूल्य नियंत्रण ऐसी नीति घोषित की गई जो उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं की दृष्टि से विकासोन्मुख हो। परन्तु इस नीति के कुशल कार्यान्वयन के अभाव, अनिवार्य वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि की धीमी गति तथा बड़े पैमाने पर हीनार्थ प्रबन्धन आदि के कारण वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्यों में भारी वृद्धि हुई। 1950-51 की तुलना में 1970-71 में थोक मूल्य लगभग दुगुने थे तथा 1980-81 में लगभग छः गुणा हो गये। आम जन का जीना दूभर एवं कष्टमयी हो गया। वर्ष 1991-92 में मुद्रा की दर 13.6% हो गई। 1994-95 में 10.2% जो 1996-97 में 5 से 6%० रही। 1999-2000 में यह घटकर 3.3% रह गई। किन्तु पुनः 2004-05 में मुद्रा स्फीति की दर 5.4% पहुँच गई। वर्तमान में भी पिछले एक वर्ष से मंहगाई में वृद्धि का दौर निरन्तर रूप से जारी है।

5. **आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण**

पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक समानता व आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य था परन्तु वास्तविकता यह है कि आर्थिक विषमता में वृद्धि हुई है जिससे गरीब और अमीर की खाई अधिक गहरी हुई है। आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण एवं हस्तान्तरण कतिपय पूँजीपतियों एवं सत्ताधारियों के हाथों में हुआ हैं। पुराने जागीरदारों एवं जमीदारों के बजाय नये पूँजीवादी सामन्तों का उदय हुआ हैं। डी. के. एल. राज, डॉ. आर.के. हजारी, दत्त समिति व एकाधिकारी आयोग आदि सबके प्रतिवेदन इस मत की पुष्टि करते है कि आर्थिक विषमता एवं क्षेत्रीय असमानतायें बढ़ी है। जहाँ ओर पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात व तमिलनाडू गोवा तथा दिल्ली विकास की दौड़ में बहुत आगे है वहीं दूसरी ओर बिहार, उडीसा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, असम आदि समाज भी विकसित क्षेत्र की तुलना में काफी पीछे है।

6. **विदेशी सहायता व ऋण भार में वृद्धि**

नियोजन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था विदेशी सहायता पर अत्यधिक निर्भर रही है जिससे विदेशी विनिमय संकट की समस्या उत्पन्न हुई है। 1966 में रूपये का 36.5% अवमूल्यन करना पड़ा है। 1981-82 में आई.एम.एफ. से ऋण लेना पड़ा तथा 1 जुलाई व 3 जुलाई, 1991 को दो दिन के अन्तराल से दो चरणों में रूपये का 18 से 20% अवमूल्यन करना पड़ा। प्रथम योजना में जहाँ 201.7 करोड़ रूपये की विदेशी सहायता प्राप्त की गई वह बढ़कर 31 मार्च 2004 को 2,00,302.1 करोड़ रूपये हो गई। इसमें निरन्तर वृद्धि होती रही है। 1970-71 तक भारत पर विदेशी कर्ज का कुल भार केवल 6485 करोड़ रूपये तुल्य था वह 1980-81 में बढ़कर 11,316 करोड़ रूपये हो गया तथा 2004-05 में बढ़कर 5,48,100 करोड़ रूपये तुल्य विदेशी कर्ज भार हो गया। इससे निरन्तर रूप से ऋण सेवा भार में भी वृद्धि हो रही है।

7. **व्यापार घाटे में वृद्धि**

योजनाकाल में विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई है परन्तु व्यापार घाटा भी निरन्तर बढ़ रहा है। जहाँ 1950-51 में विदेशी व्यापार घाटा मात्र 50 करोड़ रूपये था, वही 2005-06 में 39.63 अरब डालर हो गया है। इसका मुख्य कारण निर्यातों में आयातों की तुलना में धीमी गति से वृद्धि होना है। विदेशी व्यापार घाटे के कारण भारत का भुगतान संतुलन भी प्रतिकूल रहता है जिससे विनिमय संकट की समस्या बनी हुई है।

8. **समानान्तर अर्थव्यवस्था**

भारत में समानान्तर अर्थव्यवस्था अर्थात् काले धन की अर्थव्यवस्था भी काम कर रही है। एक अनुमान के अनुसार देश में 1,49,300 करोड़ रूपये से अधिक का कालाधन विद्यमान है। इस काले धन की अर्थव्यवस्था से देश में भ्रष्टाचार, बेईमानी, विलासिता, तस्करी व अनुत्पादक कार्यो में धन का दुरूपयोग बढ़ा है तथा सरकारी नीतियों की सफलता में बाधा उत्पन्न हुई है।

9. **वृहद् योजनाओं के अन्तर्गत लघु योजनाओं की उपेक्षा**

अर्थव्यवस्था के तीव्र एवं संतुलित विकास हेतु वृहद् एवं लघु दोनों प्रकार की योजना का विकास जरूरी है। परन्तु भारतीय नियोजकों ने बड़ी-बड़ी योजनाओं को कार्यान्वित करने में लघु योजनाओं की उपेक्षा की है। जिससे बड़ी योजनाओं में अधिक विनियोग करने पर दीर्घकाल में लाभ मिलने से अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति उत्पन्न हुई तथा कम लोगों को लाभ मिलने से क्षेत्रीय विषमतायें भी बढ़ी है। आधारभूत उद्योगों के विकास की ओर ध्यान ज्यादा केन्द्रित किये जाने से उपभोग उद्योगों की अवहेलना की गई जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में वृद्धि हुई तथा जीवन स्तर में भी अपेक्षानुकूल सुधार नही हो पाया है।

10. **आत्मनिर्भरता की कल्पना साकार न होना**

नियोजन के 56 वर्षो के बाद अब आकर भारत खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर बन पाया हैं। यद्यपि कई पूँजीगत साज-सामग्री में आज भी विदेशी तकनीक पर निर्भर है। समाजवाद की सुखद कल्पना एक कोरी कल्पना बनकर रह गई हे। देश में बढ़ती गरीबी, बेकारी, आर्थिक विषमता आदि समाजवाद के विपरीत स्थिति को बयां करती है। पिछले डेढ दशक से समाजवाद का रास्ता छोडकर पुन: पूँजीवाद की तरफ बढ़ रहे है।

11. **केन्द्र व राज्यों में सहयोग का अभाव**

भारतीय नियोजन पद्धति में यह भी एक अवरोधक तत्व रहा है। केन्द्र व राज्य में अलग-अलग राजनीतिक विचारधारा वाले दलों की सरकारों को सत्ता में रहने से कई बार योजनाबद्ध विकास के लक्ष्यों को पूरा करने में अड़चने पैदा हुई है। भूमि सुधार कार्यक्रमों को लागू करने, योजनाओं के लिए अतिरिक्त वित्तीय साधन जुटाने में तथा विकास कार्यक्रमों को लागू करने में राज्यों व केन्द्र का आपस में पूरा सहयोग नहीं मिल पाने से लक्ष्यों को सही समय पर पूरा करने में बाधायें आती रही है।

12. **गिरते मानवीय मूल्य**

भारत में नियोजन काल के दौरान मानवीय मूल्यों में भारी गिरावट आना भी नियोजन की बड़ी असफलता है। मानव में सत्यता, ईमानदारी, प्रेम, अहिंसा एवं बन्धुत्व की भावना के गुण लुप्त होते जा रहे हैं तथा व्यक्ति में चोरी, डकैती, हत्या, बेईमानी, रिश्वतखोरी, घूँसखोरी, धोखेबाजी आदि अवगुणों जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही है। राजनैतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रीय चरित्र की भावना का अभाव पाया जाता है।

13. **अन्य**

उपर्युक्त असफलताओं के अलावा जैसे वित्तीय साधनों के संग्रहण में, सहकारी आन्दोलन में गुणात्मक विकास में, उपभोग उद्योगों के विकास की उपेक्षा, शीघ्र फलदायी योजनाओं पर कम ध्यान तथा परिवार कल्याण कार्यक्रम का पूर्ण रूपेण सफल न हो पाना आदि भी कई ऐसे क्षेत्र रहे है, जिनमें भी योजनाओं की असफलता झलकती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हमारे देश में योजनाबद्ध विकास से जहाँ विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति के नये आयाम स्थापित हुये हैं वहीं दूसरी ओर आर्थिक नियोजन पूरी तरह अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाया है। अत: इसके और अधिक प्रभावी नियोजन की आवश्यकता है ताकि भविष्य में नियोजन के माध्यम से अर्थव्यवस्था में विकास को तीव्र गति दी जा सके।

7.4 भावी नियोजन हेतु सुझाव (Suggestion for Future Planning)

यद्यपि आर्थिक नियोजन को समस्त आर्थिक समस्याओं के निराकरण की रामबाण औषधि तो नहीं मानी जा सकता है परन्तु इसके माध्यम से विभिन्न आर्थिक समस्याओं एवं संकटों को कम करके आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। भारत में आर्थिक नियोजन पद्धति में अनेक त्रुटियां रहीं जिसके परिणामस्वरूप इसकी असफलतायें भी रही। अत: भारत में भावी नियोजन की सफलता हेतु निम्न सुझाव दिये जा सकते है -

1. **शीघ्र फलदायी श्रम प्रधान योजनाओं पर विशेष बल देना**

   देश में बेकारी एवं निर्धनता के निराकरण हेतु इस प्रकार की योजनाओं पर अधिक ध्यान दिये जाने की जरूरत है, जो शीघ्र फलप्रद हों तथा मूल्यों के नियंत्रण में भी सहायक सिद्ध हो सकें। इस हेतु लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास जरूरी है ताकि देश में आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त हो सकें।

2. **कृषि क्षेत्र के विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए**

हमारा देश कृषि प्रधान देश है। हमें अपनी आर्थिक नीतियों में इस क्षेत्र के विकास को प्रमुखता से प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए। कृषि क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि हेतु हरित क्रांति को नवीनतम रूप में कुशलता एवं सतर्कता से लागू किया जाना चाहिए। बड़ी योजनाओं के बजाय लघु व मध्यम योजनाओं को प्राथमिकता दी जाये तथा भू-गर्भ जल का उपयोग बढ़ाया जाये।

3. **आन्तरिक वित्तीय संसाधनों में वृद्धि करना**
   देश की अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भरता का रूप दिये जाने हेतु आन्तरिक संसाधनों को बढ़ाना चाहिए तथा इन्हें गतिमान बनाया जाना चाहिए। विभिन्न योजनाओं में अब विदेशी साधनों पर निर्भरता में कमी अच्छे संकेत है।
4. **मूल्यों पर नियंत्रण**
   देश में मूल्यों में स्थिरता के साथ विकास नीति लागू की जानी चाहिए। इस हेतु मूल्य नीति, आयात नीति तथा उत्पादन नीति में पारस्परिक तालमेल आवश्यक है। हीनार्थ प्रबन्धन व्यवस्था में भी सतर्कता एवं सीमितता जरूरी है।
5. **जनसंख्या नियंत्रण**
   हमारी योजनाओं की विफलता का एक मुख्य कारण जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि है। पिछले तीन दशकों में जनसंख्या में तीव्र गति से (2.5% वार्षिक) वृद्धि हुई है। जहाँ 1951 में जनसंख्या 36.5 करोड़ थी, वह 2001 में बढ़कर 102.7 करोड़ तथा जब लगभग 109.6 करोड़ होने का अनुमान हैं। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या की बाढ़ से आर्थिक प्रगति घट जाती हैं। अत: प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, रोजगार व जीवन स्तर में वृद्धि हेतु जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी नियंत्रण होना चाहिए।
6. आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण व विलासिता पूर्ण उपभोग पर रोक लगानी चाहिए ताकि देश में समाजवाद का मार्ग प्रशस्त हो सके तथा देश में विदेशी विनिमय की बचत देश के आर्थिक विकास में सहायक हो सकें।
7. निजी क्षेत्र को आर्थिक नीतियों में स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए ताकि निजी उद्यमियों व पूँजीपतियों का राष्ट्र की आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय एवं रचनात्मक सहयोग मिल सके। यद्यपि पिछले कुछ समय से निजी क्षेत्र को स्वतंत्रता प्रदान किये जाने का कदम इस संबंध में महत्वपूर्ण है।
8. सामाजिक सेवा क्षेत्रों का विकास तथा उपभोग प्रधान उद्योगों का विकास एवं विस्तार किया जाना चाहिए ताकि आम मध्यवर्गीय जनता को उनकी आवश्यकता की वस्तुयें व सेवायें सही समय पर उचित मूल्यों पर उपलब्ध हो सकें तथा जन साधारण में आर्थिक नियोजन के प्रति निष्ठा एवं सहयोग की भावना जागृत हो सकें।
9. भ्रष्टाचार पर रोक तथा प्रशासनिक कुशलता में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि विकास कार्यक्रमों में अनावश्यक विलम्ब से बचा जा सके। इस हेतु राष्ट्र चरित्र की भावना जागृत की जानी चाहिए तथा प्रशासन में कुशलता लानी चाहिए।
10. केन्द्र तथा राज्य सरकारों में आपसी समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। अलग-अलग राजनैतिक दलों के सत्ताधारी दलों को आपसी विरोधी विचारधारा से ऊपर उठकर राष्ट्र के विकास में एक दूसरे को रचनात्मक सहयोग प्रदान करना चाहिए।

7.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में 56 वर्षो के नियोजनकाल में उपलब्धियों एवं विफलताओं का मिश्रित संयोग रहा है। यह मूल्यांकन इस ओर ध्यान आकृष्ट करता है कि योजनाओं के कार्यान्वयन में अधिक सतर्कता बरतने व सुधार की आवश्यकता है। केवल तथा कथित नारे व राजनैतिक उद्देश्यों से लिप्त आर्थिक नीतियों से आर्थिक विकास सम्भव नहीं, बल्कि योजनाओं का विवेकपूर्ण निर्माण, कुशल कार्यान्वयन, समन्वय तथा दूरदर्शिता की आवश्यकता है। प्रदर्शनात्मक व्यय तथा अनुत्पादक व्यय पर रोक तथा विकास कार्यो पर विवेकपूर्ण व्यय उज्जवल भविष्य का आधार है। राजनैतिक व प्रशासनिक कुशलता में सुधार हेतु प्रयत्नों की आवश्यकता है। यदि इन सुझावों को दृष्टिगत रखा जाये तो भविष्य में हमारा देश समृद्धि एवं मजबूती के साथ आगे बढ़ सकता है एवं आर्थिक नियोजन आज के इस बदलते वैश्वीकरण के युग में भी सार्थक एवं सफल सिद्ध हो सकता है।

7.6 शब्दावली

- उपभोग (Consumption) - संतुष्टि प्राप्त करने हेतु उपभोक्ताओं द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं के उपयोग की प्रक्रिया।
- मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) - वह अर्थव्यवस्था जिसमें निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र का सह-अस्तित्व पाया जाता है।
- आधारभूत पूँजीगत उद्योग (Basic Capital Sector) - ऐसे वृहत्त उद्योग जिनमें दीर्घकालीन एवं भारी पूँजी विनियोजन किया जाता है तथा जो आगे विकास का मार्ग प्रशस्त करते है।
- सामाजिक सेवा क्षेत्र (Social Services Sector) - इस क्षेत्र में शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, पेयजल, ऊर्जा एवं विद्युत शक्ति आदि क्षेत्र सम्मिलित है।
- अवमूल्यन (Devaluation) - किसी मुद्रा का विनिमय मूल्य अन्य विदेशी मुद्राओं की तुलना में जानबूझकर कम कर दिया जाना।
- समान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy) - इसे काले धन की अर्थव्यवस्था भी कहते है। जिस धन का हिसाब किताब कर अधिकारियों से छिपाकर रखा जाता हे, उसे काला धन कहते है व इस प्रकार के धन की अर्थव्यवस्था समानान्तर अर्थव्यवस्था कहलाती है।
- अर्द्ध-बेरोजगारी/अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment) - जिसमें व्यक्ति स्पष्ट रूप से बेरोजगार प्रतीत नहीं होते है। वे काम पर तो लगे हुए होते है किन्तु उस काम में उनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।
- हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing) - जब सरकार का बजट घाटे का होता है अर्थात् आय कम और व्यय अधिक होता है, तो इस व्यय के इस आधिक्य की पूर्ति केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर या अतिरिक्त नोट निर्गमित करके की जाती है तो यह घाटे की वित्त व्यवस्था या हीनार्थ प्रबन्धन कहलाता है।

7.7 स्वपरख प्रश्न

1. भारत में आर्थिक नियोजन की चार उपलब्धियाँ बताइये।
2. दसवीं पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन को संक्षेप में बताईये।
3. भारतीय नियोजन की विफलताओं को संक्षेप में बताईये।
4. भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ के आधार बताइये।
5. भारतीय आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों व विफलताओं की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए।
6. भारतीय नियोजन की सफलताओं/उपलब्धियों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए तथा भावी नियोजन की सफलता हेतु सुझाव दीजिए।

इकाई 8

11वीं पंचवर्षीय योजना : उद्देश्य एवं लक्ष्य

(XIth Five Year Plan: Objectives and Targets)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 11वीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य

8.3 11वीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य

8.4 विकास हेतु विभिन्न वैकल्पिक परिदृश्य

8.5 निवेश एवं बचत आवश्यकताओं सम्बन्धी तथ्य

8.6 11वीं पंचवर्षीय योजना में बजटीय संसाधन

8.7 सारांश

8.8 स्वपरख प्रश्न

8.9 संदर्भ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगें कि -

1. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य दृष्टिकोण जान पायेंगे।
2. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के बारे में जान सकें।
3. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की विकास सम्बन्धी रणनीति से अवगत हो सकें।
4. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र के तथ्यों की समीक्षात्मक विवेचना कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

भारत में दसवीं पंचवर्षीय योजना 31 मार्च 2007 को पूरी हो चुकी है तथा 11वीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 2007 से 31 मार्च, 2012 तक की अवधि के लिये निर्धारित की गई है। इस योजना हेतु योजना आयोग द्वारा तैयार किए गये दृष्टिकोण पत्र (Approach Paper) को राष्ट्रीय विकास परिषद (NDC) की 9 दिसम्बर 2006 को प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में सम्पन्न बैठक में मंजूरी मिल गई है। इस योजना के दृष्टिकोण पत्र का शीर्षक 'तीव्र एवं अधिक समावेशी विकास की ओर' रखा गया है। जिसके अन्तर्गत लक्ष्य केवल विकास की ऊँचाइयों को छूना ही नहीं है बल्कि साथ ही साथ समग्र विकास करना है तथा देश के सभी भागों का संतुलित एवं एक समान विकास करना भी है। इस योजनान्तर्गत आर्थिक विकास की दर 9 प्रतिशत प्रस्तावित की गई है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2005-06 में देश में अधिक विकास की दर 8.4 प्रतिशत रहने तथा 10वी पंचवर्षीय योजना के अंतिम दो वर्षो में आर्थिक विकास की दर

औसतन 8 प्रतिशत के लगभग रहने से आगामी 11वीं योजना हेतु आर्थिक विकास की दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत निर्धारित किया जाना उचित भी प्रतीत होता है। वर्ष 2011-12 में इस विकास दर को बढ़ाकर 10 प्रतिशत करने का लक्ष्य है ताकि भारत को तेजी से विकसित हो रहे देशों की श्रेणी में लाया जा सके।

8.2 11वीं योजना के मुख्य उद्देश्य: (Main Objectives of 11th Plan)

11वीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में 10वीं योजना की अवधि में औसतन 8 प्रतिशत विकास दर को अब तक योजनाओं में सबसे अधिक बताते हुए कहा गया है कि यह विकास दर हमारी अर्थ व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सुदृढ़ क्षमता को प्रतिबिम्बित करती है, वहीं यह भी सत्य है कि हमारे देश में जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा बुनियादी सुविधाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल तथा साफ सफाई आदि से वंचित है। गरीबी रेखा के नीचे की आबादी का अंश घटा है परन्तु इसकी गति बहुत धीमी रही है। अत: यहाँ 11वीं पंचवर्षीय योजना गरीबी को कम करने के संदर्भ में एक तीव्र एवं समावेशी आर्थिक विकास की अवधारणा के साथ लागू करने की पहल है। इस हेतु देश में जनसाधारण की आय में वृद्धि तथा जीवन स्तर में सुधार करने की स्पष्ट रणनीति है। इस योजना में निम्न प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किये गये है :-

1. जी.डी.पी. विकास की दर 9 प्रतिशत करना तथा 2011-12 तक बढ़ाकर 10 प्रतिशत तक पहुँचाना।
2. जन साधारण की आय में वृद्धि तथा जीवन स्तर में सुधार करना।
3. गरीब जनता को बुनियादी सुविधाएँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल आदि उपलब्ध करवाना।
4. कृषि विकास दर को बढ़ाना।
5. कुशल मानव संसाधनों का विकास करना।
6. पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना।
7. शासन एवं न्याय व्यवस्था में सुधार करना।
8. सुरक्षित बालपन का अधिकार प्रदान करना।

8.3 11वीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य : (Main Target of 11th Plan)

इस योजना के मुख्य लक्ष्य निम्नानुसार है :-

1. आर्थिक विकास की वृद्धि दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत रखा गया है जिसे अन्तत: वर्ष 2011-12 में बढ़ाकर 10 प्रतिशत किया जाना तय है।
2. तीव्र विकास के साथ-साथ समावेशी विकास की दो तरफा रणनीति अपनाना।
3. निर्धनता अनुपात में 2012 तक 15 प्रतिशत की कमी लाना।

4. ग्यारहवीं योजना में होने वाली श्रम बल वृद्धि को उच्च गुणवत्ता युक्त रोजगार मुहैया करवाना।
5. 2001 से 2011 तक के दशक में जनसंख्या संवृद्धि की दशकीय दर को घटाकर 16.2 प्रतिशत के स्तर पर लाना।
6. साक्षरता दर को योजनावधि के अन्त तक बढ़ाकर 7.5 प्रतिशत करना।
7. वर्ष 2012 तक देश के सभी गाँवों में स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
8. ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति में सुधार करना व इस हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की भूमिका तथा इसमें निजी भागीदारी की सम्भावना पर विचार किया जाना।
9. वर्ष 2010 तक शत प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा तथा 2012 तक 85 प्रतिशत क्रियात्मक साक्षरता का स्तर हासिल करना।
10. इस योजना के दौरान सन् 2009 तक देश के सभी गाँवों एवं गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों में विद्युत संयोजन सुनिश्चित करना तथा वर्ष 2012 तक 24 घण्टे विद्युत आपूर्ति की व्यवस्था करना।

11वीं योजना के निगरानी योग्य सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य

आय एवं गरीबी :

1. वार्षिक 2016-17 तक प्रति व्यक्ति आय को दोगुना तक लाने के लिए सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वार्षिक संवृद्धि दर को 8 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत करना तथा इसे 10 प्रतिशत से 12 प्रतिशत के बीच बनाये रखना।
2. उच्च विकास की दर के लाभों को व्यापक स्तर पर लाने के लिए कृषि जीडीपी की वार्षिक संवृद्धि दर को 4 प्रतिशत तक बढ़ाना।
3. रोजगार के 7 करोड़ नए अवसर सृजित करना।
4. शिक्षित बेरोजगारी को 5 प्रतिशत से कम करना।
5. अकुशल श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी दर में 20 प्रतिशत तक वृद्धि करना।
6. खपत की अनुपात संख्या में 10 प्रतिशत अंकों तक की कमी लाना।

शिक्षा:

1. प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर विद्यालय छोड़कर घर बैठ जाने वाले बालकों की दर (ड्राप आउट रेट) को वर्ष 2003-04 में 52.2 प्रतिशत से घटाकर वर्ष 2011-12 तक 20 प्रतिशत के स्तर पर लाना।
2. प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षणिक ज्ञान प्राप्त करने के न्यूनतम मानक स्तरों को प्राप्त करना एवं गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा की प्रभावशीलता के मूल्यांकन हेतु नियमित रूप से जाँच करते रहना ।
3. 7 वर्ष से अधिक आयु वर्ग में साक्षरता दर को बढ़ाकर 85 प्रतिशत करना।
4. साक्षरता में लिंग अन्तराल (जेण्डर गैप) को 10 प्रतिशतांक तक नीचे लाना।

5. प्रत्येक आयु वर्ग में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों के अनुपात को वर्तमान में 10 प्रतिशत से बढ़ाकर ग्यारहवीं योजना के अन्त तक 15 प्रतिशत करना।

स्वास्थ्य:

1. शिशु मृत्यु दर को घटाकर 28 तथा मातृत्व मृत्यु दर को घटाकर प्रति एक हजार जीवित जन्म के स्तर तक लाना।
2. कुल प्रजन्नता दर को 2-1 तक नीचे लाना।
3. सन् 2009 तक सभी को स्वच्छ पेयजल मुहैया कराना तथा ग्यारहवीं योजना के अन्त तक यह सुनिश्चित करना कि इसमें कमी न आए।
4. 0-3 वर्ष आयु वर्ग के बालकों में कुपोषण को वर्तमान के स्तर से आधा करना।
5. 11वीं योजना के अन्त तक महिलाओं एवं लड़कियों की एनेमिया में 50 प्रतिशत की कमी लाना।

महिलाएं एवं बालिकाएं :

1. 0-6 आयु वर्ग में लिंगानुपात को वर्ष 2011-12 तक बढ़ाकर 935 तथा 2016-17 तक 950 करना।
2. यह सुनिश्चित करना कि सभी सरकारी योजनाओं के कुल प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभार्थियों में महिलाओं एवं बालिकाओं का हिस्सा कम-से-कम 33 प्रतिशत हो।
3. यह सुनिश्चित करना कि काम करने की किसी बाध्यता के बिना सभी बच्चों का बालपन सुरक्षित रहे।

आधारित सरंचना:

1. सभी गाँवों एवं निर्धनता रेखा के नीचे के सभी परिवारों में सन् 2009 तक विद्युत संयोजन सुनिश्चित करना तथा ग्यारहवीं योजना के अन्त तक इनमें 24 घण्टे विद्युत आपूर्ति प्रवाहित करना।
2. सन् 2009 तक 1000 जनसंख्या वाले सभी गाँवों (पर्वतीय एवं जनजातीय क्षेत्रों में 500 जनसंख्या) तक सभी मौसमों के लिये उपयुक्त पक्की सड़के सुनिश्चित करना तथा सन् 2015 तक सभी महत्वपूर्ण अधिवासों तक पक्की सड़कें बनवाना।
3. नवम्बर 2007 तक देश के सभी गाँवों तक टेलीफोन पहुँचाना तथा 2012 तक सभी गाँवों में ब्रॉड-बैण्ड सुविधा मुहैया कराना।
4. सन् 2012 तक सभी को घर बनाने के लिए भूमि उपलब्ध कराना तथा सन् 2016-17 तक सभी ग्रामीण निर्धनों को आवास मुहैया कराने के लिए आवास निर्माण की गति में तेजी लाना।

पर्यावरण:

1. वनों एवं पेड़ों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में 5 प्रतिशतांक की वृद्धि करना।
2. वर्ष 2011-12 तक देश के सभी बड़े शहरों में वायु गुणवत्ता के विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानक प्राप्त करना।
3. नदियों के जल को स्वच्छ बनाने के लिये समस्त शहरी तरल कचरे को उपचारित करना।

4. वर्ष 2016-17 तक ऊर्जा क्षमता को 20 प्रतिशत तक बढ़ाना।

8.4 विकास हेतु विभिन्न वैकल्पिक परिदृश्य - (Alternative Scenarios of Development for 11th Plan)

ग्यारहवीं योजना के लिए योजना आयोग ने विकास हेतु तीन वैकल्पिक परिदृश्य निर्धारित किये हैं जो निम्न प्रकार है:-

वैकल्पिक परिदृश्य: औसत वार्षिक विकास दर:(प्रतिशत में)

सकाल घरेलू उत्पाद की विकास दर	7.0%	8.0%	9.0%
कृषि क्षेत्र	3.2	3.7	4.1
उद्योग क्षेत्र	8.2	9.4	10.5
सेवा क्षेत्र	7.7	8.8	9.9
आयात	10.9	11.7	12.5
निर्यात	14.2	15.4	16.4

Source: Approach paper of XIth Five Year Plan, Planning commission, New Delhi.

उपर्युक्त वैकल्पिक परिदृश्य दर्शाते हैं कि यदि 9.0 प्रतिशत वार्षिक विकास दर का लक्ष्य निर्धारित किया जाता हैं, जो कि योजना आयोग की बैठक में अनुमोदित किया गया हैं तो कृषि क्षेत्र के लिये 4.1 प्रतिशत की औसत विकास दर का लक्ष्य होगा। वर्तमान में दसवीं योजना के अर्न्तगत प्राप्त कृषि विकास दर 2 प्रतिशत हैं उसे बढ़ाकर 4.1 प्रतिशत तक ले जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया हैं। इस हेतु कृषि क्षेत्र में अधिकाधिक निवेश बढ़ाने की महत्ती आवश्यकता जताई गई हैं और कृषि के क्षेत्र में अगले 5 वर्षो में कृषि विकास दर को दुगुना करने हेतु द्वितीय हरित कांति की आवश्यकता पर जोर दिया गया हैं। इस हेतु कृषकों को आसान त्रण की उपलब्धता, बागवानी तथा पुष्पोत्पादन के साथ कृषि का विविधीकरण, नई तकनीकी के विकास हेतु कृषि शोध पर विशेष बल, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के साथ-साथ समुचित जल प्रबंधन, पशुपालन तथा मतस्योत्पादन के विकास को सुनिश्चित करने से इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति संभव हो सकती हैं। उद्योग क्षेत्र में 10.5 प्रतिशत और सेवा क्षेत्र में 9.9 प्रतिशत विकास दर का लक्ष्य रखा गया है।

8.5 निवेश एवं बचत आवश्यकताओं सम्बन्धी तथ्य (Investment and Savings Requirements)

11वीं योजना में विभिन्न वैकल्पिक विकास दरों के लिये बचत निवेश दरों को प्रस्तावित किया गया है। यदि विकास दर 7 प्रतिशत से बढ़ाकर 9 प्रतिशत की जाती है तो कुल निवेश दर बढ़ाकर 29.1 प्रतिशत से 35.1 प्रतिशत करनी होगी। यह उल्लेखनीय है कि यह निवेश दर चीन की निवेश दर से नीची है परन्तु कम वर्द्धनात्मक पूंजी उत्पाद अनुपात (I.C.O.R.) के जरिये

तुलनात्मक विकास दर को हासिल करने में सक्षम है। निम्न तालिका में विभिन्न वैकल्पिक परिदृश्यों में निवेश दर दर्शायी गई है:-

11वीं योजना में जी.डी.पी. की विकास दर	7.0%	8.0%	9.0%
औसत निवेश दर	29.1	32.0	35.1
औसत चालू खाते का घाटा (जी.डी.पी. के प्रतिशत के रूप में)	2.0	2.4	2.8
सम्बन्धित घरेलू बचत दर जिसमें से	27.1	29.6	32.3
(क) परिवार	20.1	20.5	21.0
(ख) निगम	5.0	5.5	6.1
(ग) सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम	3.1	3.1	2.8
(घ) सरकार	-1.1	0.5	2.4

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश निवेश की वित्त व्यवस्था घरेलू बचतों तथा विदेशी बचतों के संयोजन से की जा सकेगी। चालू खाते का घाटा (CAD) बढ़कर जी.डी.पी. का 2.8 प्रतिशत हो जायेगा। यह चालू खाते का घाटा व्यवहार्य है क्योंकि इसकी ज्यादातर व्यवस्था प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) से तथा दीर्घकालीन बाहय ऋणों से की जा सकेगी, जिसे प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने सुरक्षित बताया है। इस घाटे को तीन प्रतिशत से कम रखने का लक्ष्य है। साथ ही योजना में बचत आवश्यकताओं के कुछ निहितार्थ निम्न तालिका में दर्शाये गये है।

11वीं योजना हेतु बचत आवश्यकताओं के कुछ निहितार्थ

11वीं योजना में जी.डी.पी. की विकास दर	7.0%	8.0%	9.0%
सार्वजनिक निवेश	8.4	9.8	11.2
निजी निवेश	20.7	22.2	23.9
सरकारी राजस्व शेष	-2.9	-1.3	0.6
सरकारी राजकोषीय शेष	-6.4	-.2	-6.0

Source: Approach paper of XIth Five Year Plan, Planning commission, New Delhi.

इस योजना में औद्योगिक विकास के प्रति काफी आशान्वित रहते हुए उद्योग क्षेत्र में 10.5 प्रतिशत विकास की दर प्रस्तावित की गई है। वर्तमान में देश में औद्योगिक विकास के समक्ष विश्वस्तरीय औद्योगिक अवसंरचना तथा कुशल मानव शक्ति के अभाव जैसी दो प्रमुख चुनौतियों को स्वीकार करते हुए ग्यारहवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में इन चुनौतियों का सामना करने हेतु विशेष कदम जैसे-अधिक गहन निवेश, उन्नत तकनीकी तथा आधुनिकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। सेवा क्षेत्र के लिये ग्यारहवीं योजना अवधि में 9.9 प्रतिशत का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि हमारे देश में सेवा क्षेत्र वर्तमान में सर्वाधिक विकास वाला क्षेत्र है जो देश की कुल जीडीपी का 54 प्रतिशत का महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है। सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत व्यावसायिक सेवा में संगठित व रिटेल व्यावसायिक सेवाओं के साथ-साथ मनोरंजन व मीडिया सम्बन्धी सेवाओं आदि को शामिल किया जाता है। इन सेवाओं में विगत एक दशक से 9 प्रतिशत विकास दर प्राप्त की जाती रही है। इस पंचवर्षीय योजना में सामाजिक

सेवाओं के क्षेत्र यथा-स्वास्थ्य, शिक्षा, शुद्ध पेयजल व स्वच्छता पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करते हुए इस क्षेत्र में निवेश को समुचित रूप से बढ़ाने पर जोर दिया गया है। इस योजना में 9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के लक्ष्य को हासिल करने हेतु 35.1 प्रतिशत (जीडीपी के प्रतिशत के रूप में) निवेश की दर प्राप्त करनी होगी जिसमें अधिकांश निवेश निजी क्षेत्र से आयेगा। इसके लिये निवेश मित्र माहौल बनाये जने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। आधारित संरचना की मजबूती के लिये रेल्वे, सड़कें, बन्दरगाहों, हवाई अड्डों तथा विद्युत क्षेत्र के व्यापक विकास के साथ-साथ इनकी गुणवत्ता में व्यापक सुधार की आवश्यकता जताई गई है। इन क्षेत्रों में निवेश की भारी आवश्यकताओं को देखते हुए इनमें सार्वजनिक निजी भागीदारी (Public Private Partnership-PPP) की सफलता को महत्वपूर्ण माना है क्योंकि आधारित संरचना क्षेत्र के विकास हेतु 16 लाख करोड़ रूपये के निवेश की आवश्यकता अनुमानित की गई है, जिसे अकेले सार्वजनिक क्षेत्र के द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता है।

'सबको प्रारम्भिक शिक्षा' 11वीं योजना की रणनीति का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। वर्ष 2000-01 में पूरे देश में एक व्यापक कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान (एस.एस.ए) चलाया गया। यह कार्यक्रम सबके लिये बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति का प्रमुख साधन बनेगा। इस योजना में उन क्षेत्रों को पहचानने जहाँ शिक्षा से वंचित लोगो की संख्या अधिक है एवं प्रत्येक समस्या क्षेत्र के लिए एस.एस.ए. के सम्पूर्ण संरक्षण में अलग-अलग रणनीति पर बल दिये जाने का प्रावधान है ताकि 2010 तक प्रारम्भिक शिक्षा के शत-प्रतिशत विस्तार के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। साथ ही इस योजना में एस.एस.ए पर किये जाने वाले व्यय के लिये केन्द्र व राज्यों की हिस्सेदारी जो अभी तक 75:25 के अनुपात में थी, उसको अब 50:50 के अनुपात में किया जायेगा। ग्यारहवीं योजना के लिये प्रस्तुत किये गये दृष्टिकोण पत्र में मिड डे मील योजना को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जा रहा है। जिसके माध्यम से विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ाने में सहायता मिल सकेगी तथा स्कूली शिक्षा को व्यापक दृष्टिकोण का नजरिया प्रदान किया जा सकेगा। इस योजना का केन्द्र बिन्दु बाल विकास है। इसमें इस तथ्य पर विशेष जोर दिया गया है कि बालक अपना बालपन न खोए, चाहे इसका कारण श्रम हो या कोई रोग। योजना. में यह स्पष्ट किया गया है कि बालकों को उनके अधिकार उनके जीवन के आरम्भिक स्तर से ही प्राप्त होने चाहिये। इस दिशा में समन्वित बाल विकास सेवा अपनी महती भूमिका निभायेगा। वर्तमान में समन्वित बाल विकास सेवा प्रारम्भिक शिक्षा को बढ़ावा देने में अपेक्षानुकूल अपनी भूमिका नहीं निभा पा रहा है। अत: इस दिशा में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र को बढ़ावा देने हेतु सर्व शिक्षा अभियान को सम्पूर्ण दायित्व सौंपा जाये जिससे समन्वित बाल विकास सेवा स्वास्थ्य तथा पौषाहार से सम्बन्धित मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें। इस उद्देश्य के लिये आवश्यक है कि इन केन्द्रों पर स्वच्छ पीने के पानी तथा शौचालयों की समुचित व्यवस्था हो। साथ ही इस योजना में प्राथमिक स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार व गुणवत्ता बढ़ाने तथा सेवाओं की पहुँच सुनिश्चित करने हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन व स्वयं सेवी संगठनों की सहायता प्राप्त करने पर भी विशेष ध्यान दिये जाने का उल्लेख किया गया है।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में नीति विशेषज्ञों का मानना है कि विकास की धीमी गति का एक प्रमुख कारण योजनाओं एवं परियोजनाओं का सही ढंग से कार्यान्वित न हो पाना है।

क्रियान्वयन स्तर पर कुशासन एवं भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे लोक कल्याणकारी योजनाओं के वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधक रहे है। अत: ग्यारहवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में भ्रष्टाचार जैसी समस्या का हल परियोजनाओं के बेहतर डिजाईन, कार्यान्वयन का बेहतर मशीन तंत्र और सूचना के अधिकार कानून के माध्यम से हल निकालने की बात कही गई है। इस हेतु अधिक पारदर्शिता एवं जवाबदेहिताको भी दृष्टिगत रखने का उल्लेख किया गया है। भ्रष्टाचार को मिटाने हेतु केन्द्र तथा राज्य सरकारों को अपने-अपने स्तर का प्रयास करने होंगे। साथ ही भारत की ढीली एवं मंहगी न्यायिक व्यवस्था में भी सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

8.6 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में बजटीय संसाधन (Budgetary Resources of 11th Plan)

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में 2007-12 की पंचवर्षीय योजनावधि में केन्द्र एवं राज्यों की सम्मिलित सकल बजटीय सहायता राशि दसवीं योजना के स्तर से 2.5 प्रतिशत (जीडीपी के प्रतिशत के रूप में) अधिक होगी। इसे राजकोषीय घाटे को जीडीपी के 3.5 प्रतिशत तक सीमित रखते हुए कर राजस्व में वृद्धि द्वारा एवं गैर योजनागत व्ययों में कटौती करके पूरा किया जायेगा। दसवीं योजना में सकल बजटीय सहायता 7.15 प्रतिशत थी जिसे बढ़ाकर 11 वीं योजना में 9.67 प्रतिशत किया जायेगा।

8.7 सारांश (Summary)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है की 11वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्धारित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु इसमें 'तीव्र' एवं समावेशी विकास' की रणनीति निर्धारित करके उसे समुचित तरीके से क्रियान्वित करने पर विशेष बल दिया गया है। इसमें न केवल विकास पर जोर देने की बात कही गई है बल्कि क्षेत्रीय असन्तुलनों को दूर करते हुए समान वितरण के साथ विकास पर ध्यान दिये जाने की रणनीति को अंगीकार करने पर भी जोर दिया गया है। इस योजना के दृष्टिकोण पत्र के अन्तर्गत दोतरफा नीति निर्धारित करके उसे समुचित प्रकार से क्रियान्वित करने पर विशेष ध्यान देने की बात कही है। इसमें एक तरफ उन क्षेत्रों पर ध्यान देना प्रस्तावित है जिनमें 10वीं पंचवर्षीय योजना के परिणाम आशानुकूल नहीं रहे तथा दूसरी तरफ क्षेत्रीय असन्तुलनों को दूर करने के उपायों पर भी जोर रहेगा। परन्तु इन प्रयासों के साथ-साथ इस दिशा में सार्थक परिणाम प्राप्त करने हेतु योजनाओं के निर्माण की प्रक्रिया को अधिक व्यवहारिक बनाने के साथ ही व्यवस्था नियामक तंत्र में बदलाव की प्रक्रिया को भी तेज करना चाहिए ताकि इस योजना में प्रस्तावित एवं लक्षित 9 प्रतिशत विकास दर को बढ़ाकर योजना अवधि के अन्त में 2011-12 तक 10 प्रतिशत तक किया जाना सम्भव हो सके तथा भारत को तीव्र विकास की दौड़ में शामिल किया जा सके।

8.8 स्वपरख प्रश्न

1. भारत की 11वीं पंचवर्षीय योजना की निर्धारित अवधि बताइये।
2. 11वीं योजना की वैकल्पिक विकास दरों को संक्षेप में बताइये।
3. 11वीं योजना के मुख्य उद्देश्यों को संक्षेप में बताइये।
4. 11वीं योजना के बजटीय संसाधन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

5. 11वीं योजना के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की विवेचनात्मक व्याख्या कीजिये।

8.9 संदर्भ सूची

1. एप्रोच प्रेपर - 11वीं पंचवर्षीय योजना, योजना आयोग, नई दिल्ली।
2. ए.एन. अग्रवाल, भारतीय अर्थव्यवस्था - विकास एवं आयोजन, न्यू एज इन्टरनेशनल प्रा.लि नई दिल्ली-2006-07
3. रूद्र दत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली-2006
4. आर्थिक समीक्षा, वार्षिक प्रतिवेदन, भारत सरकार, नई दिल्ली।
5. योजना (हिन्दी मासिक पत्रिका) योजना भवन, नई दिल्ली।

इकाई 9

भारत का औद्योगिक विकास एवं इसकी समस्यायें
(Industrial Development of India and It's Problems)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 भारत में औद्योगिक विकास की भूमिका

9.3 भारत में योजनाकाल में औद्योगिक विकास

9.4 भारत में औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तन।

9.5 औद्योगिक उत्पादन में उतार-चढ़ाव

9.6 भारत में छोटे एवं लघु उद्यमों की प्रगति

9.7 औद्योगिक मन्दी के कारण

9.8 औद्योगिक मन्दी को दूर करने के लिए सुधारात्मक उपाय

9.9 औद्योगिक क्षेत्र की समस्यायें एवं समाधान

9.10 सारांश

9.11 शब्दावली।

9.12 स्वपरख प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप भारत में औद्योगिक विकास की आवश्यकता, आर्थिक विकास में औद्योगिक विकास की भूमिका, योजनाकाल में औद्योगिक विकास, विकास दर एवं विभिन्न क्षेत्रों में विकास की स्थिति, औद्योगिक विकास में संरचनात्मक परिवर्तन, औद्योगिक उत्पादन में उतार-चढ़ाव की स्थिति, देश में लघु व छोटे उद्योगों की प्रगति, औद्योगिक मन्दी तथा औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं की जानकारी प्राप्त कर सकते है। इस अध्याय में भारत में औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं को दूर करने के लिए आवश्यक सुझाव भी दिये गये है।

9.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व में अनेक देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त की। इन विकासशील देशों को तेजी से आर्थिक विकास के लिए औद्योगिकीकरण का रास्ता सुगम लगा। भारत ने भी तेजी से आर्थिक विकास के लिए औद्योगिकीकरण का रास्ता अपनाया। इसके लिए सर्वप्रथम 1948 में औद्योगिक नीति घोषित की गई। 1956 की औद्योगिक नीति देश के औद्योगिक विकास का आधार थी। इस नीति में सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना पर बल दिया गया। योजनाकाल में अनेक सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना की गई। इसके बाद 1970, 1973, 1977 व 1980 में औद्योगिक नीति में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये गये। 1991 की औद्योगिक

नीति पुरानी सभी नीतियों से हट कर थी। इस नीति ने निजीकरण, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। 1991 के बाद देश के औद्योगिक परिदृश्य में परिवर्तन आने लगे। निजीकरण को बढ़ावा दिया गया। औद्योगिक क्षेत्र में उदारीकरण एवं विदेशी पूँजी निवेश की छूट दी गई। इन सबके परिणामस्वरूप देश में तेजी से औद्योगिक विकास हुआ। लेकिन इन सबके साथ-साथ औद्योगिक क्षेत्र को कुछ समस्याओं जैसे आर्थिक मन्दी, आधारभूत सुविधाओं का अभाव, शक्ति की कमी, श्रम-सम्बन्धों की समस्या, विदेशी प्रतिस्पर्धा आदि का भी सामना करना पड़ा है।

9.2 भारत में औद्योगिक विकास की भूमिका

भारत एक विकासशील देश है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमने भी तीव्र आर्थिक विकास का सपना संजोया था। हमारा प्रयास था कि हम भी तेजी से विकास कर हमारी मूलभूत समस्याओं, जैसे गरीबी, बेरोजगारी, निम्न जीवन स्तर आदि से यथाशीघ्र मुक्ति पाकर विकसित देशों की श्रेणी में खड़े हो जायें। यद्यपि हमारा देश कृषि प्रधान देश है फिर भी हमने औद्योगिकरण द्वारा विकास का स्वप्न देखा है। यह निर्विवाद सत्य है कि विश्व के अधिकांश देशों ने औद्योगिकरण द्वारा विकास किया है तथा लगभग सभी विकसित देश औद्योगिक राष्ट्रों की श्रेणी में माने जाते है। अत: कृषि प्रधान होते हुए भी हमने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में तेजी से औद्योगिक विकास की नीति को अपनाया हैं। सन् 1956 एवं उसके बाद की सभी औद्योगिक नीतियों में तीव्र औद्योगिकरण पर बल दिया गया है। इसका परिणाम भी मिला है और आज हम अनेक औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गये है। भारत, जो कभी केवल उपभोक्ता एवं कच्चे माल का निर्यात करता था, आज औद्योगिक उत्पाद का निर्यात करने लगा है।

औद्योगिक विकास का मुख्य आधार पूँजी एवं तकनीकी ज्ञान है। भारत में प्रारम्भ से ही इन दोनों का अभाव रहा है। हमारे यही पूँजी निर्माण की दर कम रही है। इसका कारण बचत की क्षमता एवं सुविधाओं का अभाव रहा है। किन्तु विभिन्न प्रयासों के बाद अब पूँजी निर्माण की दर बढ़ने लगी है। औद्योगिक विकास मुख्य रूप से पूँजी निर्माण की दर पर निर्भर करता है। पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि एवं विकास आवश्यक है। पूँजीगत वस्तुओं का आयात भी किया जा सकता है किन्तु यह निर्यात बढ़ाने से ही संभव है भारत में प्राथमिक वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि की संभावनाएँ सीमित है इसलिए नियात बढ़ाने के उद्देश्य से विनिर्माण उद्योगों का विकास होना आवश्यक है। इसके साथ ही आयात-प्रतिस्थापन उद्योगों का विकास कर पूँजी का आयात किया जा सकता है। इससे पूँजीगत वस्तुओं के आयात के लिए पर्याप्त विदेशी मुदा उपलब्ध हो जायेगी। इसके अतिरिक्त आयात की वर्तमान मात्रा की सीमा में उपभोक्ता वस्तुओं के स्थान पर पूँजीगत वस्तुओं का आयात किया जा सकता है। इस प्रकार औद्योगीकरण के लिए पूँजी आवश्यक है और यह विनिर्माण उद्योगों के विकास तथा आयात प्रतिस्थापन द्वारा संभव है। देश में बचत बढ़ाकर भी पूँजी बढ़ायी जा सकती है और अन्तिम रूप से विदेशी निवेशकों को आकर्षित कर विदेशी विनिमय की पूर्ति बढ़ायी जा सकती है। 1991 की औद्योगिक नीति के बाद उदारीकरण को अपनाते हुए हमारे नीति निर्माताओं ने विदेशी पूँजी को

आकर्षित करने के लिए उदार घोषणाएँ की है। इनसे विदेशी पूँजी निवेश बढ़ा है और नये प्रकार का औद्योगिक ढाँचा तैयार होने लगा है।

9.3 भारत में योजनाकाल में औद्योगिक विकास

सन् 1950-60 के दशक में भारत में आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण को ही एक मात्र रास्ता मानते हुए एक जागृत नीति के रूप में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई। सरकार इस बात से परिचित थी कि औद्योगीकरण प्राथमिक क्षेत्रों को आधार उपलब्ध करवाने, आधारभूत ढाँचा विकसित करने, शोध एवं अनुसन्धान को बढ़ावा देने, तकनीकी विकास करने तथा आर्थिक विकास की गति प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं। इसी आधार पर सरकार ने विभिन्न योजनाओं में औद्योगिकरण पर ध्यान दिया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (First Five Year) - इस योजना में औद्योगीकरण के लिए सार्थक प्रयास नहीं किये गये। इस योजना में आधारभूत सेवाओं, जैसे शक्ति एवं सिंचाई क्षमता के निर्माण पर बल दिया गया। 1948 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र में भेद किया गया। इस योजना में औद्योगिक विकास दर 7 प्रतिशत रही तथा औद्योगिक उत्पादन में 39 प्रतिशत की वृद्धि हुईं है। इस योजना में अनेक मूल एवं आधारभूत उद्योगों की सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापना की गई।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan) - दूसरी योजना में भारत की आधारभूत औद्योगिक नीति, 1956 की घोषणा की गई। इसमें सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों के विकास पर बल दिया गया। इस योजना में भी सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक आधारभूत उद्योगों की स्थापना की गई। इस योजना में भारी तथा मूल उद्योगों, कृषि एवं परिवहन के काम आने वाली मशीनों, रसायन तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना की गई।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (Third Five Year Plan) - इस योजना में औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार करने एवं पूँजी तथा उत्पादक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए मशीन-निर्माण, तकनीकी विकास तथा प्रबन्धकीय कौशल पर विशेष ध्यान दिया गया। औद्योगिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र को केन्द्रीय भूमिका सौंपी गई। इस योजना का मुख्य लक्ष्य अर्थव्यवस्था को उत्पादक वस्तु उद्योगों, जैसे इस्पात, मशीन-निर्माण आदि में आत्मनिर्भर बनाना था ताकि विदेशी सहायता की माँग को कम किया जा सके। उपभोग वस्तुओं के उत्पादन का दायित्व निजी क्षेत्र का सौंपा गया। योजना के प्रथम चार वर्षो में औद्योगिक उत्पादन में 7.6 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई जो लक्ष्य से कम थी।

चौथी पंचवर्षीय योजना (Fourth Five Year Plan) - इस योजना में उद्योगों को उच्च प्राथमिकता देते हुए कुल योजना व्यय की 26.7% राशि औद्योगिक विकास पर व्यय करने का निश्चित किया। ऐसी औद्योगिक इकाइयों पर विशेष बल दिया गया जिनके उत्पादन की माँग बढ़ रही थी या जो आयात प्रतिस्थापन अथवा निर्यात प्रोत्साहन की दृष्टि से महत्वपूर्ण थीं। आधारभूत उद्योगों जैसे: लोहा व इस्पात, अलौह धातुएँ, उर्वरक, पेट्रोलियम एवं पेट्रोरसायन, कोयला एवं लोहा अयस्क आदि पर विशेष बल दिया गया। इस योजना में औद्योगिक विकास दर 5% रही जो लक्ष्य 8% से कम थी। इस योजना में औद्योगिक विकास दर के कम होने का

प्रमुख कारण निजी क्षेत्र पर विनियोग-विस्तार सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाना था। इसकी पूर्ति के लिए सरकारी क्षेत्र का विस्तार करने की नीति अपनायी गई किन्तु यह अधिक सफल नहीं हुई। फलस्वरूप सरकार ने संयुक्त क्षेत्र की धारणा प्रारम्भ कर बडे औद्योगिक घरानों और विदेशी कम्पनियों को भारी विनियोग वाले क्षेत्रों में कार्य करने की अनुमति दे दी।

पांचवी पंचवर्षीय योजना (Fifth Five Year Plan) - इस योजना में आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक न्याय के साथ औद्योगिक विकास का लक्ष्य रखा गया। सरकार ने मूल क्षेत्र (Core Sector) के उद्योगों के तीव्र विकास, निर्यात प्रतिस्थापन एवं निर्यात प्रधान उद्योगों के विकास तथा जन उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने पर बल दिया। इस योजना में अनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन को सीमित करने, 124 मदों को छोटे उद्योगों के लिए सुरक्षित करने तथा बड़े उद्योगों के पोषक के रूप में सहायक उद्योगों का विकास करने का निश्चय किया। योजना में औद्योगिक विकास पर कुल योजना परिव्यय की 26% धनराशि व्यय की गई। योजनाकाल में औद्योगिक विकास दर 5.3% थी जो लक्ष्य से कम थी।

छठी पंचवर्षीय योजना (Sixth Five Year Plan) - इस योजना में औद्योगिक ढाँचे में परिवर्तन, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता एवं सम्पूर्ण विकास के लक्ष्य रखे गये। इसके लिए निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की क्षमता का विस्तार किया गया ताकि तत्काल उपभोग्य एवं टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं, कृषि के काम आने वाली वस्तुओं एवं पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन बढ़ सके। इसमें पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों का विस्तार करने, निर्यात प्रधान उद्योगों का उत्पादन बढ़ाने तथा तकनीकी विकास की नीति अपनायी गई। स्वदेशी तकनीक को बढ़ावा देने के लिए आन्तरिक अनुसंधान एवं विकास पर बल दिया गया। महानगरों में उद्योगों के केन्द्रीयकरण को रोकन के लिए पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर ध्यान दिया। इस योजना में औद्योगिक विकास दर 5.5% थी जो लक्ष्य 7% से कम थी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (Seventh Five Year Plan) - इस योजना में सामाजिक न्याय के साथ विकास तथा औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के व्यापक लक्ष्य रखे गये। इस योजना में 8% वृद्धि दर को प्राप्त करने के लिए बिजली की पूर्ति बढ़ाने एवं आधारभूत ढाँचे का विकास करने पर विशेष बल दिया या। इस योजना में जनता के दैनिक उपयोग की वस्तुओं की उचित मूल्य पर पूर्ति सुनिश्चित करने, आधुनिक तकनीक द्वारा उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने, निर्यात प्रधान उद्योगों का उत्पादन बढ़ाने, उच्च विकास दर वाले नये उद्योगों को लगाने, प्रशिक्षित जनशक्ति के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाने एव आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के व्यापक लक्ष्य रखे गये।

इस योजना में औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए आधारभूत ढाँचे के विकास की बाधाएँ दूर करने, औद्योगिक लाइसेन्स नीति एवं नियमों को उदार करने तथा इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों के तीव्र विकास पर बल दिया गया। योजना में औसत विकास दर 8.5% रही।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (Eight Five Year Plan) -आठवीं योजना आर्थिक सुधार एवं उदारीकरण के दौर में प्रारम्भ हुई। इस योजना में औद्योगिक, राजकोषीय, व्यापारिक एवं विदेशी निवेश सम्बन्धी नीतियों में व्यापक सुधार किये गये। सरकार ने यह अनुभव किया कि आयात-निर्यात सम्बन्धी प्रतिबन्धों एवं लाइसेन्स व्यवस्था द्वारा जो लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा

सके, वे आर्थिक नीतियों के उदारीकरण द्वारा प्राप्त हो सकते है। सरकार ने अपनी भूमिका 'सांकेतिक' रखने का निश्चय किया। सरकार ने निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका में भी संशोधन किये है। यह कहा गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र वांछित सफलता प्राप्त करने में असफल रहा है तथा निजी क्षेत्र जब परिपक्व हो गया है। निजी क्षेत्र के पास साहस, प्रबन्धकीय योग्यता, तकनीकी, वित्तीय व विपणन संसाधन उपलब्ध हैं अत: निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित कर औद्योगिक विकास को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। सरकार ने उद्योगों की प्रतिस्पर्धा एवं परिचालन कुशलता बढ़ाने पर बल दिया हैं अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों के अनुरूप कम्पनियों का आकार बढ़ाने के लिए कम्पनियों के विस्तार, विलयन एवं समामेलन पर बल दिया गया हैं। विदेशी कम्पनियों के सहयोग व साझेदारी में उद्योग लगाने, विदेशी पूँजी को आमंत्रित करने, आवश्यक वस्तुओं का आयात करने, आयात प्रतिबन्ध हटाने आदि पर इस योजना में बल दिया गया। प्रतिस्पर्द्धा शक्ति बढ़ाने के लिए वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार करने, लागत कम करने, विदेशी पूँजी व तकनीकी का आयात करने, उत्पादकता बढ़ाने आदि पर बल दिया गया है। इस योजना में औसत औद्योगिक विकास दर 7.3% रही जो लक्ष्य 7.4% के नजदीक थी।

नीवीं पंचवर्षीय योजना (Ninth Five Year Plan) - नौवीं योजना में उदारीकरण का दूसरा दौर प्रारम्भ हो गया है। इसमें उद्योगों के निजीकरण, सरकारी उद्योगों के विनिवेश एवं उदार नीतियाँ, लाइसेन्स व्यवस्था की समाप्ति, आयात-नीति में पर्याप्त उदारता, निजी साहस को प्रोत्साहन, विदेशी पूँजी एवं सहभागिता को बढ़ावा देने संबंधी नीतियाँ अपनायी गई। इस योजना में औद्योगिक विकास दर विभिन्न वर्षा में समान नहीं रही। 1997-98 में यह 6.7% थी जो वर्ष 2001-02 में घटकर मात्र 2.7% रह गयी।

दसवीं पंचवर्षी योजना (Tenth Five Year Plan) - दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) ऐसे समय प्रारम्भ हुई जब उदारीकरण का लगभग एक दशक पूरा हो चुका था। इस योजना में 8% वार्षिक विकास दर का लक्ष्य रखा गया था। वर्ष 2001-02 में औद्योगिक विकास दर मात्र 2.7% थी जो 2002-03 में बढ़कर 5.7% हो गयी। वर्ष 2003-04 में समग्र औद्योगिक विकास दर 7% रही। इसमें विनिर्माण क्षेत्र का योगदान सर्वाधिक रहा। 2004-05 में औद्योगिक विकास दर 8.4% रही तथा विनिर्माण क्षेत्र में विकास दर 9.2% रही। 2005-06 मे औद्योगिक विकास दर 8.2% रही। इसमें खनन क्षेत्रों में विकास दर 1%, विनिर्माण क्षेत्र में 9.1% तथा बिजली क्षेत्र में 5.2% रही। 2006-07 में (अप्रैल-नवम्बर) तक समग्र औद्योगिक विकास दर 10.6% रहने की आशा है। इसमें खनन क्षेत्र की विकास दर 3.8%, विनिर्माण क्षेत्र की 11.5% तथा बिजली क्षेत्र की 7.3% रहने की आशा है। वर्ष 1995-96 के बाद 2006-07 में औद्योगिक वृद्धि दर (10.6%) अधिकतम दर्ज की गई है। यद्यपि दसवीं योजना के लिए 10% वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया था किन्तु यह 8.7% रहने की आशा है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (Eleventh Five Year Plan) - ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) के लिए औद्योगिक क्षेत्र में 10% वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। 2006-07 की औद्योगिक वृद्धि दर को देखते हुए यह लक्ष्य प्राप्त करना सम्भव लग रहा है। लेकिन 10% लक्ष्य की प्राप्ति इस बात पर निर्भर करेगी कि हम औद्योगिक क्षेत्र की चिरस्थायी रूकावटों जैसे बिजली की कमी, आधारभूत ढाँचे का अभाव, वित्तीय लागतों में वृद्धि

आदि को दूर करने में कहाँ तक सफल होते है। औद्योगिक क्षेत्र में विकास के लिए निवेश मे वृद्धि के द्वारा औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना होगा। यद्यपि निवेश की दृष्टि से विगत वर्ष उत्साहवर्धक रहे है। घरेलू बचत दर में वृद्धि व प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से निवेश में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ है। चिरस्थायी आर्थिक विकास, राजकोषीय समायोजन तथा सरकार की समर्थनकारी नीतियाँ औद्योगिक वातावरण को प्रोत्साहित करती है। इससे औद्योगिक क्षमता मे वृद्धि होगी और औद्योगिक विकास दर के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकेगा।

औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दरें

(आधार वर्ष 1993-94=100)

(प्रतिशत में)

वर्ष	खनन क्षेत्र	विनिर्माण	बिजली	समग्र उद्योग
1995-1996	9.7	14.1	8.1	13.0
1997-1998	6.9	6.7	6.6	6.7
1998-1999	-0.8	4.4	6.5	4.1
1999-2000	1.0	7.1	7.3	6.7
2000-2001	2.8	5.3	4.0	5.0
2001-2002	1.2	2.9	3.1	2.7
2002-2003	5.8	6.0	3.2	5.7
2003-2004	5.2	7.4	5.1	7.0
2004-2005	4.4	9.2	5.2	8.4
2005-2006	1.0	9.1	5.2	8.2
2006-2007 (अप्रैल-नव.)	3.8	11.5	7.3	10.6

स्त्रोत-आर्थिक समीक्षा 2006-07 पृष्ठ 136

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 1995-96 में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर 13% थी जो 1998-99 में घटाकर 4.1%, 1999-2000 में 6.7%०4 तथा 2000-01 में 5% रही। 2001-02 में यह पिछले वर्ष की तुलना में लगभग आधी अर्थात् 2.7% रही है। 2002-03 में यह 5.7% रही। दसवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास दर 8.7% रहने की आशा है जो 10% लक्ष्य की तुलना में कम है। 2006-07 के प्रथम नौ महीनों में औद्योगिक विकास दरें 10.6% रही है जो 1995-96 के 13% के बाद सर्वाधिक है। तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 2005-06 एवं 2006-07 (अप्रैल-नवम्बर) में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर क्रमश: 8.2% एवं 10.6% रही।

भारत में औद्योगिक विकास दर में कमी का प्रमुख कारण अनेक ढाँचागत एवं चक्रीय तत्व रहे है। इनमें प्रमुख व्यापार एवं उद्योग में मन्दी, विनियोग में कमी, स्वदेशी एवं विदेशी माँग का अभाव, उच्च वास्तविक ब्याज दर, विद्युत एवं यातायात क्षेत्र में ढाँचागत सुधारों की धीमी प्रगति, श्रम व भूमि क्षेत्र में आर्थिक सुधारों का अभाव, औद्योगिक क्षेत्र में ढाँचागत सुधारों की धीमी प्रगति, संविलयन एवं समामेलन की धीमी प्रगति महत्वपूर्ण क्षेत्रों में नियामक संस्थाओं

की स्थापना में विलम्ब आदि है। विश्वव्यापी मन्दी से भी भारतीय औद्योगिक जगत प्रभावित हुआ है।

9.4 भारत के औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में हमने तीव्र औद्योगीकरण का लक्ष्य रखा हैं देश का तीव्र औद्योगीकरण ही हमारे योजनाबद्ध विकास की उपलब्धि रहा हैं1956 की औद्योगिक नीति के बाद देश में औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेजी से शुरू हुई। देश में सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन अनेक बड़े, आधारभूत एवं भारी उद्योग स्थापित किये गये। औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन क्षमता बढ़ी है। भारत को विश्व के औद्योगिक देशों में गिना जाने लगा है। हमारे औद्योगिक ढाँचे में बहुत अधिक विविधता आयी है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया में नये उद्योग अन्तर्वर्ती एवं पूंजीगत उद्योगों की स्थापना की गई है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया में नये उद्योग अन्तवर्ती एवं पूंजीगत उद्योगों की स्थापना की गई है। उद्योगीकरण का ही परिणाम है कि हमारी आयात-निर्यात संरचना में भारी परिवर्तन आया है। जहाँ पहले हम कच्चा माल निर्यात कर तैयार माल का आयात करते थे वहाँ अब स्थिति एकदम बदल गयी है। अब हम तैयार माल विशेषकर इंजीनियरी सामान, तकनीकी एवं प्रबन्धकीय कौशल का भी निर्यात करने लगे है। देश में सर्वोत्तम परिमार्जिक उद्योगों (sophisticated) का कुशलतापूर्वक संचालन किया जा रहा है। हमारे तकनीकी विशेषज्ञ विदेशों में उद्योगों के आयोजन, डिजाइन एवं निर्माण कार्यो में लगे है। भारत के औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तनों को निम्नांकित बिन्दुओं में दर्शाया गया है -

(1) **उत्पादन में वृद्धि (Increase in Production) -** भारत में औद्योगिक उत्पादन में भारी परिवर्तन के साथ उत्पादन में विविधता भी आयी हैं निम्नांकित तालिका में कुछ प्रमुख वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि की स्थिति को दर्शाया गया है -

प्रमुख औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन

वस्तु	इकाई	1970-71	2001-02	2002-03	2004-05	2005-06
1. कपड़ा (सूती वस्त्र)	मिलियन वर्ग मीटर	7,602	19,769	19300	20,655	23873
2. खाद (नाइट्रोजन)	हजार मी.टन	830	10747	10559	11340	11402
3. सीमेन्ट	मिलियन टन	14.3	106.9	116.3	131.6	147.8
4. तैयार इस्पात	मिलियन टन	4.6	31.1	34.5	39.3	44.5
5. उत्पादित बिजली	बिलिटन किलोवाट	55.8	515.2	431	587	617
6. एल्यूमिनियम	हजार टन	168.8	552.1	467	516.4	560.5
7. पेपर एव पेपर बोर्ड	हजार टन	755	3176	3412	3848	3913
8. वाणिज्यिक वाहन	हजार (संख्या)	41.2	146	199	350	391

स्त्रोत. आर्थिक समीक्षा 2006-07 एस-31, 32, 33

उपर्युक्त तालिका में प्रमुख औद्योगिक उत्पादों में वृद्धि की स्थिति को दर्शाया गया है। वास्तव में हम लगभग सभी उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्रात कर चुके हैं तथा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में भी हमारी विकास दर आशानुकूल है। भारत में खनन एवं धातु-निर्माण, रसायन एवं पेट्रोरसायन, खाद, पूँजीगत वस्तुओं, जैसे इस्पात मिल, रसायन संयन्त्र आदि के लिए संवेदनशील उपकरणों का निर्माण, भारी एवं मध्यम इंजीनियरिंग सामान, शक्ति एवं यातायात उद्योग, विनिर्माण उद्योग आदि में आशातीत प्रगति की है। अब भारत स्वयं बिना सहारे के (आयात पर बिना निर्भर रहे) अपना पर्याप्त विकास करने की क्षमता रखता है। भारत ने आधारभूत संरचना, अनुसंधान एवं विकास क्षमता, सलाह और डिजाईन निर्माण, इंजीनियरिंग सेवा, प्रोजेक्ट निर्माण सेवा, नव प्रवर्तन आदि से विशेष योग्यता प्राप्त कर ली है। इस प्रकार औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ औद्योगिक संरचना में विविधता आयी है।

(2) **औद्योगिक वृद्धि दर (Industrial Growth Rate) -** भारत मे औद्योगिक विकास की दर सदैव समान नही रही है। योजनाकाल के प्रारम्भिक वर्षो में विकास दर मे निरन्तर वृद्धि हुई और यह 1951 से 1995 तक औसतन 8% वार्षिक रही। किन्तु इसके बाद के वर्षा में इसमें उतार-चढ़ाव आये है। 1976-77 में यह 9.5% रही जबकि 1979-80 में यह (-) 1.4% रही। 1961-70 में यह औसतन 5.5% रही जबकि 1971-80 के मध्य औसतन 4% वार्षिक रही। 1980-85 के दौरान यह औसतन 5.5% रही। 1985-90 के दौरान औद्योगिक वृद्धि दर 8% रही जो आठवीं योजना (1992-97) के दौरान 7.3% वार्षिक रही है। इसके बाद के वर्षो में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की दर में कमी आयी। 1997-98 में यह 6.7% थी जो 1998-99 में 4.1%, 1999-2000 में 6.7% व 2000-01 में 5% वार्षिक रही। 2001-02 में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर 2.7% रही। 2002-03 में यह 5.7% रही। 2003-04 एवं 2004-05 में दर क्रमश: 7% एवं 8.4% रही। 2005-06 में औद्योगिक विकास दर 8.2% व 2006-07 में (अप्रैल-नवम्बर) में 10.6% रही। 10 वीं योजना में समग्र औद्योगिक विकास दर 8.2% व 2006-07 में (अप्रैल-नवम्बर) में 10.6% रही। 10 वीं योजना में समग्र औद्योगिक विकास दर 10% लक्ष्य की तुलना में 8.7% रहने का अनुमान है तथा ग्यारहवीं योजना के लिए 10% औद्योगिक विकास दर का लक्ष्य रखा गया है।

(3) **औद्योगिक विकास की व्यूह रचना (Strategy of Industrial Development) -** भारत के औद्योगिक विकास की व्यूह रचना तैयार करते समय भारी उद्योगों पर विशेष बल दिया गया। उच्च तकनीकी विकास के लिए भारत में इंजीनियरिंग क्षेत्र पर बल दिया। इसके लिए सुदृढ़ आधारभूत ढाँचे का निर्माण, उचित उत्पादन संयंत्र एवं उत्पादन कुशलता पर विशेष ध्यान दिया गया। इंजीनियरिंग उद्योग को भारतीय औद्योगिक विकास का आधार क्षेत्र माना गया। भारत में इंजीनियरिंग उद्योग को इसलिए भी प्रोत्साहन दिया गया ताकि स्वदेशी तकनीकी विकसित की जा सके तथा विदेशी तकनीकी पर निर्भरता को समाप्त किया जा सके। यह भी अनुभव किया गया कि तकनीकी ज्ञान से उत्पादकता, आय आदि के उच्च स्तर को प्राप्त किया जा सकता है। अत: आर्थिक विकास के लिए इंजीनियरिंग उद्योग को उच्च प्राथमिकता दी गई।

इसके साथ ही भारतीय योजनाकारों ने निर्यात प्रधान एवं आयात-प्रतिस्थापक उद्योगों की स्थापना को अधिक महत्व दिया ताकि विकास के लिए विदेशी विनिमय की कमी को दूर किया जा सके।

(4) **मूल एवं पूँजीगत वस्तुओं का बढ़ता महत्व (Growing Importance of Basic and Capital Goods) -** भारतीय औद्योगिक ढाँचा मूल एवं पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन पर केन्द्रित होता जा रहा है। 1959 में आधारभूत एवं पूँजीगत वस्तुओं का कुल औद्योगिक उत्पादन में 50% भाग था जो 1991-92 में बढ़कर 79% हो गया। इसी अवधि में कुल रोजगार में इस क्षेत्र का भाग 25% से बढ़कर 52% हो गया। इसी प्रकार मूल्य संवर्द्धन (Value Addition) में भी इस क्षेत्र का अंशदान 37% से बढ़कर 56% हो गया। औद्योगिकीकरण के दौर मे आधारभूत उद्योगों जैसे लोहा व इस्पात, रासायनिक खाद, रसायन, सीमेन्ट, अलौह धातु आदि ने महत्वपूर्ण प्रगति की है जबकि उपभोक्ता उद्योगों का अंशदान सभी दृष्टियों से घटा है।

(5) **प्रभावपूर्ण माँग एवं औद्योगिक विकास (Effective Demand and Industrial Development)-** औद्योगिक विकास प्रभावपूर्ण माँग की संरचना पर भी निर्भर करता हैं। सामान्यत: जिस प्रकार की माँग सरंचना होती है, औद्योगिक विकास भी उसी रूप में होता है। माँग की संरचना आय एवं सम्पत्ति के वितरण से प्रभावित होती है। भारत में माँग की संरचना उच्च आय वर्ग के पक्ष में होने से निजी क्षेत्र द्वारा अच्छे मकान, शहरी सुविधाएँ, यात्रा की श्रेष्ठ सुविधाएँ, विलासिता की वस्तुएँ आदि पर ही ध्यान दिया गया। इससे औद्योगिक ढाँचे का अधिकांश भाग इन्ही वस्तुओं के उत्पादन में संलग्न रहा। रेफ्रिजरेटर, एयरकण्डीशन, टी.वी., कार-स्कूटर आदि टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ शहरी उच्च वर्ग की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करती है जबकि चाय, चीनी, कपड़ा, तेल आदि की मांग जन सामान्य द्वारा की जाती है। भारत के औद्योगिक ढाँचे में विगत वर्षो में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा है तथा इनकी वार्षिक वृद्धि दर 12% से 15% रही है। जबकि गैर टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं (चाय, चीनी, कपडा, घी, तेल) की विकास दर में थोड़ी सी कमी आयी है। यह हमारे औद्योगिक ढाँचे में परिवर्तन को सूचित करता है।

(6) **प्रति श्रमिक शक्ति का उपभोग (Per Worker Consumption of Power) -** सन् 1951 से लेकर अब तक कारखानों एवं खनन क्षेत्र में काम आने वाले श्रमिकों की संख्या में 3 से 4 गुना वृद्धि हुई हैं। लेकिन इसी अवधि में प्रति श्रमिक शक्ति के उपभोग में 10 से 12 गुना तक वृद्धि हुई है। प्रति श्रमिक विद्युत उपभोग में वृद्धि इस बात का सूचक है कि औद्योगिक क्षेत्र में मशीनीकरण, तकनीकी विकास व आधुनिकीकरण का बढ़ावा मिल रहा है। यह पूँजी प्रधान उद्योगों की बढती भूमिका का भी सूचक है। हमारे देश के औद्योगिक श्रमिकों का 27% ही बड़े उद्योगों में कार्यरत है व शेष 73% श्रमिक छोटे उपक्रमों में कार्यरत है, जहाँ विद्युत का उपभोग बहुत कम होता है। अत: औद्योगिक संरचना में परिवर्तन करते हुए लघु व कुटीर उद्योगों में भी मशीनीकरण एवं तकनीकी उन्नयन की आवश्यकता है ताकि प्रति श्रमिक विद्युत उपभोग बढ़े।

(7) **सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की भूमिका (Role of Public Sector and Private Sector) -** भारत में औद्योगिकरण के प्रारम्भिक दौर में बड़े एवं भारी आधारभूत उद्योगों की स्थापना में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व बढ़ा। 1997-98 में भारत के कुल कारखानों की संख्या का

7% सार्वजनिक क्षेत्र में था किन्तु कुल उत्पादन में उनका भाग 32% था। केवल 56% उत्पादन क्षमता निजी क्षेत्र के पास थी जबकि कुल कारखानों के 91% निजी क्षेत्र में थे। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादन क्षमता के अधिक होने का कारण, इनमें पूँजी प्रधान तकनीक को अपनाया जाना था। कर्मचारियों की संख्या एवं मूल्य संवर्द्धन की दृष्टि से निजी क्षेत्र का भाग क्रमश: 69% तथा 60% रहा जबकि सार्वजनिक क्षेत्र का भाग क्रमश: 24% व 28% रहा। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय उद्योगों में निजी क्षेत्र की भूमिका आज भी अधिक महत्वपूर्ण है।

(8) **आधारभूत ढाँचे का विकास (Development of Infrastructure) -** भारत में औद्योगिक विकास एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि आधारभूत संरचना के विकास से ही संभव हुई है। यद्यपि अब भी आधारभूत संरचना के विकास की और आवश्यकता हैं। शक्ति के साधन, सक, भारी मशीनें, रेल्वे, तेल, कोयला, लोहा, इस्पात, सीमेन्ट आदि औद्योगिक विकास का आधार है तो सिंचाई, बध, नहरें भण्डार गृह बैंक, बीमा कम्पनियाँ, यातायात-साधन कृषि का विकास आधार है। इन दोनों का ही योजनाकाल में भारी विकास हुआ है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिकरण के दौर में देश में विकास क्षमता का पर्याप्त निर्माण नही हो पाया हैं। सबसे चिन्ताजनक बात यह है कि दिन-प्रतिदिन औद्योगिक विकास दर घटती जा रही हैं। आज भी हम रोजगार की दृष्टि से तकनीक के चुनाव में असमंजस की स्थिति में है। हमें नयी तकनीक के साथ रोजगारपरक तकनीक भी चाहिए।

9.5 औद्योगिक उत्पादन में उतार-चढ़ाव

2001-02 की औद्योगिक मन्दी काफी व्यापक रही। यह मन्दी विनिर्माण क्षेत्र, विद्युत उत्पादन एवं खनन क्षेत्र तथा अन्तिम उपयोग आधारित समूह (End use based groups) जैसे पूँजीगत वस्तुएँ, उपभोक्ता वस्तुएँ (टिकाऊ एवं गैर-टिकाऊ दोनों) आदि तक व्यापक रही। अत: औद्योगिक विकास की सबसे बड़ी बाधा स्वदेशी एवं विदेशी स्तर पर माँग में कमी होना है। सन् 2001-02 में विनिर्माण वस्तुओं की कीमतों में कमी से इसका पता लगता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी क्षेत्र को कम महत्व दें तो भी स्वदेशी माँग एवं पूर्ति की शक्तियों ही यहाँ औद्योगिक मन्दी के लिए उत्तरदायी है। भारत में औद्योगिक विकास की नीची दर को निम्न तालिका से देखा जा सकता है:

औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर (उपयोग आधारित वर्गीकरण)

(आधार वर्ष 1993-94=100)

(प्रतिशत में)

क्षेत्र	भार	2001-02	2002-03	2004-05	2005-06	2006-07 (अप्रैल-नव.)
बुनियादी माल	35.5	2.6	5.4	5.5	6.7	9.3
पूँजीगत माल	9.3	-3.4	13.6	13.9	15.8	16.1
मध्यवर्ती माल	26.5	1.5	6.4	6.1	2.5	10.9
उपभोक्ता माल जिनमें	28.7	6.0	7.1	11.7	12.0	9.7

– टिकाऊ	5.4	11.5	11.6	14.4	15.3	12.5
– गैर टिकाऊ	23.3	4.1	5.8	10.8	11.0	8.7
औद्योगिक उत्पादन सूचकांक	100.0	2.7	7.0	8.4	8.2	10.6

स्त्रोत : आर्थिक समीक्षा 2006-07, पृष्ठ 137

2000-01 में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर 5% थी जो 1999-2000 की 6.7% से कम थी। वर्ष 2001-02 में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर घटकर मात्र 2.7% रह गयी लेकिन वर्ष 2003-04 में यह बढ़कर 7% हो गई। वर्ष 2004-05 में यह 8.4% तथा 2005-06 में 8.2% रही। 2006-07 के प्रथम नौ महीनों में यह 10.6% रही।

9.6 भारत में छोटे एवं लघु उद्यमों की प्रगति

भारतीय अर्थव्यवस्था में छोटे एवं लघु क्षेत्र का विशेष महत्व है। 2004-05 में देश के विनिर्माण उत्पादन में इनका भाग 39% था तथा देश के कुल निर्यात में इनका योगदान 34% था। छोटे व लघु क्षेत्र में देश के ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के लगभग 34% था। छोटे व लघु क्षेत्र में देश के ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के लगभग 29.5 मिलियन लोगों को रोजगार मिला हुआ है। आर्थिक उदारीकरण एवं बाजार सुधारों की प्रक्रिया से बड़े उद्योगों के साथ-साथ मध्यम एवं छोटे उद्योगों को भी देश के अन्दर एवं बाहरी प्रतिस्पर्धा से सामना करने की इच्छा शक्ति बढ़ी है। इसके कारण इनके बड़े उद्योगों से भी सशक्त एवं गहरे सम्बन्ध बने है। ये उद्योग बेहतर निर्माण तकनीक एवं प्रबन्ध प्रक्रिया में सुधार के लिए भी प्रोत्साहित हुए है। इसके लिए सरकारी नीतियाँ भी प्रोत्साहनकारी रही है। छोटे एवं लघु उद्यमों को उनकी प्रतिस्पर्धा क्षमता बढाने, प्रतिस्पर्धा की चुनौती का सामना करने के लिए एवं वैश्विक बाजार के अवसरों का फायदा उठाने योग्य बनाने के लिए सरकार ने अनेक प्रयास किये है। अब विनिर्माण क्षेत्र में 5 करोड़ रू. से अधिक व 10 करोड़ रू तक के निवेश वाले उद्यम मझौले उद्यम, 25 लाख रू. से अधिक व 5 करोड़ तक निवेश वाले उपक्रम लघु उद्यम तथा 25 लाख रू. तक निवेश वाले उपक्रम छोटे उद्यम की श्रेणी में माने गये है। इसी प्रकार सेवा क्षेत्र में 2 करोड रू. से अधिक व 5 करोड़ रू. तक के निवेश वाले उपक्रम मझोले उद्यम, 10 लाख रू. से अधिक व 2 करोड रू. तक निवेश वाले उपक्रम लघु उद्यम तथा 10 लाख रू. तक निवेश वाले उपक्रम छोटे उद्यम माने जाते है। लघु उद्योगों के लिए आरक्षित मदों की संख्या 22 जनवरी 2007 तक 239 थी। बजट 2007-08 में इन्हें घटाकर 114 कर दिया गया है।

2005-06 में कुल 123.42 लाख छोटी व लघु इकाइयाँ थी जिनमें से 18.71 लाख इकाइयाँ पंजीकृत थी। 2005-06 में इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य 4,76,201 करोड़ रू. (वर्तमान मूल्य पर) था। इन इकाइयों में 29.5 मिलियन लोगों को रोजगार मिला हुआ था। वर्ष 2004-05 में इनके द्वारा 1,24,417 करोड़ रू. मूल्य की वस्तुओं का निर्यात किया गया जो कुल निर्यात का 27.4% था।

9.7 2001 की औद्योगिक मन्दी के कारण

भारतीय अर्थव्यवस्था में वर्ष 2001 एवं 2002 में औद्योगिक मन्दी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगा था। औद्योगिक मन्दी के ढाँचागत एवं चक्रीय कारण निम्नलिखित थे :

(अ) ढाँचागत तत्व (Structural Factors) - इसमें मुख्य कारण निम्नलिखित थे -

(1) भारत में बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के कारण औद्योगिक समायोजन प्रक्रिया (विलय एवं समामेलन) में अत्यधिक विलम्ब।

(2) आधारभूत ढाँचे का अभाव तथा सेवाओं जैसे-यातायात, संचार तथा शक्ति आदि की अपर्याप्त एवं अविश्वसनीय पूर्ति।

(3) औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादकता का निम्न स्तर आर्थिक मंदी के लिए उत्तरदायी हैं। निम्न उत्पादकता का कारण बडे पैमाने की बचतों का लाभ न ले सकना, पुरानी तकनीकी तथा श्रम कानूनों में सुधार न होना है।

(4) ऑटोमोबाइल तथा वास्तविक सम्पति (Real Estate) जैसे क्षेत्रों में माँग में कमी होना भी आर्थिक मंदी के लिए उत्तरदायी था। यह मंदी सम्पत्ति के मूल्यों में कमी, करों में कमी, शुल्कों में कमी (अल्पकाल व मध्यकाल) की आशा के कारण आयी।

(5) वास्तविक ब्याज दर का अधिक होना।

(ब) चक्रीय तत्व (Cyclical Factors)

(1) सामयिक विनियोग चक्र सन् 2004 तक तटकर दरों में पूर्वी एशियाई देशों के स्तर तक कमी करने के सरकारी निर्णय को लागू करना तथा इसे विनियोग निर्णयों का स्थगित होना।

(2) कुछ उद्योगों जैसे, सीमेन्ट, ऑटोमोबाइल तथा इस्पात उद्योग की माँग पर व्यापार चक्रों का प्रभाव पड़ना अर्थात् इनकी माँग में कमी आना।

(3) टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की माँग का स्थायी न होना। ई-व्यवसाय एवं ई-वाणिज्य की शुरूवात, माँग व पूर्ति के प्रबन्ध में सुधार तथा लागतों में कमी कर स्टॉक में माल को न्यूनतम स्तर पर लाने के लिए व्यापार चक्रों द्वारा दबाव।

9.8 औद्योगिक मन्दी को दूर करने के लिए सुधारात्मक उपाय

सरकार ने औद्योगिक मंदी को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुधारात्मक उपाय किये :

(1) अनेक क्षेत्र जैसे बी-से बी वाणिज्य, विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों में उत्पादन गतिविधियों (कुछ अपवादों को छोड़कर), दूर संचार क्षेत्र की गतिविधियाँ, हवाई अड्डा, कोरियर सेवाएँ, आवास विकास, औषधि एवं भेषज, होटल तथा पर्यटन क्षेत्र में शत-प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की अनुमति दी गई ताकि पूँजी की कमी न रहे।

(2) रक्षा उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है। इनमें 26% तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की अनुमति दी गई हे।

(3) गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों (NBFCs) के लिए शत-प्रतिशत विदेशी अशंधारिता की छूट दे दी गई है।

(4) सैनवेट (CENVAT) के 16% की एकल दर से आबकारी करों (Excise Duty) को विवेक सम्मत करना।

(5) केन्द्रीय आबकारी अधिनियम, 1944 का सरलीकरण करना तथा प्रावधानों में भारी कमी करना।

(6) तटकरों (Customs Duty) को 38.5% से 35% करना तथा 10% सरचार्ज हटाना।

(7) ब्याज दरों में कटौती करना।

इन विभिन्न उपायों द्वारा सरकार ने औद्योगिक मन्दी को दूरकर औद्योगिक विकास को बढ़ाने का प्रयास किया है।

9.9 औद्योगिक क्षेत्र की समस्याएँ एवं समाधान

भारत में औद्योगिक विकास की प्रबल सम्भावनाएँ है, लेकिन अनेक बाधाओं एवं समस्याओं के कारण योजनाकाल में अथक प्रयासों के बावजूद देश में वांछित औद्योगिक विकास नहीं हो सका। औद्योगिक क्षेत्र की अनेक समस्याएँ है जिनमें से प्रमुख निम्नांकित है -

(1) **आधुनिकीकरण की समस्या (Problem of Modernisation) -** भारत के अनेक उद्योगों के समक्ष एक प्रमुख समस्या आधुनिकीकरण की है। सूती वस्त्र, लोहा व इस्पात तथा अन्य उद्योगों में 50 से 100 वर्ष पुरानी मशीनें लगी हुई हैं। इन मशीनों को प्रतिस्थापित करने के लिए अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता है। अनेक इकाइयों के पास पूँजी का अभाव है तथा श्रम संघ भी आधुनिकीकरण का विरोध करते है क्योंकि इससे श्रमिकों की छँटनी की आशंका रहती है।

इस समस्या का समाधान वित्तीय संस्थाओं द्वारा आधुनिकीकरण के लिए पर्याप्त वित्त व्यवस्था एवं ऋणों की सुविधा तथा सरकार द्वारा कमजोर इकाइयों को अनुदान देकर किया जा सकता है। आधुनिकीकरण के लिए श्रम संघों को विश्वास में लिया जाना चाहिए तथा छँटनी किये गये श्रमिकों के लिए अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

(2) **स्थापित क्षमता का कम उपयोग (Under Utilization of Installed Capacity) -** अनेक औद्योगिक इकाइयाँ अपनी स्थापित क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाती हैं। जिसके कारा उत्पादन लागत में कमी करना संभव नहीं हो पाया हैं। स्थापित क्षमता का पूरा उपयोग करने में अनेक बाधाएँ रहती है, जैसे-कच्चे माल की कमी, विद्युत आपूर्ति में बाधा, माँग की कमी, परिवहन संबन्धी समस्याएँ, हड़ताल आदि।

कृषि का विकास करके कच्चे माल की समस्या का हल किया जा सकता है। विद्युत आपूर्ति में व्यवधान नहीं आये इसके लिए ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों का विकास करना होगा। अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास से परिवहन सम्बन्धी समस्याओं का भी समाधान किया जा सकता है तथा लोगों की आय बढ़ाकर अतिरिक्त माँग का सृजन किया जा सकता है।

(3) **उच्च उत्पादन लागत (High Cost of Production) -** भारत में औद्योगिक इकाइयों में प्रति इकाई लागत भी ऊँची है। तुलनात्मक रूप से श्रम सस्ता होने के बावजूद कारखानों में लागत अधिक आती है। इसके अनेक कारण है-कुशल एवं आधुनिक तकनीक का अभाव, श्रमिकों की अशिक्षा एवं प्रतिकूल स्वास्थ्य के कारण श्रम उत्पादकता की कमी, अधिक उपरिव्यय एवं अक्षम प्रबन्ध।

इस समस्या के समाधान हेतु श्रमिकों को शिक्षित किया जाना आवश्यक है। साथ ही उनके स्वास्थ्य की देखभाल के लिए पर्याप्त चिकित्सा व्यवस्था की जानी चाहिए। श्रमिकों को प्रबन्ध में भागीदारी एवं वित्तीय प्रेरणाएँ (उत्पादकता से सम्बद्ध) देकर श्रम-उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। कारखानों के आधुनिकीकरण से उपरिव्ययों को कम किया जा सकता है।

(4) **गुणवत्ता सम्बन्धी समस्या (Problems of Quality Product) -** भारत के अनेक उद्योगों में बने उत्पादों की गुणवत्ता पर ध्यान नहीं दिया जाता। इससे भारतीय उत्पादों की देश-विदेश में माँग पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। देश के कारखानों में बनी अनेक औद्योगिक वस्तुएँ खराब गुणवत्ता के कारण विदेशी वस्तुओं की प्रतियोगिता में नही टिक पाती।

इस समस्या के समाधान हेतु आवश्यक है कि औद्योगिक इकाइयों को श्रेष्ठ वस्तुएँ उत्पादित करने के लिए प्रेरित किया जाए। गुणवत्ता सम्बन्धी प्रमाण-पत्र सख्ती से जारी किए जाएँ तथा जो उत्पादक उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं का उत्पादन एव निर्यात करें उन्हें सम्मानित किया जाए।,

(5) **विदेशी प्रतिस्पर्द्धा (Foreign Competition) -** भारतीय उद्योगों को न केवल विदेशी बाजारों अपितु उदारीकरण (भूमण्डलीकरण) की नति अपनाने के परिणामस्वरूप देशी बाजारों में भी विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडता है। सूती वस्त्र उद्योग को विदेशी बाजारों मे निर्यात के लिए जापान, चीन, कोरिया, हाँगकाँग और पाकिस्तान से कट्टर प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। भारत में सूती वस्त्र की उत्पादन लागत दूसरे देशों की तुलना में बहुत अधिक आती है, जिसके कारण भारत में उत्पादित सूत्री वस्त्र उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा में नही टिक पाता। इसी प्रकार इस्पात उद्योग को जापान से प्रतियोगिता करनी पड़ती है। इलेक्ट्रोनिक्स व कम्प्यूटर के क्षेत्र में जापान, कोरिया, अमेरिका इत्यादि देशों से प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है।

इस समस्या का समाधान भारतीय उत्पादों की किस्म व गुणवत्ता में सुधार, लागतों में कमी व विदेशों में भारतीय उत्पादों के प्रति रूचि में वृद्धि द्वारा किया जा सकता है।

(6) **केन्द्रीयकरण की समस्या (Problem of Centralisation) -** देश के अधिकांश उद्योग तमिलनाडू, महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों में केन्द्रित है। उत्तरप्रेदश, पंजाब, जम्मू व कश्मीर, राजस्थान, बिहार व मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में उद्योगों का अपर्याप्त विकास हुआ है। उद्योगों के केन्द्रीयकरण के कारण अन्य अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है। जैसे-गन्दी बस्तियां, वायु-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण, क्षेत्रीय विषमताएँ, आवास, शिक्षा व चिकित्सा सम्बन्धी समस्याएँ इत्यादि।

इस समस्या का समाधान के विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) से सम्भव है। सरकार द्वारा कच्चे माल, परिवहन, जल एवं विद्युत की सुविधा एवं कर-सम्बन्धी रियायतें देकर देश के औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों में उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। राजस्थान जैसे अनेक राज्य उदार औद्योगिक नीति के द्वारा अपना तीव्र गति से औद्योगिक विकास करने के लिए प्रयत्नशील है। आशा है, भविष्य में इस समस्या का समाधान किया जा सकेगा।

(7) **शक्ति के साधनों का आयात (Lack of Power Resources) -** देश के उद्योगों के समक्ष अपने कारखानों को चलाने के लिए शक्ति के साधनों की पर्याप्त एवं निरन्तर आपूर्ति की

समस्या है। भारत के पश्चिमी एवं दक्षिणी क्षेत्र में कोयले के अभाव के कारण अनेक कारखानों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

इस समस्या का समाधान नदी घाटी योजनाओं, सौर ऊर्जा या अणु शक्ति द्वारा बिजली की पूर्ति करके किया जाना चाहिए।

(8) **आधारभूत ढाँचे का अभाव (Lack of Infrastructure) -** औद्योगिक विकास के लिए आधारभूत ढाँचे (Infrastructure) का पर्याप्त विकास होना आवश्यक है। लेकिन देश में परिवहन, विद्युत, संचार व बैंकिंग आदि क्षेत्रों (जो आधारभूत ढाँचे के प्रमुख घटक है) का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। देश में उद्योगों को आर्थिक संरचना के अभाव में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इससे औद्योगिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सरकार को आधारभूत संरचना का निर्माण करके इस समस्या को हल करना चाहिये। आधारभूत संरचना के निर्माण में निजी क्षेत्र के सहयोग एवं साझेदारी को प्रोत्साहित करना चाहिये।

(9) **औद्योगिक रूग्णता की समस्या (Problem of Industrial Sickness) -** देश की अनेक औद्योगिक इकाइयाँ वित्त की कमी, अकुशल प्रबन्ध, ऋणों के भार, फिजूलखर्ची तथा अकुशल उत्पादन, नियोजन के कारण अनार्थिक तथा रूग्ण हो गई हैं। 31 मार्च, 1993 को देश में 2.41 लाख औद्योगिक इकाइयाँ रूग्ण थी जिनकी संख्या 31 मार्च, 1998 में 2.24 लाख रह गई। मार्च, 1997 में इन इकाईयों में बैंकों का 15,682 करोड़ रू. बकाया था। 31 मार्च, 2001 को 2.53 लाख इकाइयाँ रूग्ण थी, उनमें बैंको रहा 25,775 करोड़ रू. बकाया था।

मई, 1987 में स्थापित किए गए औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (BOFR) को अपनी स्थापना से लेकर सितम्बर, 2006 तक रूग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1985 के अन्तर्गत 6991 मामले विचारार्थ प्राप्त हुए। बोर्ड द्वारा निपटाए जाने वाले मामलों की कुल संख्या जो 1997 में 188 थी, 1998 में घटकर 141 रह गई हालांकि 2000 में यह संख्या बढ़कर 385 हो गई। 31 मार्च, 2003 की स्थिति के अनुसार कुल 2867 मामलों का निपटान किया गया। सितम्बर 2006 तक लम्बित कुल मामलों की संख्या 1297 थी।

अनार्थिक इकाइयों को आर्थिक आकार में बदलकर, आधुनिकीकरण, वित्तीय सुविधा में वृद्धि तथा सरकारी अनुदान देकर इस समस्या को हल किया जा सकता है।

(10) **मधुर औद्योगिक सम्बन्धों का अभाव (Lack of Good Industrial Relation) -** भारतीय उद्योगों में मधुर औद्योगिक सम्बन्धों का अभाव है। अत: हडताल, तालाबन्दी तथा औद्योगिक संघर्षो के कारण प्रतिवर्ष करोडों मानव दिवसों की हानि होती है। मजदूर-मालिक एवं प्रबन्ध के पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार किया जाना चाहिए, जिससे उत्पादन में वृद्धि हो सके। श्रमिकों को मौद्रिक तथा अमौद्रिक प्रेरणायें देकर मधुर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते है।

9.10 सारांश

आर्थिक विकास सभी विकासशील देशों की आवश्यकता है। भारत भी एक विकासशील देश है, अत: इसे भी विकास की तीव्र ललक हैं विकास के लिए कृषि, उद्योग या सेवा क्षेत्र पर ध्यान

देना होता है। भारत के योजनाकारों ने तीव्र विकास के लिए देश के औद्योगिकीकरण का मार्ग चुना। औद्योगिक विलास को सुव्यवस्थित करने के लिए तथा क्षेत्रीय विषमताओं में कमी करने के लिए औद्योगिक नीति व औद्योगिक लाइसेन्स नीति की घोषणायें की गई। इनमें समय-समय पर परिवर्तन किये गये सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ औद्योगिकीकरण के लिए निजी क्षेत्र का भी सहयोग लिया गया। बड़े उद्योगों की स्थापना के साथ-साथ लघु व छोटे उद्योगों के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। औद्योगिक क्षेत्र में निवेश वृद्धि के साथ, तकनीकी उन्नयन, आधुनिकीकरण, पेशेवर प्रबन्ध, रूग्ण इकाइयों का पुनर्जीवन आदि अनेक प्रयास किये गये। 2001 में उदारीकरण के एक दशक बाद देश को औद्योगिक मन्दी का सामना करना पड़ा। इससे उबरने के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाये। भारतीय उद्योगों को आधारभूत ढाँचागत सुविधाओं के अभाव, पूँजी की कमी, बिजली की कमी, आधुनिकीकरण की समस्या, निम्न गुणवत्ता का उत्पादन, उच्च लागत, केन्द्रीयकरण की समस्या, स्थापित क्षमता का पूर्ण उपयोग न होना जैसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इसके लिए निजी एवं सरकारी स्तर पर प्रयास किये जा रहे है। आज भारतीय उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय स्पर पर अपना झण्डा गाड़ चुके है। अत: भारत में उद्योगों का भविष्य उज्जवल है।

9.11 शब्दावली

मझौली उद्यम - विनिर्माण क्षेत्र में निवेश 5 करोड़ रूपये से अधिक व 10 करोड़ रूपये तक का हो तथा सेवा क्षेत्र में निवेश 2 करोड़ रूपये से अधिक व 5 करोड़ रूपये तक का हो।

लघु उद्यम - विनिर्माण क्षेत्र में निवेश 25 लाख रूपये से अधिक व 5 करोड़ रूपये तक हो तथा सेवा क्षेत्र में निवेश 10 लाख रूपये से अधिक व 2 करोड़ रूपये से हम हो।

छोटे उद्यम - विनिर्माण क्षेत्र में निवेश सीमा 25 लाख रूपये तक हो तथा सेवा क्षेत्र में निवेश सीमा 10 लाख रूपये तक हो।

सार्वजनिक उपक्रम - जिन उपक्रमों का प्रबन्ध व स्वामित्व सरकार के पास होता है तथा जिनकी 51% अथवा अधिक अंश पूँजी पर सरकार का स्वामित्व होता है वे सार्वजनिक उपक्रम कहलाते है।

9.12 स्वपरख प्रश्न

1. भारत मे पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास पर लेख लिखिए।
2. भारत में औद्योगिक क्षेत्र में हुए संरचनात्मक पखिर्तनों को समझाइए।
3. भारत में वर्तमान औद्योगिक मन्दी के कारण लिखिए एवं अपने सुधारात्मक सुझाव दीजिए।
4. औद्योगिक क्षेत्र की प्रमुख समस्याएँ क्या है? इनके समाधान हेतु सुझाव दीजिए।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए
   (अ) भारत में छोटे व लघु उद्यमों की प्रगति
   (ब) औद्योगिक उत्पादन में उतार- चढ़ाव

इकाई 10

भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या

(Problems of Industrial Sickness in India)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 औद्योगिक रूग्णता का अर्थ

10.3 औद्योगिक रूग्णता के कारण

10.3.1 आन्तरिक कारण

10.3.2 बाह्य कारण

10.4 औद्योगिक रूग्णता का परिणाम

10.5 औद्योगिक रूग्णता के उपचार के उपाय

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली।

10.8 स्वपरख प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- औद्योगिक रूग्णता के स्वरूप और अर्थ का वर्णन कर सकें
- औद्योगिक इकाई के रूग्ण होने के विभिन्न कारणों का ज्ञान प्राप्त कर सकें।
- औद्योगिक रूग्णता के विभिन्न परिणामों का विश्लेषण कर सकें।
- यह बता सकें कि किसी रूग्ण औद्योगिक इकाई का उपचार किस प्रकार किया जाये।

10.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में औद्योगिक विकास तीव्र गति से हुआ है। औद्योगिक विकास के साथ औद्योगिक रूग्णता की समस्या भी बडी तेजी से अपने पैर पसार रही है। जिस प्रकार मानव शरीर बीमार हो जाता है कि उसी प्रकार उद्योग भी बीमार हो जाता है। बीमार उद्योग अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है। औद्योगिक रूग्णता के कारण उद्योग के बन्द होने की स्थिति में बेरोजगारी में वृद्धि होती है, उत्पादन में कमी होती है, तथा विनियोगों पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या सरकारी एवं निजी दोनो क्षेत्रों के उद्योगों मे पायी जाती है। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के वर्तमान युग में यह समस्या विश्वव्यापी हो गई है। इस समस्या के निराकरण के लिए अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या के कारणों और उसे दूर करने के लिये जरूरी सुझावों पर विचार करने से पहले यहां आपको औद्योगिक रूग्णता के अर्थ के बारे में समझाया जा रहा है :-

10.2 औद्योगिक रूग्णता का अर्थ (Meaning of Industrial Sickness) -

सामान्यतया: उस उद्योग को रुग्ण माना जाता है, जो उद्योग वर्तमान में विगत कई वर्षो से हानि अथवा घाटे में चल रहा है तथा आने वाले वर्षो में भी हानि/ घाटे में चलने की सम्भावना हो। अस्वस्थ औद्योगिक कम्पनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम (Sick Industrial Companies(Special Provision)ACT, 1985 के अनुसार उस उद्योग को रूग्ण/अस्वस्थ माना गया है, जिसमें निम्नलिखित बाते पायी जाती हो :-

1. उसे पंजीकृत हुए कम से कम सात वर्ष (वर्तमान में 5 वर्ष) हो चुके हो।
2. उसे इसी वित्तीय वर्ष और इससे पहले वाले वित्तीय वर्ष में नकद हानि (Cash Loss) हुई हो।
3. उसकी शुद्ध मालियत/(Net Worth) शुद्ध मूल्य खत्म हो चुकी है।

सन् 1991 -92 में उक्त अधिनियम में संशोधन द्वारा निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाईयों के साथ सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों को भी सम्मिलित कर लिया गया तथा रजिस्ट्रेशन की अवधि 7 वर्ष से कम कर 5 वर्ष कर दी गई एवं नकद हानि को छोड़ दिया गया।

इस प्रकार हम कह सकते है कि लाभ के बजाय निरन्तर हानि/घाटे में चलने वाली, चालू सम्पत्तियों (Current Assets) पर चालू दायित्वों (Current Liabilities) का निरन्तर आधिक्य बने रहने वाली औद्योगिक इकाइयाँ रूग्ण (अस्वस्थ) होती है। इन इकाइयाँ के रूग्ण या अस्वस्थ होने के अनेक कारण हो सकते है पहले यहां आपको औद्योगिक/रूग्णता/ अस्वस्थता के विभिन्न कारणों को बतलाया जा रहा है।

10.3 औद्योगिक रूग्णता के कारण (Causes of Industrial Sickness)

एक व्यक्ति बीमार या अस्वस्थ क्यो हो जाता है? इसके पीछे कई कारण हो सकते है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के बीमार या अस्वस्थ्य होने के आन्तरिक तथा बाह्य कारण होते है। उसी प्रकार किसी औद्योगिक इकाई के रूग्ण या अस्वस्थ होने के आन्तरिक तथा बाह्य कारण होते है। इन दोनों प्रकार के कारणों को यहां आपको विस्तार से समझाया जा रहा है :

10.3.1 आन्तरिक कारण:-

किसी औद्योगिक इकाई के रूग्ण/अस्वस्थ होने के आन्तरिक कारण उसकी प्रबन्ध व्यवस्था से जुडे होते है ये कारण इकाई स्तर पर ही पैदा होते है। आन्तरिक कारण निम्नलिखित हो सकते है :-

(1) **श्रमिक एवं मालिक के मध्य आपसी विवाद :-** यदि किसी औद्योगिक इकाई के मालिकों एवं प्रबन्धकों तथा श्रमिकों के मध्य आपसी सामंजस्य एवं सद्भाव नही होता है तो उद्योग ठीक ढंग से कार्य नही कर पायेगा। इनके बीच आपसी विवाद, वेतन भत्ते, मजदूरी, बोनस, कार्मिक प्रबन्ध, पदोन्नति, और काम के बंटवारे आदि से सम्बन्धित हो सकते हे। इसका उत्पादन के स्तर एवं माल की किस्म पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है तथा उत्पादन लागतें बढ़ जाती है। आज के

प्रतियोगिता के युग में अन्य औद्योगिक इकाई की तुलना में लाभ कम प्राप्त होने लगते है अन्ततः इकाई हानि के दायरे में आकर रूग्ण हो जाती है।

(2) **नियोजन एवं निर्माण की अवस्था में दोष :-** यदि किसी औद्योगिक इकाई की स्थापना ऐसे स्थान पर कर दी जाती है जहां बिजली, पानी, यातायात, बैंकिंग आदि की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध नही है तो औद्योगिक इकाई को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तथा इन सुविधाओं को जुटाने में अतिरिक्त धन खर्च करना पडता है। इसी प्रकार यदि बाजार का विश्लेषण (कितना उत्पादन किया जाये, कितना माल बिक सकता है) आदि का सही ढंग से नही किया गया तो औद्योगिक इकाई, परेशानी में आ सकती है। इससे सामान्य कार्य संचालन में गडबडी आते ही उनका संतुलन बिगड जाता है और औद्योगिक इकाई रूग्ण/अस्वस्थ हो जाती है।

(3) **पुरानी एवं अनुपयुक्त तकनीकः-** यदि औद्योगिक इकाई में पुरानी एवं अनुपयुक्त तकनीक द्वारा उत्पादन किया जाता है तो उत्पादन लागत अधिक आने के कारण हानि होने लगती है। इससे औद्योगिक इकाई रूग्ण या अस्वस्थ हो जाती है।

(4) **मालिकों में स्वार्थपरता एवं तीव्र मतभेदः-** आजकल औद्योगिक इकाई पर एक पारिवारिक समूह का प्रभावी नियंत्रण होता हैं। यदि उस परिवार के सदस्यों में तीव्र मतभेद उत्पन्न हो जाये या उनमें कुछ सदस्य स्वार्थी हो जाये तो इसका औद्योगिक इकाई के संचालन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। बेईमानी, खातों में हेराफेरी अथवा गड़बडी अपव्यय, कोषो का उद्योग से अलग अन्यत्र उपयोग करने आदि के कारण औद्योगिक इकाई में हानि होने लगती है। इससे औद्योगिक इकाई रूग्ण या अस्वस्थ हो जाती है।

(5) **कुप्रबन्ध :-** औद्योगिक इकाई की प्रबन्ध व्यवस्था यदि कुशल नही होगी तो औद्योगिक इकाई रूग्ण या अस्वस्थ हो जायेगी। उत्पादन, वित्त, विपणन एवं कार्मिक क्षेत्र आदि के बारे में गलत निर्णयों से औद्योगिक इकाई नष्ट भी हो सकती है। जैसे माल के स्टॉक का ठीक प्रबन्ध न करना, मशीनों एवं संयन्त्र के रखरखाव पर ध्यान न देना, कीमत निर्धारण में भूल, बिक्री बढ़ाने के उपाय न करना, उत्पादित माल की किस्म पर ध्यान न देना, दोषपूर्ण लाभांश नीति आदि के कारण आगे चलकर औद्योगिक इकाई रूग्ण या अस्वस्थ हो जाती है।

(6) **अन्य कारणः-** औद्योगिक इकाई को समय पर पर्याप्त मात्रा में वित्त का प्राप्त न होना, उद्यमकर्त्ता का अयोग्य एवं अदूरदर्शी होना आधुनिकीकरण एवं विविधीकरण के प्रयासों का अभाव आदि के कारण भी औद्योगिक इकाई रूग्ण या अस्वस्थ हो जाती है।

10.3.2 बाह्य कारणः- वे कारण जिन पर औद्योगिक इकाई का कोई नियन्त्रण नही होता तथा जो औद्योगिक इकाई के बाहर के होते है उन्हें बाहरी कारणों में सम्मिलित करते है। ये बाहरी कारण निम्नलिखित हो सकते हैः-

(1) **शक्ति** के साधनों की कमी :- औद्योगिक इकाई को सुचारू रूप से चलाने के लिए पर्याप्त मात्रा में शक्ति के साधनों जैसे - विद्युत, कोयला, तेल आदि की आवश्यकता पडती है, यदि ये साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नही होगे तो उत्पादन कम मात्रा में होगा और औद्योगिक इकाई धीरे-धीरे रूग्ण या अस्वस्थ हो जायेगी।

(2) **कच्चे माल की कमी या अपर्याप्तता :-** औद्योगिक इकाई का उत्पादन के लिये कच्चा माल समय पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नही होता है तो भी औद्योगिक इकाई रूग्ण या अस्वस्थ हो जाती है।

(3) **सरकारी नीतियाँ:-** यदि सरकार की आर्थिक नीतियाँ जैसे साख नीति, मूल्य नीति, करारोपण नीति, व्यापार नीति, श्रम नीति आदि दोषपूर्ण हो अथवा उनमें बार-बार परिवर्तन होता है तो औद्योगिक इकाई रूग्ण या अस्वस्थ हो जाती है। विभिन्न प्रकार के करों में वृद्धि से भी इकाई रूग्ण या बीमार हो जाती है।

(4) **तकनीकी परिवर्तन:-** वर्तमान में शोध एवं विकास के द्वारा नई-नई तकनीकों का आविष्कार हो रहा है। ये नवीन तकनीक औद्योगिक इकाई में प्रयुक्त तकनीक के द्वारा उत्पादित वस्तु को अप्रचलित एवं अनुपयुक्त बना देती है जिससे सम्बन्धित औद्योगिक इकाई रूग्ण/बीमार हो जाती है। क्योंकि उसकी वस्तु का विक्रय नही हो पाता है।

(5) **अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में परिवर्तन:-** वर्तमान वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के युग में एक औद्योगिक इकाई पर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव पडा रहा है। पिछले वर्षो में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक ऐसे परिवर्तन हुए है जिनमें औद्योगिक इकाई संकट ग्रस्त होकर रूग्ण/बीमार हो गई है। इन परिवर्तनों में प्रमुख रूप से तेल के मूल्यों में प्रत्याशित वृद्धि, आयात-निर्यात पर रोक, विकसित देशों द्वारा अपनायी जाने वाली संरक्षण कीं नीति, पहले से प्राप्त हो रही विदेशी सहायता पर अचानक प्रतिबन्ध आदि है।

(6) **अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद:-** पिछले कुछ. वर्षो में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की घटनायें अधिक होने लगी है। इन आतंकवादी घटनाओं का भी औद्योगिक इकाई पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उत्पादन व बिक्री में कमी होने कारण औद्योगिक इकाई रूग्ण/बीमार हो जाती है।

(7) **प्राकृतिक संकट:-** प्राकृतिक संकट जैसे बाढ़, भूकम्प, समुद्री तूफान आदि के कारण भी औद्योगिक इकाई रूग्ण/बीमार हो जाती है। क्योंकि इनका औद्योगिक इकाई पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

इस प्रकार आन्तरिक एवं बाह्य कारण औद्योगिक रूग्णता के लिये जिम्मेदार रहे है।

10.4 औद्योगिक रूग्णता के परिणाम (Consequences of Industrial Sickness)

जिस प्रकार किसी एक व्यक्ति के बीमार हो जाने पर उसके गम्भीर परिणाम उसे स्वयं, परिवार, समाज व राष्ट्र को भुगतने पड़ते है उसी प्रकार किसी औद्योगिक इकाई के रूग्ण/बीमार हो जाने के गम्भीर परिणाम उस इकाई के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्र को भुगताने पड़ते है। कभी-कभी इनका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ सकता है। औद्योगिक रूग्णता के परिणाम निम्नलिखित हो सकते है :-

1. **रूग्ण औद्योगिक इकाई से सम्बन्धित इकाइयों पर बुरा प्रभाव :-** एक औद्योगिक इकाई कई दूसरी औद्योगिक इकाईयों से जुडी होती है। एक इकाई के बीमार होने पर उसका प्रभाव सम्बन्धित इकाइयों पर भी पडता है। जैसे यदि लोहा एवं इस्पात उद्योग रूग्ण/बीमार हो जाये तो

इसमें सम्बन्धित कोयला, मैंगनीज, चूना आदि खनन उद्योगों के साथ भारी इंजीनियरिंग, मशीनी औजार, भवन निर्माण रेल परिवहन आदि इकाईयों पर प्रतिकूल प्रभाव पडेगा।

2. **औद्योगिक अशान्ति:-** किसी बड़ी औद्योगिक इकाई के रूग्ण/बीमार हो जाने पर यदि वह बन्द होने लगती है तो श्रम संघों के द्वारा हड़ताल, तोड़फोड़ जैसी घटनायें की जाने लगती है। अन्य श्रम संघ भी इसमें शामिल होते जाते है। इस प्रकार पूरे राष्ट्र में औद्योगिक अशान्ति का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। औद्योगिक अशान्ति के वातावरण में औद्योगिक इकाइयों के उत्पादन में गिरावट होती है जिससे उनके मुनाफे पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

3. **बेरोजगारी में वृद्धि:-** जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में भारत का दूसरा स्थान है। भारत में श्रम की आपूर्ति आवश्यकता से अधिक है। अर्थात् रोजगार के अवसर सीमित है। ऐसी स्थिति में यदि कोई बड़ी औद्योगिक इकाई रूग्ण/बीमार होकर बन्द होती है तो उस औद्योगिक इकाई में कार्य करने वाले व्यक्ति बेरोजगार हो जायेंगे। जिससे देश में बेरोजगारी में वृद्धि होगी।

4. **राष्ट्रीय** संसाधनों की बर्बादी:- एक बडी औद्योगिक इकाई में भूमि, भवन, मशीन एवं संयंत्र आदि संसाधनों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है। यदि ऐसी बडी औद्योगिक इकाई रूग्ण/बीमार होकर बन्द हो जाती है तो उसमें लगे हुए संसाधन बेकार हो जाते है। उनका पूरा उपयोग नही होने के कारण राष्ट्रीय संसाधनों की बर्बादी होती है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में ऐसे संसाधनों की पहले से ही कमी रहती है।

5. **विनियोगकर्त्ताओं** पर बुरा प्रभाव:- यदि कोई बडी औद्योगिक इकाई रूग्ण/बीमार होने के कारण बन्द हो जाती है तो उस औद्योगिक इकाई के अंशों के बाजार मूल्यों में कमी होने लगती है। इससे विनियोगकर्त्ताओं में निराशा उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण शेयर बाजार पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

6. **बैंको एवं वित्तीय संस्थायों को हानि :-** एक बड़ी औद्योगिक इकाई अपनी पूँजी अंशपत्रों एवं ऋण पत्रों को बेचकर एकत्रित करती है। ये अंश पत्र एवं ऋण पत्र सामान्य जनता, बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं द्वारा खरीदे जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर औद्योगिक इकाई, मशीन खरीदने एवं उत्पादन करने हेतु कार्यशील पूँजी जुटाने के लिये बैंको एवं वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेती है। यदि यह औद्योगिक इकाई रूग्ण/बीमार होकर बन्द हो जाती है तो बैकों का पैसा उसमें फंस जाता है। तथा ऋण की वसूली नही हो पाने की कारण बैकों तथा वित्तीय संस्थाओं को भारी हानि उठानी पड़ती है। उधार वसूली की कानूनी प्रक्रिया बहुत जटिल एवं लम्बी होने के कारण समय बहुत लगता है। तथा औद्योगिक इकाई को उधार दी गई पूरी राशि बैकों एवं वित्तीय संस्थाओं को वापिस प्राप्त नही हो पाती है।

7. **सरकार** को राजस्व की हानि:- यदि कोई बडी औद्योगिक इकाई रूग्ण/बीमार होकर बन्द हो जाती है तो सरकार को विभिन्न करों एवं शुल्कों के रूप में प्राप्त होने वाली राशि अब प्राप्त नहीं होती हैं इससे सरकार को भी राजस्व की हानि होती है।

8. **राष्ट्र के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव** :- किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में उद्योग धन्धों की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं यदि राष्ट्र में उद्योग धन्धों का तेजी से विकास होता है और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होती है तो राष्ट्र का आर्थिक विकास भी तेजी से होने लगता है। इसके विपरीत यदि औद्योगिक क्षेत्र रूग्ण/बीमार हो जाता है तो औद्योगिक उत्पादन

पर इस रूग्णता का विपरीत प्रभाव पड़ेगा और राष्ट्र में उद्योग धन्धें बन्द होने लगेंगे। उद्योग धन्धें बन्द होने के परिणामस्वरूप देश में आर्थिक विकास तीव्र गति से नहीं हो पायेगा।

10.5 औद्योगिक रूग्णता के उपचार के उपाय (Remedial Measures for Industrial Sickness)

जिस प्रकार एक डॉक्टर किसी बीमार व्यक्ति का इलाज/उपचार करने से पहले उसके बीमार होने के कारणों का पता लगाता है उसी प्रकार किसी औद्योगिक इकाई के बीमार होने के कारणों का पता लगाकर उसका उपचार करना चाहिए। आपने इकाई के बीमार होने के कारणों को पढ़ लिया है अब यहां आपको इसके इलाज/उपचार के उपाय बताये जा रहे है।

1. **सही समय पर उचित सहायता प्रदान करना :-** किसी औद्योगिक इकाई के रूग्ण होने की प्रारम्भिक अवस्था में ही आवश्यक जाँच पड़ताल कर उसे आवश्यक वित्तीय एवं अन्य सहायता प्रदान करनी चाहिए जिससे उस इकाई को रूग्ण/बीमार होने से बचाया जा सके। सही समय पर यदि सही दवा दी जाये तो बीमारी का इलाज सम्भव है।

2. **संविलयन एवं एकीकरण करना:-** औद्योगिक रूग्णता का उपचार करने के लिए उसी औद्योगिक समूह (Industrial Group) के अन्तर्गत अन्य सुदृढ़ इकाई में बीमार इकाईयों का एकीकरण करके भी इसका इलाज किया जा सकता है। बीमार इकाई का सुदृढ़ इकाई में संविलयन करने से बीमार इकाई को सम्बल, समर्थन एवं मार्गदर्शन प्राप्त होता है। जिससे बीमार इकाई धीरे-धीरे लाभदायक स्थिति में पहुंच सकती है।

3. **सरकार द्वारा बीमार इकाई का प्रबन्ध अपने हाथ में लेना तथा आवश्यकतानुसार उसका राष्ट्रीयकरण करना:-** उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1951 के अनुसार सरकार किसी कुप्रबन्धित औद्योगिक इकाई के प्रबन्ध का अधिग्रहण कर सकती है। सरकार द्वारा इन अधिग्रहित इकाइयों का प्रबन्ध किसी सरकारी निगम अथवा संगठन के माध्यम से किया जाता है। उदाहरण के लिए बीमार सूती मिलों के प्रबन्ध को अधिग्रहित करके (N.T.C.) राष्ट्रीय टेक्सटाइल निगम को सन् 1968 में सौंप दिया। सरकार राष्ट्रहित में बीमार निजी औद्योगिक इकाईयों का राष्ट्रीयकरण भी कर सकती है। राष्ट्रीयकरण के बाद बीमार औद्योगिक इकाईयों का उपचार सरकार द्वारा किया जाता है।

4. **मधुर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करना:-** श्रमिकों एवं मालिकों के मध्य आपसी सम्बन्ध मधुर होने से हड़ताल या तालाबन्दी की स्थिति नही आती है और औद्योगिक अशान्ति का वातावरण उत्पन्न नही होता है। मधुर औद्योगिक सम्बन्ध बनाने के लिए प्रबन्ध मे श्रमिकों की हिस्सेदारी आवश्यक है। साथ ही श्रमिकों को उचित कार्य का वातावरण वेतन भत्ते, बोनस, पदोन्नति, शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए। मधुर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करके औद्योगिक इकाई को रूग्ण/बीमार होने से बचाया जा सकता है।

5. **आधुनिक तकनीक का प्रयोग :-** वर्तमान में आये दिन नई - नई तकनीकों एवं मशीनों का आविष्कार हो रहा है। प्रतियोगिता के इस युग में टिकने के लिये औद्योगिक इकाई का आधुनिक एवं नवीन तकनीक का प्रयोग करना चाहिए। आधुनिक तकनीक का प्रयोग करने से उत्पादन लागत में कमी आती है तथा औद्योगिक इकाई द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तु की

किस्म में भी सुधार होता है। कम लागत पर अच्छी किस्म की वस्तुओं का उत्पादन होने पर बिक्री बढ़ेगी तथा इससे औद्योगिक इकाई के लाभों में वृद्धि होगी। और उससे औद्योगिक इकाई को रूग्ण/बीमार होने से बचाया जा सकता है।

6. **शक्ति के साधनों का विकास:-** औद्योगिक इकाई के सुचारू रूप से संचालित करने के लिए शक्ति के साधनों जैसे विद्युत, कोयला, गैस, तेल आदि की आवश्यकता पड़ती है। अत: इन साधनों का देश में पर्याप्त मात्रा में उत्पादन किया जाये। साथ ही उद्योग धन्धों को पर्याप्त मात्रा में शक्ति के साधन उपलब्ध करवाये जायें। जिससे कि औद्योगिक इकाई को रूग्ण/बीमार होने से बचाया जा सके।

7. **कच्चे माल की समय पर पर्याप्त मात्रा में पूर्ति -** औद्योगिक इकाई को पर्याप्त मात्रा में समय पर कच्चा माल उपलब्ध करवाने के लिए देश में कच्चे माल के उत्पादन को बढ़ावा दिया जावें तथा आवश्यकता पड़ने पर विदेशों से भी कच्चे माल का आयात करना चाहिए। उद्योग धन्धों को सही समय पर पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध करवा के उन्हे रूग्ण/बीमार होने से बचाया जा सकता है।

8. **शोध एवं अनुसंधान कार्यो का प्रोत्साहन:-** जापान की भांति भारत में भी शोध एवं अनुसंधान कार्यो को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। शोध एवं अनुसंधान से आधुनिक तकनीक का विकास होता है।

9. **अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर नियंत्रण:-** आज पूरे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवद का खतरा मंडरा रहा है। भारत में तो यह आतंकवाद पिछले कई वर्षो से अपने पैर पसारे हुए है। आतंकवादी घटनाओं से उद्योग धन्धों को भी नुकसान होता है। अत: उद्योग धंधों को रूग्ण/बीमार होने से बचाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर नियंत्रण करना चाहिए। विश्व के सभी राष्ट्र मिलकर इस आतंकवाद को नष्ट कर सकते है।

10. **अन्य उपाय :-** औद्योगिक इकाई की रूग्णता को दूर करने के उपरोक्त उपायों के साथ कुशल प्रबन्ध व्यवस्था, स्पष्ट एवं स्थिर सरकारी नीति, प्राकृतिक संकटों से निपटने के लिए आपदा प्रबन्धन आदि उपाय भी अपनाने चाहिए।

10.6 सारांश

भारत में औद्योगिक रूग्णता एक गम्भीर राष्ट्रीय समस्या है। औद्योगिक रूग्णता की समस्या का शीघ्र एवं उचित समाधान निकालने के लिये भरसक प्रयास करने चाहिए। क्योंकि यह अनुभव किया गया है कि एक बीमार औद्योगिक इकाई को पुर्नजीवित करने की लागत, समान आकार-प्रकार की वैसे ही नवीन औद्योगिक इकाई की स्थापना करने की लागत से ही कम होती हैं। अत: सरकार, मिल मालिकों, मजदूरी, बैंकों एवं विभिन्न वित्तीय संस्थाओं आदि सभी को मिलजुल कर औद्योगिक रूग्णता की समस्या का समुचित समाधान निकालना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से उसमें काम पर लगे हुए श्रमिकों के रोजगार की रक्षा राष्ट्र हित में होती है।

10.7 शब्दावली

1. **प्रबन्ध** : (Management) किसी संगठन के कार्यो की योजना बनाने, व्यवस्था करने, नेतृत्व करने और उन पर नियंत्रण करने की प्रक्रिया।

2. **नियोजन**: (Planning) किसी कार्य को करने से पहले उद्देश्यों और उपयुक्त कार्यक्रमों को निश्चित करने की प्रक्रिया।
3. **चालू सम्पति**: (Current Assets) ऐसी सम्पतियों जो वर्ष के दौरान अपना रूप बदलती रहती है जैसे-नकद शेष, बैंक में जमा, देनदार, स्टॉक, विनिमय, बिल, पूर्वदत्त खर्चे, उपार्जित आय आदि।
4. **चालू दायित्व:** (Current Liabilities) ऐसे दायित्व जो वर्ष के दौरान अपना रूप बदलते रहते है - जैसे लेनदार, अल्पकालीन ऋण, देय विपत्र, बकाया, खर्चे, अनुपार्जित आय, बैंक ओवरड्राफ्ट आदि।
5. **उत्पादन:** (Production) किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि।
6. **विपणन:** (Marketing) वस्तु को बेचने से सम्बंधित कार्य।
7. **करारोपण नीति:** (Taxation Policy) सरकार की विभिन्न करों से सम्बन्धित नीति।
8. **व्यापार नीति:** (Trade Policy) सरकार की व्यापार से सम्बन्धित नीति।
9. **राष्ट्रीकरण:** (Nationalisation) निजी क्षेत्र की इकाई को सरकार द्वारा अधिग्रहण करना।
10. **उदारीकरण:** (Liberalisation) उद्योगों पर लगे सभी सरकारी नियंत्रणों एवं प्रतिबन्धों में कमी।

10.8 स्वपरख प्रश्न

1. औद्योगिक रूग्णता से आप क्या समझते है? औद्योगिक रूग्णता के विभिन्न कारणों की विवेचना कीजिए।
2. भारत में औद्योगिक रूग्णता के विभिन्न परिणामों की विवेचना कीजिए।
3. औद्योगिक रूग्णता की समस्या को दूर करने के विभिन्न उपायों की व्याख्या कीजिए।
4. भारत में औद्योगिक रूग्णता की समस्या पर एक लेख लिखिए।

इकाई-11

भारत में बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्याएँ

(Problems of Unemployment and Poverty in India)

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 बेरोजगारी का अर्थ एवं परिभाषा

11.4 भारत में बेरोजगारी के प्रकार/प्रकृति

11.5 भारत में बेरोजगारी की मात्रा एवं अनुमान

11.6 भारत में बेरोजगारी के कारण

11.7 गरीबी का अर्थ एवं परिभाषा

11.8 भारत में गरीबी का आकार एवं अनुमान

11.9 भारत में गरीबी के कारण

11.10 भारत में रोजगार सृजन एवं गरीबी उन्मूलन के महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्यक्रमों की वर्तमान स्थिति

11.11 सारांश

11.12 शब्दावली

11.13 स्व-परख प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- भारत में बेरोजगारी की समस्या की प्रकृति एवं सीमा की जानकारी कर सकेंगे।
- भारत में गरीबी की समस्या की प्रकृति एवं सीमा की जानकारी कर सकेंगें।
- भारत में बेरोजगारी एवं गरीबी उत्पन्न होने के कारणों के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में बेरोजगारी एवं गरीबी उन्मूलन के लिए सरकार द्वारा उठाये गये कदमों के बारे में जान सकेंगें।

11.2 प्रस्तावना

योजनाबद्ध आर्थिक विकास के 56 वर्ष पश्चात् भी भारत को बेरोजगारी और गरीबी जैसी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। इन दोनों समस्याओं का आम आदमी की आमदनी और उसके जीवन-स्तर से गहरा सम्बन्ध होता हैं। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की दृष्टि से इन समस्याओं का यथाशीघ्र निराकरण करना आवश्यक हैं। किसी भी रोग का इलाज करने से पूर्व उसकी प्रकृति एवं सीमा का सही-सही ज्ञान होना आवश्यक हैं। इसलिए हम इस इकाई में भारत में बेरोजगारी और गरीबी की समस्या के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

11.3 बेरोजगारी का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Unemployment)

सामान्य बोलचाल की बेरोजगारी का अर्थ व्यक्ति को काम न मिलने से लगाया जाता है, किंतु अर्थशास्त्रीय दृष्टि से इसका अर्थ कुछ भिन्न हैं। अर्थशास्त्रीय दृष्टि से बेरोजगार उस व्यक्ति को कहा जाता हैं जो काम करने के योग्य तथा काम करने के इच्छुक हो, किंतु फिर भी उसे बाजार की प्रचलित मजदूरी की दर पर काम नहीं मिल पाता हों। यदि किसी व्यक्ति को जो काम करने योग्य हैं, किंतु बाजार में प्रचलित मजदूरी - दर पर काम नहीं करना चाहता तो इस स्थिति को बेरोजगारी नही कहा जा सकता। यद्यपि तकनीकी दृष्टि से यह 'स्वैच्छिक बेरोजगारी' (Voluntary Unemployment) कहलाती हैं। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति काम करने की आयु (working age) में नहीं है, लेकिन काम करने का इच्छुक है और उसे समाज में प्रचलित मजदूरी-दर पर काम नहीं मिलता है, तो उसे बेरोजगारी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उदाहरण के लिए 14 वर्ष या उससे कम आयु के बच्चे तथा 60 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्तियों को काम न मिलने पर भी बेरोजगार नहीं माना जा सकता। वैसे भी इस आयु के लोगों से काम लेना शोषण की श्रेणी में आता हैं : जैसे-बाल श्रम शोषण।

संक्षेप में, बेरोजगारी का अर्थ उन व्यक्तियों को काम नहीं मिलने से है जो कार्य करने के इच्छुक एवं योग्य तो है, परन्तु फिर भी उन्हें बाजार की प्रचलित मजदूरी -दर पर काम नहीं मिल पाता। जी. आर. मदान के अनुसार, "उस देश में बेरोजगारी है जहाँ स्वस्थ शरीर वाले ऐसे व्यक्तियों को मजदूरी के सामान्य-स्तर पर काम नहीं मिल पाता जो काम करना चाहतें हैं।" बेरोजगारी के बारे में निम्नांकित बातें महत्वपूर्ण हैं :

1. **काम करने की इच्छा (Willingness to work) :** यदि कोई व्यक्ति काम करने के लिए योग्य तो है, किंतु बाजार की सामान्य मजदूरी की दर पर काम करने के लिए इच्छुक नहीं हैं, तो उसे बेरोजगारी के श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, साधु-सन्यासी तथा भिखारियों को बेरोजगार नहीं माना जा सकता है।

2. **काम करने की योग्यता (Ability to work) :** यदि कोई व्यक्ति काम करने की आयु का नहीं है अथवा शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ है तो उसे बेरोजगार नहीं कहा जाएगा। अत: स्पष्ट है कि बेरोजगारी की स्थिति तभी होगी जब व्यक्ति काम करने के लिए इच्छुक होने के साथ-साथ काम करने के लिए योग्य एवं सक्षम भी हो। यहाँ काम करने की योग्यता का अर्थ है व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होना।

3. **सामान्य मजदूरी की दर पर योग्यतानुसार कार्य न मिलना (Work not according to ability at general wage rate**) : यदि एक व्यक्ति को बाजार में प्रचलित सामान्य मजदूरी की दर पर काम करने के लिए इच्छुक एवं योग्य होते हुए भी उसकी योग्यतानुसार काम नहीं मिल पाता हैं, तो वह बेरोजगार माना जाता है। योग्यतानुसार काम न मिलने पर भी यदि कोई व्यक्ति कार्य कर रहा है, तो वह अल्प-रोजगार कहलाएगा। उदाहरणार्थ, एक एम. बी. बी.

एस. डॉक्टर का कम्पाउण्डर के पद पर कार्य करना तकनीकी दृष्टि से बेरोजगारी है जिसे अल्प-रोजगार कहा जाता है।

11.4 भारत में बेरोजगारी के प्रकार/प्रकृति (Types and Nature of unemployment in India)

भारत में पाई जाने वाली बेरोजगारी के विभिन्न प्रकार/प्रकृति निम्नाकिंत है :

1. **संरचनात्मक बेरोजगारी (Structural Unemployment) :** जब स्थायी रूप से श्रमिकों की मांग उनकी पूर्ति की तुलना में कम रहती हैं, तो ऐसी स्थिति संरचनात्मक बेरोजगारी को जन्म देती हैं। उदाहरणार्थ, हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि के कारण श्रम-शक्ति में निरन्तर वृद्धि हो रही है, किन्तु उत्पादन, विनियोग तथा प्रभावपूर्ण मांग में अपेक्षानुसार वृद्धि न होने के कारण रोजगार के अवसर पर्याप्त मात्रा में नहीं बढ़े हैं, परिणामस्वरूप संरचनात्मक अथवा ढाँचागत बेरोजगारी की स्थिति बनी हुई है। अर्द्ध-विकसित अथवा विकासशील राष्ट्रों में प्राय: इस प्रकार की बेरोजगारी पाई जाती है जो पिछड़े आर्थिक ढांचे का परिणाम होती हैं।

2. **खुली अथवा दृश्य बेरोजगारी (Open or Visible Unemployment) :** काम करने के इच्छुक व योग्य व्यक्तियों को बाजार की प्रचलित सामान्य मजदूरी दर पर काम नहीं मिलता है तो ऐसी बेरोजगारी खुली बेरोजगारी कहलाती है। भारत में खुली बेरोजगारी आम बात है जो जनसंख्या की तीव्र वृद्धि और आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) की दर के कम होने का संयुक्त परिणाम है। नगरीय बेरोजगारी (Urban Unemployment) इसका सुन्दर उदाहरण है। शिक्षित बेरोजगारी भी इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

3. **प्रच्छन्न अथवा अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment) :** इसे 'छिपी हुई (Hidden) बेरोजगारी भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति काम पर तो लगा होता है किंतु उसका उत्पादन में योगदान शून्य अथवा नगण्य होता है। अर्थशास्त्र की भाषा में जब श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity) शून्य होती है (MPL = 0), तो वह अदृश्य बेरोजगार कहलाता है। भारतीय कृषि एवं सार्वजनिक उपक्रम इसके ज्वलन्त उदाहरण है। यह माना जाता है कि भारतीय कृषि में लगभग 20 प्रतिशत व्यक्ति प्रच्छन्न बेरोजगार हैं। यदि उन्हें कृषि कार्य पर से हटा भी दिया जाए तो कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। आजीविका-सुरक्षा (Livelihood Security) के अभाव में बेरोजगारी के इस रूप का पाया जाना साधारण बात है। वस्तुत: यह श्रम-आधिक्य (Surplus Labour) की स्थिति होती है।

4. **मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment) :** जब श्रमिकों को वर्षपर्यन्त काम न मिलकर एक निश्चित समायावधि के लिये ही काम मिलता है तो ऐसी बेरोजगारी मौसमी बेरोजगारी कहलाती है। भारतीय कृषि में श्रमिकों को केवल कृषि के मौसम में ही काम मिलता है। चीनी व गुड़ तथा ऊनी वस्त्र उद्योगों में केवल मौसम विशेष में ही काम मिलता है। यह बेरोजगारी 'समय विशिष्ट' (Time Specific) होती हैं।

5. **शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment) :** जब शिक्षित व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार चाहने पर भी काम नहीं मिलता है तो ऐसी स्थिति शिक्षित बेरोजगारी

कहलाती है। भारत में शिक्षित बेरोजगारी का एक बड़ा भाग 'नगरीय तथा खुली बेरोजगारी' (Urban Open Unemployment) के रूप में विद्यमान है।

बेरोजगारी के उपर्युक्त वर्णित प्रमुख प्रकारों के अतिरिक्त बेरोजगारी के निम्नांकित प्रकार/स्वरूप भी भारत में यदा-कदा देखने को मिल जाते हैं, किंतु इनका अंश (Degree) तथा क्षेत्र व्यापक नहीं है :

6. **तकनीकि बेरोजगारी (Technical Unemployment) :** उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन के कारण यह बेरोजगारी उत्पन्न होती है। स्वचालित मशीनों के बढ़ते प्रयोग के कारण श्रमिकों का विस्थापन (Displacement) होने लगता है। कम्प्यूटर्स का बढ़ता चलन भी एक सीमा तक इस प्रकार की बेरोजगारी के लिये उत्तरदायी है कृषि का मशीनीकरण तथा उद्योगों का स्वचालित करण होने से इन दोनों ही क्षेत्रों में बेरोजगारी का यह स्वरूप दिखाई देता है।

7. **चक्रीय बेरोजगारी (Cyclical Unemployment):** अर्थव्यवस्था के प्रतिसार तथा अवसाद काल में वस्तुओं व सेवाओं की प्रभावपूर्ण मांग में कमी के कारण जो बेरोजगारी फैलती है, उसे चक्रीय बेरोजगारी कहते हैं। 1930 की महान मंदी से उत्पन्न हुई बेरोजगारी इसका विश्वव्यापी उदाहरण है। मूलत: यह आर्थिक गतिविधियों में होने वाले चक्रीय परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होती है।

8. **घर्षणात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment):** इसे आकस्मिक (Sudden) अथवा संक्रमणकालीन (Transitional) बेरोजगारी भी कहते हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी विकास प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होती हैं। जब अर्थव्यवस्था में पुरान उद्योग बीमार अथवा बंद होने लगते हैं तो बेरोजगारी का यह स्वरूप दिखाई देता हैं।

11.5 भारत में बेरोजगारी की मात्रा एव अनुमान (Magnitude and Estimates of Unemployment in India)

भारत में बड़े पैमाने पर विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी पाई जाती हैं, लेकिन अभी तक भी इनकी प्रकृति एवं सीमा (Nature and Extent) की सहीं एवं विश्वसनीय जानकारी नहीं है। इसलिये मोटेतौर पर रोजगार कार्यालय में पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या के आधार पर ही बेरोजगारी का यह अनुमान लगाया जाता है। वास्तव में देखा जाये तो बेरोजगारी का यह अनुमान भी निम्नांकित कारणों से त्रुटिपूर्ण हैं :

1. रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत बेरोजगार प्राय: नगरों के शिक्षित व्यक्ति ही होते हैं,
2. अनेक कारणों की वजह से कई बेरोजगार लोग अपना नाम रोजगार कार्यालय में दर्ज ही नहीं करवाते, तथा
3. अनेक व्यक्तियों के नाम रोजगार प्राप्त हो जाने के पश्चात् भी बेरोजगारों की पंजीकृत सूची से नहीं हटाए जाते।

बेरोजगारी का अनुमान लगाने के लिये 1973 में भारत सरकार ने बी. भगवती की अध्यक्षता में विशेषज्ञों की एक समिति गठित की थी। इस समिति के अनुसार भारत में 1971 में

187 लाख बेरोजगार थे। इनमें से 90 लाख व्यक्तियों के पास कोई काम नहीं था और शेष 97 लाख व्यक्तियों के पास 14 घंटे प्रति सप्ताह काम था। 187 लाख बेरोजगारों में से 161 लाख बेरोजगार व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों के तथा 26 लाख बेरोजगार व्यक्ति नगरीय क्षेत्रों से थे। इस प्रकार देश के कुल बेरोजगारों में ग्रामीण क्षेत्र का भाग 86 प्रतिशत तथा नगरीय क्षेत्र का भाग 14 प्रतिशत था। बेरोजगारों की यह मात्रा कुल श्रम-शक्ति के रूप में 10.4 प्रतिशत थी। ग्रामीण बेरोजगारी का यह भाग 8.। प्रतिशत था।

एक व्यक्ति को 8 घंटे प्रतिदिन के आधार पर यदि वर्ष में 273 दिन का रोजगार प्राप्त हो, तो यह एक 'मानक-मानव वर्ष' (Standard Person Year) कहलाता है। योजना आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समिति की अनुशंसाओं (recommendations) के आधार पर बेरोजगारी का अनुमान लगाने के लिये निम्नांकित तीन मानक अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है :

1. **सामान्य स्थिति बेरोजगारी (Usual Status Unemployment) :** इस प्रमाप के अनुसार ऐसे व्यक्तियों को बेरोजगार माना जाता है जो वर्षपर्यन्त बेरोजगार रहते हैं। यह अवधारणा 'चिरकालिक बेरोजगारी' (Chronic Unemployment) को दर्शाती हैं। यह खुली बेरोजगारी का भी प्रमाप है। यह बेरोजगारी एक व्यक्ति दर (person rate) है।

2. **साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी (Weekly Status Unemployment) :** इस प्रकार की बेरोजगारी की श्रेणी में ऐसे व्यक्तियों को रखा जाता है जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह में एक घंटे का भी रोजगार नहीं मिला हो। यह भी व्यक्तियों की संख्या के रूप में (Person rate) में मापी जाती है। इस प्रकार की बेरोजगारी भी चिरकालिक बेरोजगारी को मापती हैं।

3. **दैनिक स्थिति बेरोजगारी (Daily status Unemployment) :** दैनिक स्थिति बेरोजगारी, बेरोजगारी की व्यापक एवं सर्वोत्तम माप हैं जिसमें चिरकालिक बेरोजगारी तथा अल्प-रोजगार दोनों की स्थिति सम्मिलित होती है। इसे व्यक्ति-दिनों (Person days) या व्यक्ति-वर्षो (Person years) के रूप में मापा जाता है। इसे एक समय दर (Time rate) भी कहते हैं।

भारत में बेरोजगारी की स्थिति को तालिका संख्या 11.1 में दर्शाया गया है। इस तालिका को देखने से पता चलता है कि भारत में योजना बद्ध विकास के 56 वर्षा पश्चात् भी बेरोजगारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। 1950-51 की तुलना में 2004-05 में बेरोजगारों की संख्या लगभग 19 गुना बढ़ गयी है, जो हमारी समग्र आर्थिक विकास नीति (Macro Economic Development Policy) पर एक बड़ा प्रश्नवाचक चिन्ह है। योजना आयोग के 1999-2000 के अनुमान के अनुसार देश में कुल श्रम-शक्ति का 73 प्रतिशत भाग (लगभग 2.6 करोड़ व्यक्ति) बेरोजगार था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में बेरोजगारों की संख्या 53 लाख थी, जो 2004-05 में बढ़कर 750 लाख हो गयी हैं।

तालिका संख्या 11.1

भारत में बेरोजगारों की स्थिति

(1950-51 से 2004-05 तक)

वर्ष	1950-51	1960-61	1990-91	2004-05
बेरोजगारों की संख्या(लाखों में)	40	90	358	750

भारत में बेरोजगारी के समंकों का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्त्रोत राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन (NSSO) है। इस संगठन के 61 वे दौर के सर्वेक्षण से पता चलता है कि देश में 1993-94 से 1999-2000 तक की अवधि की तुलना में 1999-2000 से 2004-05 तक की अवधि में रोजगार वृद्धि अधिक रही हैं, किंतु इसके बावजूद भी देश में निरपेक्ष बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हुई हैं। तालिका संख्या 11.2 में सामान्य स्थिति बेरोजगारी (Usual Status Unemployment) के द्वारा बेरोजगारों की संख्या तथा बेरोजगारों की दर को प्रदर्शित किया गया है। तालिकानुसार 1983 की तुलना में 2004-05 में बेरोजगारों की संख्या तथा बेरोजगारी की दर दोनों में वृद्धि की प्रवृति परिलक्षित हो रहीं है।

तालिका संख्या 11.2

बेरोजगारों की संख्या तथा बेरोजगारी की दर

वर्ष	1983	1993-94	1999-2000	2004-05
बेरोजगारों की संख्या (मिलियन में)	7.98	9.02	10.51	13.10
बेरोजगारों की दर (श्रमशक्ति के प्रतिशत के रूप में)	2.88	2.62	2.78	3.06

स्त्रोत : राष्ट्रीय सेम्पल सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के रोजगार एवं बेरोजगारी पर किये गए विभिन्न सर्वेक्षण दौर

दसवीं योजना (2002-07) में लगभग 50 मिलियन रोजगार अवसरों के सृजन का लक्ष्य रखा गया, जिसमें से 30 मिलियन विकास की सामान्य प्रक्रिया से तथा 20 मिलियन विशेष पहल (Special initiatives) से सृजित किये जाने थे। NSSO के 61वें दौर के समंकों से पता चलता है कि 2000 से 2005 तक की अवधि में 47 मिलियन से अधिक रोजगार अवसरों का सृजन किया जा चुका है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सामान्य सिद्धांत स्थिति (UPS) के आधार पर 1993-94 से 1999-2000 तक के काल में रोजगार में शुद्ध वार्षिक वृद्धि 5.47 मिलियन थी, जो 1999-2000 सें 2004-05 की अवधि मे बढ़कर 9.58 मिलियन हों गयी हैं। 61वे दौर के समंक यह भी बताते हैं कि 1999-2000 सें 2004-05 की अवधि में श्रमशक्ति वृद्धि की दर(2.54 प्रतिशत) रोजगार वृद्धि की वार्षिक दर (2.48 प्रतिशत) से अधिक रही है, जिसके परिणामस्वरूप रोजगार के अवसरों में तेजी से वृद्धि होने के पश्चात् भी बेरोजगारी (सामान्य सिद्धांत स्थिति के आधार पर) की दर 3.06 प्रतिशत थी जो श्रमशक्ति वृद्धि की तुलना में अधिक हैं ।

11.6 भारत में बेरोजगारी के कारण (Causes of Unemployment in India)

भारत में बढती हुई बेरोजगारी के निम्नांकित कारण हैं :

1. **जनसंख्या में तीव्र वृद्धि (Rapid Increase in Population) :** भारतीय जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण श्रम शक्ति में तेज गति से वृद्धि हो रही है, परिणामस्वरूप बेरोजगारी का बढ़ना स्वाभाविक है। 1999-2000 से 2004-05 की अवधि में वार्षिक रोजगार

दर में 2.45 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो उसी काल में श्रम शक्ति वृद्धि की दर 2.54 प्रतिशत से कम थी। विगत कुछ वर्षो को छोड़कर देश की जनसंख्या वृद्धि की दर रोजगार में वृद्धि की दर से कहीं अधिक रही हैं। नियोजन काल में भारत की जनसंख्या तथा श्रमशक्ति बढ़ कर दो गुनी हो गयी है, जबकि रोजगार में इस अनुपात से वृद्धि नहीं हुई। इस कारण से बेरोजगारी का अवशेष (Backlog) प्रत्येक वर्ष बढ़ता जा रहा है।

2. **दोषपूर्ण नियोजन (Faulty Planning):** देश की योजनाबद्ध विकास नीति में एक ओर तो कभी भी रोजगार नीति को सम्मिलित नहीं किया गया, दूसरी ओर श्रम-प्रधान उद्योगों के स्थान पर पूँजी-प्रधान उद्योगों को प्राथमिकता दी गई, परिणामस्वरूप रोजगार के अवसर अपेक्षाकृत कम पैदा हुए। वर्तमान में अपनाई जा रही उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण की नीति में रोजगार हीन विकास (Jobless growth) के मुद्दे को लेकर भारी आलोचना हो रहीं हैं।

3. **मानव शक्ति नियोजन का अभाव (Lack of Man Power Planning):** हमारे देश के कर्णधारों व नीति-नियोजनकर्ताओं ने कभी भी ईमानदारी से मानव शक्ति नियोजन नहीं किया। इसके परिणामस्वरूप हमें यह पता नहीं लगता कि देश के किन-किन क्षेत्रों में कितने व किरन प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता होगी । इस कारण से भारतीय अर्थव्यवस्था के कुछ भागों में दक्ष/कुशल शक्ति का अभाव, रहा, तो दूसरी ओर बेरोजगारी व्यक्तियों की विशाल पंक्ति।

4. **असंगत शिक्षा प्रणाली (Irrelevant Education System) :** भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली रोजगार बाजार मांग प्रेरित (Employment market demand driven) नहीं हैं, फलस्वरूप इसके द्वारा उत्पादित शिक्षित युवा नगरीय व शिक्षित बेरोजगारी को ही बढ़ा रहे हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली न तो रोजगारोन्मुखी (Job oriented) है और न ही दक्षतोन्मुखी (Skill Oriented), वास्तविकता तो यह है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली के माध्यम से शिक्षित युवा न घर के रहते हैं न घाट के - उन्हें न तो सही सैद्धांतिक ज्ञान होता है और न ही व्यवहारोन्मुखी कौशल (Applied Skill)।

5. **पूंजी प्रधान उत्पादन पर बल (Emphasis on Capital Oriented Output) :** पूंजी प्रधान उत्पादन प्रणाली में प्रति इकाई उत्पादन हेतु श्रम की तुलना में पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है। पूँजी प्रधान उत्पादन होने पर अधिक रोजगार सृजन हेतु पूँजी की अधिक आवश्यकता रहती है जिसकी आसानी से व्यवस्था कर पाना भारत सरीखे विकासशील राष्ट्रों के लिए कठिन काम होता है। आधुनिक हाईटेक (High-tech) तथा सोफटेक (Soph-tech) युग में श्रम बचाने वाली उत्पादन तकनीकों को अपनाया जा रहा हैं, जिसका परिणाम बेरोजगारी हमारे सामने है।

6. **श्रम की गतिहीनता (Immobility of Labour):** भारत में श्रम की व्यावसायिक एवं भौगोलिक गतिशीलता अनेक कारणों की वजह से काफी कम है। इस कारण से व्यक्ति बेरोजगार रहने पर भी अपने निवास स्थान अथवा परम्परागत व्यवसाय को छोडकर अन्यत्र काम करना पसन्द नहीं करता, फलस्वरूप प्रच्छन्न बेरोजगारी का शिकार बना रहता है।

7. **धीमी विकास दर (Slow Growth Rate):** आर्थिक सुधारों के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास की दर काफी कम थी। 1980 तक विकास दर औसतन 3 प्रतिशत से

3.5 वार्षिक थी। इसके अलावा देश को विकास की अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा, जैसे विनियोग हेतु पूँजी की कमी, आधारभूत ढाँचे का अभाव तथा नवीनतम प्रौद्योगिकी की अनुपलब्धता आदि। आर्थिक सुधारों के लागू होने के पश्चात भी हम अपने-अपने योजनागत विकास दर के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हुए हैं।

8. अन्य कारण (Other Reasons) :

(i) कृषि कार्यो की मौसमी प्रकृति तथा आज भी कृषि की मानसून पर अत्यधिक निर्भरता:

(ii) सिंचाई साधनों का अभाव,

(iii) कृषि में पूँजी निवेश कम होना कुटीर लघु एवं ग्रामीण उद्योगों की अनदेखी और अवनति,

(iv) उद्योगों की स्थापित क्षमता का पूर्ण प्रयोग न होना,

(v) औद्योगिक प्रतिसार एवं मन्दी (Industrial recession and depression): तथा

(vi) औद्योगिक रूग्णता (Industrial Sickness)

11.7 गरीबी का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Poverty)

सामान्यत: गरीबी से अभिप्राय उस स्थिति से लिया जाता है, जिसमें समाज का एक वर्ग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता है अर्थात् वह न्यूनतम जीवन स्तर को बनायें रखने में असमर्थ होता है। अधिकांश अर्थशास्त्री उन व्यक्तियों को गरीबी की श्रेणी में रखते हैं जो गरीबी रेखा (Poverty line) के नीचे जीवनयापन करते हैं। विश्व बैंक के अनुसार, "यदि कोई व्यक्ति एक डीलर की औसत आय अर्जित करने में असमर्थ है, तो यह माना जाएगा कि वह गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहा हैं।"

भारत में गरीबी को परिभाषित करते समय उचित जीवन-स्तर की अपेक्षा न्यूनतम जीवन स्तर को प्राथमिकता दी जाती हैं। भारतीय योजना आयोग उन व्यक्तियों को निर्धन मानता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन 2400 कैलोरी प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। योजना आयोग ने गरीबी रेखा को प्रतिव्यक्ति मासिक आय के आधार पर भी परिभाषित किया है। आयोग ने हाल ही में गरीबी रेखा को इस आधार पर पुर्नपरिभाषित किया है। आयोग के अनुसार जिन व्यक्तियों की ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति मासिक आय 225 रूपये तथा नगरीय क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति मासिक आय 265 रू० से कम है, गरीबी रेखा से नीचे (Below Poverty Line) माना जाएगा।

गरीबी शब्द का प्रयोग निम्नांकित दो अर्थो में किया जाता है :

1. **निरपेक्ष गरीबी (Absolut Poverty) :** जब व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं (यथा-रोटी, कपड़ा, मकान, न्यूनतम स्वस्थ्य इत्यादि) की पूर्ति हेतु साधन (आय) जुटाने में असमर्थ रहता है, तो ऐसी स्थिति को निरपेक्ष गरीबी कहा जाता है। उदाहरण के लिये योजना आयोग की गरीबी की नवीनतम परिभाषा के संदर्भ में यदि कोई व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्र में 225 रूपये मासिक आय तथा नगरीय क्षेत्र में 265 रू० मासिक आय कमाने में असमर्थ रहता है, तो वह निरपेक्ष दृष्टि से गरीबी रेखा के नीचे होगा और गरीब कहलाएगा। भारतवर्ष में गरीबी का अर्थ

निरपेक्ष गरीबी से ही लिया जाता है तथा गरीबी का अनुमान गरीबी रेखा के आधार पर लगाया जाता है।

2. **सापेक्ष गरीबी (Relative Poverty) :** सापेक्ष गरीबी का आधार आय की असमानताएं होती हैं, इसलिये इसके द्वारा किसी देश में आय के वितरण की विषमताओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सापेक्ष गरीबी ज्ञात करने के लिये एक समय में दो देशों/वर्गो की प्रतिव्यक्ति आय (Per Capita Income) की तुलना की जाती है। यदि एक देश/वर्ग की प्रतिव्यक्ति आय दूसरे देश/वर्ग से अधिक है, तो दूसरा देश/वर्ग पहले देश/वर्ग की तुलना में गरीब कहलाएगा। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं के मूल्यांकन हेतु सापेक्ष गरीबी को ही आधार बनाया जाता है।

11.8 भारत में गरीबी का आकार एवं अनुमान (Size and Estimate of Poverty in India)

भारत में गरीबी के तुलनीय एवं विश्वसनीय समंक/आंकड़े उपलब्ध नहीं है। इसी कारण से इन्हें गरीबी के अनुमान कहा जाता है, किंतु समय-समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों तथा संस्थाओं द्वारा भारत में व्याप्त गरीबी की सीमा तथा प्रकृति (Extent and Nature) के अनुमान लगाए गये हैं। बी. एस. मिन्हास तथा ए. वैद्यनाथन के अनुमान योजना आयोग की परिभाषा पर आधारित हैं, जबकि पी. के. वर्धन, दांडेकर एवं रथ तथा एम. एस. आहलूवालिया के अनुमान गरीबी की स्वयं की परिभाषा पर आधारित हैं। विश्व बैंक ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा एकत्रित आकड़ों को अपने अनुमानों का आधार बनाया है। योजना आयोग लगभग पाँच वर्ष के अन्तराल पर NSSO द्वारा उपलब्ध करवाए गए उपभोग-व्यय के संबंध में व्यापक नमूना सर्वेक्षण के आधार पर राष्ट्रीय एवं राज्य-स्तर पर गरीबी के अनुमान लगाता है। ये अनुमान भारत में गरीबी अनुपात में दीर्घकालीन गिरावट (Secular decline) की प्रवृति को प्रदर्शित करते हैं। दसवीं योजना के अंत (2007) में गरीबी अनुपात घटकर 19.3 प्रतिशत रहने का अनुमान है। तालिका संख्या 11.3 में भारत मे ग्रामीण क्षेत्र, नगरीय क्षेत्र तथा सम्पूर्ण देश में विभिन्न वर्षा के गरीबी अनुपात को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या 11.3

भारत में गरीबी अनुपात के अनुमान

वर्ष	अखिल भारतीय गरीबी		ग्रामीण क्षेत्र गरीबी		शहरी क्षेत्र गरीबी	
	संख्या दस लाख	गरीबी अनुपात %	संख्या दस लाख	गरीबी अनुपात %	संख्या दस लाख	गरीबी अनुपात %
1973-74	321	54.9	261	56.4	60	49.0
1977-78	329	51.3	264	53.1	65	45.2
1983-84	323	44.5	252	45.7	71	40.8
1987-88	307	38.9	232	39.1	75	38.2
1993-94	320	36.0	244	37.3	76	32.4
1999-00	260	26.1	193	27.1	67	23.6

2004-05 (MRP आधारित)	NA	22.0	NA	NA	NA	NA

11.9 भारत में गरीबी के कारण (Causes of Poverty in India)

भारत में गरीबी किसी एक कारण का परिणाम न होकर कारणों के बीच परस्पर सम्बन्धों का परिणाम है। योजना आयोग भारत में गरीबी के लिये दो मुख्य कारणों कों उत्तरदायी ठहराता हैं। प्रथम, अल्प विकास तथा द्वितीय, असमानता। भारत में गरीबी के लिये उत्तरदायी कारण अग्रांकित हैं :

1. **अल्प विकास (Under Development):** महालनोबिस समिति ने देश में गरीबी व निम्न आय-स्तर का प्रमुख कारण अपर्याप्त आर्थिक विकास को माना हैं। अल्प विकास के कारण देश में उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलन दोहन (Optimum Utilisation) नहीं हो सकता है। इस कारण से देश में 'सम्पन्नता में निर्धनता' का विरोधाभास अभी भी दिखाई देता है। 1980 तक देश 'हिन्दू विकास दर' के भँवर जाल में फंसा रहा, जो औसतन से 3 से 3.5 प्रतिशत थी।

2. **आर्थिक असमानता (Economic Inequality):** निःसंदेह योजना काल में देश का काफी विकास हुआ हैं, किंतु उसका अधिकांश लाभ केवल मुटीभर संपन्न वर्ग के हाथों में ही सिमट कर रह गया हैं, परिणामस्वरूप देश में आय एवं धन के वितरण की विषमताएँ बढ़ी हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और नीति निर्माता डी. वी. के. आर. वी. राव. के मतानुसार, "योजनाकाल में गरीब और अधिक गरीब तथा धनी और अधिक धनी हुए हैं। विकास का लाभ कुछ मुटीभर लोगों को ही मिला हैं।" संक्षेप में, धन एवं आय के वितरण की विषमताओं ने समाज में हुजुरजिनके पास है (Haves) तथा मजूर/जिनके पास नहीं है (Haves not's) के स्पष्टत: दो वर्ग खड़े कर दिये हैं।

3. **जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि (Explosive Growth of Population) :** भारत में 1921 के पश्चात से ही जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि का सिलसिला प्रारम्भ हो गया था, जो आज तक भी जारी है। अनेक कारणों की वजह से जन्म दर एवं मृत्यु दर में भारी अन्तर आ जाने के कारण देश की जनसंख्या में भारी वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप देश की वास्तविक विकास दर अत्यन्त कम रही है। उदाहरण के लिए पिछले दशक में देश की जनसंख्या वृद्धि दर 1.93 प्रतिशत रही, जबकि देश की दीर्घकालीन विकास दर 3.8 प्रतिशत थी। अत: इस काल में देश की वास्तविक विकास दर (दीर्घकालीन विकास दर तथा जनसंख्या वृद्धि दर का अन्तर) मात्र 1.9 प्रतिशत ही रही। इससे यह स्पष्ट है कि देश में हुए नियोजित विकास के फल का एक बड़ा भाग तेजी से बढती जनसंख्या की बलि चढ़ गया।

4. **व्यापक बेरोजगारी (Wide Unemployment):** कहा जाता है कि बेरोजगारी और गरीबी दोनों कुरूप एवं जुडवाँ बहिनें है जो मिलकर गरीबी का दुश्चक्र (Vicious Circle of Poverty) खड़ा करती है। रोजगार हीन विकास ने बेरोजगारी रूपी दानव को और अधिक

ताकतवर बनाया हैं, परिणामस्वरूप देश में गरीबी बढ़ी है। इस सन्दर्भ में इस इकाई के प्रारंभ में बेरोजगारी की समस्या का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है।

5. **कृषि की मानसून पर निर्भरता (Dependency of Agriculture on Monsoon) :** पर्याप्त नियोजित विकास के प्रयत्नों के बावजूद भारतीय कृषि आज भी मानसून पर निर्भर है। मानसून की अनिश्चितता तथा अपर्याप्तता ने भारतीय कृषि को काफी नुकसान पहुँचाया है। अतिवृष्टि व अनावृष्टि से बाढ़, अकाल व सूखे की समस्याओं का सामना करना पड़ता है इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के प्राकृतिक प्रकोपों ने भी तीव्र विकास की राह में कठिनाइयाँ पैदा की है। इन सब का सम्मिलित दुष्प्रभाव गरीबी को कम करने के प्रयत्नों को धक्का लगने के रूप में हुआ है।

6. **मुद्रा स्फीति एवं बढ़ती कीमतें (Inflation and Risting Prices):** मुद्रा-स्फीति के कारण न केवल आवश्यक वस्तुओं के दामों में वृद्धि होती हैं, अपितु मजदूरी में होने वाली वृद्धि कीमतों में होने वाली वृद्धि से कम होती है, परिणामस्वरूप लोगों की वास्तविक आय घट जाती है और गरीबी को बढ़ावा मिलता है। भारत में यही स्थिति दृष्टव्य है। तेजी से बढ़ती कीमतों के कारण वस्तुओं के संग्रह की प्रवृति को बल मिलता है, फलस्वरूप वस्तुओं की प्राप्यता कम हो जाती है।

7. **अप्रचलित एवं पुरानी प्रौद्योगिकी (Obsolete and Outdated Technology):** देश के अनेक उद्योग धंधे आज भी अप्रचलित, परम्परागत एवं पुरानी प्रौद्योगिकी को अपनाए हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप साधनों की उत्पादकता एवं साधनों के स्वामियों की आय का स्तर नीचा बना हुआ है और गरीबी के दुश्चक्र को तोड़ना सरकार के लिए सिरदर्द बना हुआ है।

8. **सामाजिक घटक (Social Factor):** अज्ञानता, अंधविश्वास, भाग्यवादिता तथा समाज में व्याप्त अनेक अन्य कुरीतियों के कारण व्यक्ति आज भी अपनी आय का एक बड़ा भाग अनुत्पादक कार्यो पर व्यय करते हैं, परिणामस्वरूप उनको जीवनयापन के लिये आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अभाव की स्थिति में गुजर-बसर करना पड़ता है। संयुक्त प्रथा तथा भाग्यवादिता ने अनेक लोगों को अकर्मण्य एवं दूसरों पर आश्रित बना दिया है और इन प्रवृतियों के कारण व्यक्ति अपनी गरीबी मिटाने के प्रयास ही नहीं करते। वास्तविकता तो यह है कि सामाजिक पिछड़ेपन ने अनेक जाति समूहों को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने ही नहीं दिया है।

9. **शिक्षा एवं कौशल का अभाव (Lack of Education and Skills):** विकास की दो प्राथमिक शर्तें है: प्रथम, शिक्षा तथा द्वितीय, दक्षताओं (कौशल) का निर्माण एवं विकास। भारत इन दोनों ही क्षेत्रों में अभी भी काफी पिछड़ा हुआ है। यह नहीं देश में कार्य के स्थलों पर भी कार्य प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था नहीं है। यद्यपि अब स्थिति में सुधार के संकेत मिलने लगे हैं। शिक्षा एवं कौशल-वृद्धि से उत्पादन एवं उत्पादकता में अप्रत्याशित वृद्धि होती हैं, फलस्वरूप गरीबी और बेरोजगारी का उन्मूलन तेजी के साथ होता है।

10. **निर्धनता का दुश्चक्र (Vicious Circle of Poverty):** प्रो० नर्कसे का मानना है कि गरीबी का कारण गरीबी ही है। उनका कहना है कि "गरीब इसलिये गरीब हैं क्योंकि वे गरीब हैं।" भारतीय अर्थव्यवस्था भी निर्धनता के ऐसे ही दुश्चक्र में फंसी हुई है। जहाँ एक ओर आर्थिक

पिछड़ेपन के कारण उत्पादन, आय एवं रोजगार का स्तर नीचा हैं, वही दूसरी ओर निम्न आय एवं रोजगार के कारण उपभोग, बचत एवं पूंजी निर्माण के निम्न स्तर के कारण आर्थिक पिछड़ापन एवं गरीबी हैं।

11. **अन्य कारण (Other Reasons):**

(i) आधारभूत संरचना का अपर्याप्त विकास,

(ii) साहस व जोखिम उठाने की भावना का अभाव,

(iii) भ्रष्टाचार-इसके कारण गरीबी उन्मूलन के उपाय/प्रयास प्रभावी नहीं हो पा रहे हैं।

(iv) लोकप्रिय आर्थिक नीतियाँ- इनसे लाभ के स्थान पर देश का नुकसान ही अधिक हुआ है। सत्तारूढ़ सरकारों की गरीबी मिटाने की आड़ में गरीबी बरकरार रखने में अधिक अभिरूचि रहीं हैं।

11.10 भारत में रोजगार सृजन एवं गरीबी उन्मूलन के महत्वपूर्ण सरकारी कार्यक्रमों की वर्तमान स्थिति (Current Status of Important Government Programmes for Employment Generation and Poverty Alleviation in India)

भारत सरकार द्वारा बेरोजगारी तथा गरीबी की समस्या को दूर करने के लिए अभी तक दो प्रकार की योजनाएँ प्रारंभ की गई हैं, पहली सम्पूर्ण क्षेत्र का विकास करने वाली योजनाएँ तथा दूसरी गरीबी पर सीधा प्रहार करने वाली योजनाएँ। रोजगार उपलब्ध करवाने तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक योजनाएँ चलाई गई हैं, जिनमें से सरकार द्वारा जो महत्वपूर्ण योजनाएँ एवं कार्यक्रम वर्तमान में संचालित किए जा रहे हैं, उनकी वर्तमान स्थिति का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा हैं:

1. **प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY) :** यह योजना शहरी क्षेत्रों में स्वरोजगार एवं गरीब शिक्षित बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार प्रदान करने के उद्देश्य से 2 अक्टूबर 1993 को प्रारंभ की गयी। 1 अप्रैल 1994 से इस योजना को शहरी क्षेत्रों के शिक्षित बेरोजगारों के लिये भी लागू कर दिया गया है। 24 दिसम्बर, 1998 से इस योजना को और अधिक विस्तृत करते हुए इस योजना के प्रारूप में अब औद्योगिक एवं सीमित व्यापारिक गतिविधियों के अतिरिक्त बागवानी, मछली-पालन व मुर्गी -पालन सहित कृषि एवं सभी आर्थिक व्यवसायों को इसके अन्तर्गत सम्मिलित कर दिया गया है। योजना के प्रारंभ से अब तक लगभग 30 लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर सृजित किये गए है।

2. **स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY) :** इस योजना का श्री गणेश दिसंबर, 1997 में किया गया। इसका वित पोषण केन्द्र व राज्यों के बीच लागत आधार पर 75:25 के अनुपात में होता है। इस योजना का उद्देश्य स्वरोजगार जोखिमों अथवा मजदूरी रोजगार की व्यवस्था के अन्तर्गत शहरी क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे परिवारों के बेरोजगार तथा अर्द्ध-बेरोजगार

युवकों को स्वरोजगार के लिये प्रेरित करना है। इस योजना के लिये केन्द्र एवं राज्यों के बीच लागत आधार पर 75:25 के अनुपात में धन की व्यवस्था होती है। इस योजना के निम्नांकित दो भाग हैं:

(i) शहरी स्वरोजगार कार्यक्रम (USEP)

(ii) शहरी मजदूरी रोजगार योजना (UWEP)

3. **स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY):** इस योजना को 1 अप्रैल, 1999 में समन्वित ग्रामीण विकास योजना (IRDP) तथा अन्य पूर्ववर्ती संबंधित कार्यक्रमों को पुनर्गठित करके प्रारंभ किया गया। ग्रामीण निर्धनों के लिये यह एक स्वरोजगार सृजन कार्यक्रम हैं। जिसका वित पोषण भी केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा लागत आधार पर 75:25 के अनुपात में किया जाता है। इस योजना के अन्तर्गत दिसम्बर 2006 के अन्त तक 24.38 लाख स्वयं सहायता समूहों (SGHs) का गठन किया गया तथा 73.25 लाख स्वरोजगारियों को 16.443.66 करोड़ रूपये की सहायता दी गई।

4. **इंदिरा आवास योजना (IAY):** यह योजना गाँवों में निवास करने वाले गरीबों की आवास संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये 1999-2000 में शुरू की गई हैं। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहें परिवारों को, विशेष कर अनुसूचित जाति/जनजाति एवं बंधुआ मजदूरों को नए मकान बनाने और उनके कच्चे मकानों को सुधारने में सहायता देना हैं। इस कार्य के लिये योजना के अन्तर्गत सहायता अनुदान दिया जाता है। दिसम्बर 2006 के अंत तक इस योजना के अन्तर्गत 153 लाख घरों के निर्माण और सुधार पर 29,246,27 करोड़ रूपये का संचयी व्यय किया जा चुका है।

5. **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY):** राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम के तहत गांवों को शहरों से जोड़ने अर्थात् 'ग्रामीण संयोजनता' (Rural connectivity) के उद्देश्य से 25 दिसम्बर, 2000 को इस योजना का शुभारंभ किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य दसवीं योजना के अंत तक 500 या इससे अधिक आबादी वाले सम्पर्क रहित गाँवों को हर मौसम में अच्छी, सडकों से जोड़ना था। इस योजना के अन्तर्गत दिसम्बर, 2006 तक कुल 1,07,569 कि. मी. सडकों के निर्माण पर 18,281 करोड़ का संचयी व्यय हो चुका था।

6. **सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY) :** इस योजना का शुभारंभ 25 सितम्बर, 2001 को किया गया, जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में अतिरिक्त मजदूरी रोजगार के अवसर प्रदान करना है। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र में भोजन की सुरक्षा के साथ-साथ स्थायी सामाजिक एवं आर्थिक सम्पतियों की भी व्यवस्था की जाती है ताकि धीरे-धीरे गाँव स्वत: विकसित हो सकें। इसमें मजदूरी का एक भाग नकद तथा दूसरा अनाज के रूप में दिया जाता है। इस योजना के नकद भाग का व्यय केन्द्र और राज्य सरकारें 75:25 के अनुपात में वहन करती हैं, जबकि अनाज केन्द्र सरकार राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों को मुफ्त में देती हैं। वर्ष 2006-07 में इस योजना के अन्तर्गत अक्टूबर, 2006 तक 18.41 करोड़ 'व्यक्ति-दिनों का रोजगार' (Person days of employment) सृजित किया गया। इस हेतु केन्द्र सरकार ने 2762 करोड़ रूपये नकद तथा 16.67 लाख टन अनाज प्रदान किया। इसी अवधि में योजना के विशेष भाग

(Special components) के अन्तर्गत प्राकृतिक विपदाओं से प्रभावित राज्यों को 14.44 लाख टन अनाज दिया गया।

7. **वाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना (VAMBAY):** यह योजना 2 दिसम्बर, 2001 में प्रारम्भ की गयी। इसको प्रारम्भ करने का उद्देश्य शहरी गंदी बस्तियों में रहने वाले लोगों के लिये आवास निर्माण तथा उनमें सुधार हेतु सहायता प्रदान करना हैं। इस उद्देश्य के लिए 'निर्मल भारत अभियान' के अन्तर्गत शौचालयों का भी निर्माण करवाया जाता हैं। इस हेतु केन्द्र व राज्य सरकारें 50-50 प्रतिशत की समान हिस्सा राशि उपलब्ध करवाती है। इस योजना के अन्तर्गत मार्च 2006 तक 4,58,630 मकानों तथा 65,331 शौचालयों के लिये केन्द्र सरकार द्वारा 936.63 करोड़ रूपये की संचयी राशि दी जा चुकी हैं। इस योजना को अब दिसम्बर, 2005 में प्रारम्भ की गई 'समेकित आवास व मलिन बस्ती विकास कार्यक्रम (IHSDP) का भाग बना दिया गया हैं।

8. **जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन (JNNURM):** इसका श्री गणेश दिसम्बर, 2005 में किया गया। इस योजना के निम्नांकित दो भाग हैं:

(i) शहरी गरीबों को मूलभूत सेवाएँ (BSUP): इसे शहरों तथा कस्बों में रहने वाले गरीबों को आवास तथा आधारभूत संरचनात्मक सुविधाएँ मुहैया कराने में सहायता देने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया हैं। इस हेतु 63 शहरों का चयन किया गया हैं।

(ii) समेकित आवास तथा मलिन बस्ती विकास कार्यक्रम (IHSDP): यह कार्यक्रम उन शहरों में आवास बस्तियों के उन्नयन/सुधार हेतु प्रारम्भ किया गया, जिनके शहरी गरीबों को मूलभूत सेवाएँ कार्यक्रम (BSUP) में सम्मिलित नहीं किया गया था।

उक्त दोनों कार्यक्रमों हेतु सरकार द्वारा 2006-07 के बजट में 4900 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया।

9. **राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना (NREGS):** गरीबी व बेरोजगारी उन्मूलन की यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण योजना है, जिसे देश के 200 जिलों में 2 फरवरी 2006 को लागू किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य इसमें सम्मिलित होने के इच्छुक प्रत्येक ग्रामीण परिवार के एक सदस्य को कम से कम 100 दिन का गारण्टीशुदा 'अकुशल मजदूरी रोजगार' (Unskilled wage employment) उपलब्ध कराना हैं। इस योजना के अन्तर्गत 5 वर्षो में देश के समस्त जिलों को सम्मिलित कर लिया जाएगा। वैसे तो यह योजना मांग-चालित योजना है, किंतु फिर भी इसके अन्तर्गत जल संरक्षण, सूखा नियन्त्रण, वृक्षारोपण, भूमि, विकास बाढ़ नियन्त्रण, पानी निकासी, बारहमासी सम्पर्क सड़कें इत्यादि कार्यो पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। 2006-07 के बजट में इस योजना हेतु 1130 करोड़ रू० व्यय करने का प्रावधान किया गया है, जिसमें से जनवरी, 2007 तक 6714.98 करोड़ रूपये दिये जा चुके है। 31 जनवरी, 2007 तक इस योजना के अन्तर्गत 3.47 करोड़ रोजगार-पत्रक (Job Cards) जारी किये जा चुके हैं। इनमें से 1.50 करोड़ परिवारों ने रोजगार देने की माँग की थी जिसमें से 147 करोड़ परिवारों को रोजगार दिया जा चुका है।

इस योजनान्तर्गत दिसम्बर, 2006 तक 53.65 करोड़ व्यक्ति दिनों का रोजगार सृजित किया गया जिसमें से 21.13 करोड़ व्यक्ति दिनों का रोजगार महिलाओं के लिये था। इस योजना

की उक्त अवधि में 5.81 लाख कार्य हाथ में लिये गए जिनमें से 2.34 लाख कार्य पूरे किये जा चुके हैं। 2007-08 के बजट में इस योजना को 100 अतिरिक्त जिलों में विस्तारित कर दिया गया हैं।

10. **अन्य योजनाएँ/कार्यक्रम (Other Programmes):**

(i) राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (NSAP) - 15 अगस्त, 1995 इस योजना के निम्नांकित तीन लाभकारी अंग हैं:

(अ) राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन

(ब) राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना

(स) राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना

(ii) ग्रामीण आवासों के लिए ऋण एवं सब्सिडी योजना-1 अप्रैल, 1999

(iii) ग्रामीण आवास और पर्यावरण विकास का अभिनव कार्यक्रम - 13 अप्रैल, 1999

(iv) जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY) - 1 अप्रैल, 1999

(v) समग्र आवास योजना (SAY) 1999-2000

(vi) अन्नपूर्णा योजना (AY) - 1 अप्रैल, 2000

(vii) प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (PBGY) - 2000-2001

(viii) अन्त्योदय अन्न योजना (AAY) - सितम्बर, 2001

(ix) जयप्रकाश रोजगार गारंटी योजना (JPRGY) - 2002-2003

(x) काम के बदले अनाज कार्यक्रम (FFWP) - 14 नवम्बर, 2004

11.11 सारांश (Summary)

योजनाबद्ध आर्थिक विकास के 56 वर्ष पश्चात भी भारत को आम आदमी की आमदनी और उसके जीवन स्तर से गहरा संबंध रखने वाली बेरोजगारी और गरीबी जैसी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से बेरोजगार उन व्यक्तियों को कहा जाता है जो काम करने के योग्य तथा काम करने के इच्छुक हों किंतु फिर भी जिन्हें बाजार की प्रचलित मजदूरी दर पर काम नहीं मिल पाता। इस प्रकार बेरोजगारी के बारे में तीन बातें महत्वपूर्ण होती हैं:

(i) काम करने की इच्छा (ii) काम करने की योग्यता तथा (iii) सामान्य मजदूरी की दर पर योग्यतानुसार कार्य न मिलना।

भारत में पाई जाने बेरोजगारी के मुख्य प्रकार निम्नांकित हैं: (i)संरचनात्मक बेरोजगारी (ii) खुली अथवा दृश्य बेरोजगारी (iii) प्रच्छन्न अथवा अदृश्य बेरोजगारी (iv) मौसमी बेरोजगारी (v) शिक्षित बेरोजगारी (vi) तकनीकी बेरोजगारी (vii) चक्रीय बेरोजगारी (viii) घर्षणात्मक बेरोजगारी।

भारत में मौटेतौर पर रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या के आधार पर ही बेरोजगारी के अनुमान लगाये जाते है। योजना आयोग द्वारा बेरोजगारी का अनुमान लगाने के लिये निम्नाकिंत तीन मानक अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता हैं: (i) सामान्य स्थिति बेरोजगारी (ii) साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी (iii) दैनिक स्थिति बेरोजगारी। भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में बेरोजगारों की संख्या 53 लाख थी, जो 2004-05 में बढ़कर 750

लाख हो गई है। दसवीं योजना (2002-07) में लगभग 50 मिलियन रोजगार अवसरों के सृजन का लक्ष्य रखा गया है।

भारत में बढती हुई बेरोजगारी के निम्नांकित कारण हैं: (i)जनसंख्या में तीव्र वृद्धि (ii) दोषपूर्ण नियोजन (iii) मानव शक्ति नियोजन का अभाव, (iv) असंगत शिक्षा प्रणाली (v) पूंजी प्रधान उत्पादन पर बल, (vi) श्रम की गतिहीनता (vii) धीमी विकास दर (viii) अन्य कारण: (अ) कृषि कार्यो की मौसमी प्रकृति तथा मानसून पर निर्भरता, (ब) सिंचाई साधनों का अभाव, (स) कृषि में पूजी निवेश कम होना तथा कुटीर, लघु एवं ग्रामीण उद्योगों की अनदेखी और अवनति, (द) उद्योगों की स्थापित क्षमता का पूर्ण उपयोग न होना, (य) औद्योगिक प्रतिसार एवं मंदी, तथा (र) औद्योगिक रूग्णता।

गरीबी से अभिप्राय उस स्थिति से होता है जिसमें समाज का एक वर्ग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता है अर्थात् वह न्यूनतम जीवन स्तर को बनाए रखने में भी असमर्थ होता है। भारतीय योजना आयोग उन व्यक्तियों को गरीब मानता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा नगरीय क्षेत्रों में 2100 कैलोरी प्राप्त करने में असमर्थ रहते है। प्रतिव्यक्ति मासिक आय के आधार पर जिन व्यक्तियों की ग्रामीण क्षेत्र में मासिक आय 225 रूपये तथा नगरीय क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति मासिक आय 265 रूपये से कम हैं, उन्हें गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है। सामान्यत: गरीबी शब्द का प्रयोग निम्नांकित दो अर्थो में किया जाता है, (i) निरपेक्ष गरीबी, (ii) सापेक्ष गरीबी। भारत में गरीबी का अर्थ निरपेक्ष गरीबी से ही लिया जाता है तथा गरीबी के अनुमान गरीबी रेखा के आधार पर लगाये जाते हैं, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं के मूल्यांकन हेतु सापेक्ष गरीबी को आधार बनाया जाता है।

भारत में गरीबी के विश्वसनीय एवं तुलनीय आकड़े उपलब्ध नहीं हैं, परंतु बी. एस. मिन्हास, ए. वैद्यनाथन पी. के. बर्धन, दांडेकर एवं रथ, एम. एस. आहलूवालिया तथा विश्वबैक द्वारा भारत में व्याप्त गरीबी की सीमा तथा प्रकृति के अनुमान लगाए गए हैं। योजना आयोग लगभग 5 वर्ष के अन्तराल पर NSSO द्वारा उपलब्ध करवाए गए उपभोग व्यय के संबंध में व्यापक नमूना सर्वेक्षण के आधार पर राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर गरीबी के अनुमान लगाता है।

भारत में गरीबी के लिए उत्तरदायी कारण निम्नांकित हैं: (i) अल्प विकास, (ii) आर्थिक असमानता (iii) जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि, (iv) व्यापक बेरोजगारी, (v) पूंजी की कमी तथा पूंजी निर्माण की धीमी गति, (vi) कृषि की मानसून पर निर्भरता, (vii) मुद्रास्फीति एवं बढ़ती कीमतें, (viii) अप्रचलित एवं पुरानी प्रौद्योगिकी, (ix) सामाजिक घटक, (x) शिक्षा एवं कौशल का अभाव, (xi) निर्धनता का दुश्चक्र तथा (xii) अन्य कारण, (अ) आधारभूत संरचना का अपर्याप्त विकास, (ब) साहस व जोखिम उठाने की भावना का अभाव (स) भ्रष्टाचार, तथा (द) लोकप्रिय आर्थिक नीतियाँ।

रोजगार उपलब्ध करवाने तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा जो महत्वपूर्ण योजनाएँ एवं कार्यक्रम वर्तमान में संचालित किये जा रहे हैं, वह निम्नांकित है : (1) प्रधानमंत्री रोजगार योजना (अक्टूबर, 1993) (2) स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (दिसम्बर, 1997) (3) स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (1 अप्रैल, 1999) (4) इंदिरा

आवास योजना (1999-2000) (5) प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (25 दिसम्बर, 2000) (6) सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (1 अप्रैल, 1999) (7) वाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना (2 दिसम्बर 2001) (8) जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन (दिसम्बर, 2005) (9) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (2 फरवरी 2006) तथा (10) अन्य योजनाएँ/कार्यक्रम (i) राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (15 अगस्त 1995) (ii) ग्रामीण आवासों के लिये ऋण एवं सब्सिडी योजना (1 अप्रैल, 1999) (iii) ग्रामीण आवास और पर्यावरण विकास का अभिनव कार्यक्रम (1 अप्रैल, 1999) (iv) जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (1 अप्रैल, 1999) (v) समग्र आवास योजना (1999-2000) (vi) अन्नपूर्ण योजना (1 अप्रैल, 2000) (vii) प्रधानमंत्री ग्रामोद्य योजना (2000-2001) (viii) अन्त्योदय अन्न योजना (दिसम्बर 2001) (ix) जय प्रकाश रोजगार गारंटी योजना (2002-2003) तथा (x) काम के बदले अनाज कार्यक्रम (14 नवम्बर, 2004)।

11.12 शब्दावली (Key Words)

1. **बेरोजगारी (Unemployment):** बेरोजगारी से तात्पर्य उस से है जब काम करने के योग्य तथा काम करने के इच्छुक व्यक्ति को बाजार की सामान्य मजदूरी की दर पर काम नहीं मिले।
2. **स्वेच्छिक बेरोजगारी (Voluntary Unemployment):** यह वह स्थिति है जब कोई व्यक्ति काम करने के योग्य तो हैं, किंतु बाजार की प्रचलित मजदूरी की दर पर काम करने को तैयार नहीं हैं
3. **संरचनात्मक बेरोजगारी (Structural Unemployment):** इसे चिरकालिक (Secular) बेरोजगारी भी कहते हैं। विकासशील राष्ट्रों में प्राय: ऐसी बेरोजगारी पायी जाती है। इन राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था में ढ़ाँचागत कमजोरियों तथा पिछड़ेपन के कारण श्रम की माँग उसकी पूर्ति से सदैव कम रहती हैं, फलस्वरूप संरचनात्मक बेरोजगारी उत्पन्न होती हैं।
4. **खुली बेरोजगारी (Open Unemployment):** इसे दृश्य बेरोजगारी भी कहा जाता है। जब बेरोजगारी होना आम बात हो जाती है, तो इस स्थिति को खुली बेरोजगारी कहते हैं। संरचनात्मक और नगरीय शिक्षित बेरोजगारी इसके कतिपय उदाहरण हैं।
5. **अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment):** इसे छिपी हुई अथवा प्रच्छन्न बेरोजगारी भी कहते हैं। जब किसी उद्यम/उपक्रम में काम की क्षमता से अधिक श्रमिक लगे होते हैं तो अतिरिक्त लगे श्रमिक अदृश्य बेरोजगार होते हैं। अर्थशास्त्रीय दृष्टि से जब श्रम की सीमान्त उपादकता शून्य होती हैं, तो प्रच्छन्न बेरोजगारी होती है। भारतीय कृषि में लगी अतिरिक्त श्रमशक्ति अदृश्य बेरोजगारी का सुन्दर उदाहरण हैं।
6. **मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment):** जब कामगारों को रोजगार वर्ष के कुछ महीनों के लिए ही मिलता हैं, तो उसे मौसमी बेरोजगारी कहते हैं। बारानी खेती में लगे श्रमिकों को इस बेरोजगारी का दंश झेलना पड़ता हैं।

7. **शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment):** जब शिक्षित व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार काम नहीं मिलता हैं, तो ऐसी बेरोजगारी शिक्षित बेरोजगारी कहलाती है। भारत के नगरों में प्राय: यह बेरोजगारी पायी जाती है।
8. **तकनीकी बेरोजगारी (Technical Unemployment):** उत्पादन प्रविधियों में परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न बेरोजगारी तकनीकी बेरोजगारी कहलाती हैं।
9. **चक्रीय बेरोजगारी (Cyclical Unemployment):** आर्थिक गतिविधियों के उतार -चढ़ाव के कारण उत्पन्न बेरोजगारी चक्रीय बेरोजगारी होती है। प्रतिसार एवं मंदीकाल में ऐसी बेरोजगारी होना स्वाभाविक है।
10. **घर्षणात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment):** इसे आकस्मिक / संक्रमणकालीन बेरोजगारी भी कहते हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी परम्परागत एवं पुराने उद्योगों के रूग्ण एवं बन्द हो जाने के कारण होती हैं।
11. **सामान्य स्थिति बेरोजगारी (Usual Status Unemployment):** इस प्रकार की बेरोजगारी में उन व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है, जो वर्षपर्यन्त बेरोजगार रहते हैं।
12. **साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी (Weekly Status Unemployment):** इस श्रेणी में उन बेरोजगार व्यक्तियों को रखा जाता हैं जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह में एक घंटे का भी रोजगार नहीं मिला हों।
13. **दैनिक स्थिति बेरोजगारी (Daily Status Unemployment):** इस प्रकार की बेरोजगारी को व्यक्ति दिनों अथवा व्यक्ति वर्षो के रूप में मापा जाता हैं।
14. **निरपेक्ष गरीबी (Absolute Poverty):** जब एक व्यक्ति की आय तथा उपभोग इतना कम हो कि वह न्यूनतम भरण-पोषण स्तर से भी नीचे जीवन यापन कर रहा हो तो इस स्थिति को निरपेक्ष गरीबी कहा जाता है। निरपेक्ष गरीबी से अर्थ मनुष्य की मूलभूत (बुनियादी) आवश्यकताओं, जैसे-भोजन, कपड़ा मकान, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं आदि की पूर्ति करने में असमर्थता से होता हैं।
15. **सापेक्ष गरीबी (Relative Poverty):** सापेक्ष गरीबी से अभिप्राय आय की विषमता से होता हैं।
16. **गरीबी रेखा से नीचे (Below Poverty Line-BPL):** भारतीय योजना आयोग के अनुसार वे व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे माने जाएंगे:
    (i) जिन्हें ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा नगरीय क्षेत्र में 2100 कैलोरी मात्रा भोजन में प्राप्त नहीं होती, अथवा
    (ii) जिनकी ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति मासिक आय 225 रूपये तथा नगरीय क्षेत्र में प्रति व्यक्ति मासिक आय 265 रूपये से कम होती हैं।
17. **गरीबी अनुपात (Poverty Ratio):** गरीब व्यक्तियों का कुल जनसंख्या से अनुपात निर्धनता अनुपात कहलाता है।

18. **हिन्दू विकास दर (Hindu Growth Rate):** 1950 से 1980 तक के तीन दशकों की अवधि में हिन्दुस्तान की औसत विकास दर 3 से 3.5 प्रतिशत वार्षिक रहीं। हिन्दुस्तान की विकास दर की इस स्थिर प्रवृति को प्रो० राज कृष्णा ने 'हिन्दू विकास दर' का नाम दिया।
19. **स्वयं सहायता समूह (Self Help Group):** यह समान सोच वाले व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो पारस्परिक लाभ हेतु स्वेच्छा से बनाया जाता है।
20. **अकुशल मजदूरी रोजगार (Unskilled Wage Employment):** यह मजदूरी आधार पर अकुशल श्रमिकों को दिया गया रोजगार होता हैं।
21. **रोजगार पत्रक (Job Cards):** यह एक ऐसा पत्रक है जिसमें रोजगार प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति के बारे में सम्पूर्ण विवरण दिया हुआ होता हैं।
22. **निर्धनता का दुश्चक्र (Vicious Circle of Poverty):** निर्धनता के दुश्चक्र का अर्थ वृताकार ढंग से घूमती हुई ऐसी शक्तियों से होता है। जो एक दूसरे पर इस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रिया करती हैं कि एक निर्धन देश निर्धनता की अवस्था में ही बना रहता है अर्थात् एक ऐसा चक्र जिसका प्रारंभ भी निर्धनता से होता हैं और जिसका अंत भी निर्धनता के रूप में ही होता हैं।

11.13 स्व-परख अभ्यास (Self- Exercises)

लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Short answer questions)

1. बेरोजगारी को परिभाषित कीजिये।
2. गरीबी की अवधारणा स्पष्ट कीजिये।
3. ढाँचागत बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं?
4. अदृश्य बेरोजगारी का आशय स्पष्ट कीजिये।
5. खुली बेरोजगारी से आपका क्या अभिप्राय हैं?
6. मौसमी बेरोजगारी का अर्थ बताइये।
7. सापेक्ष गरीबी का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
8. निरपेक्ष गरीबी का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. भारत में बेरोजगारी पर एक विस्तृत लेख लिखिये।
2. भारत में गरीबी पर एक विस्तृत लेख लिखिये।
3. भारत में बेरोजगारी की मात्रा एवं अनुमानों का वर्णन कीजिये तथा भारत सरकार द्वारा बेरोजगारी का दूर करने के लिए उठाए गये कदमों की व्याख्या कीजिये।
4. भारत में गरीबी के आकार एवं अनुमानों पर प्रकाश डालते हुए बताइये कि भारत सरकार ने गरीबी उन्मूलन के लिए कौन-कौन से कदम उठायें हैं?
5. भारत में गरीबी एवं बेरोजगारी उत्पन्न होने के कारणों पर प्रकाश डालिये तथा यह बताइये कि इन्हें दूर करने के लिए भारत सरकार द्वारा क्या कदम उठाये गये हैं।

इकाई-12

मुद्रा-स्फीति और बढ़ती कीमतों की समस्याएँ
(Problems of Inflation and Rising Prices)

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 मुद्रा-स्फीति का अर्थ एवं परिभाषा

12.4 भारत में मुद्रा-आपूर्ति और इसके संघटक

12.5 भारत में मुद्रा-स्फीति

12.6 योजनाकाल में कीमतों में वृद्धि

12.7 भारत में मुद्रा-स्फीति और बढ़ती कीमतों के कारण

12.8 मुद्रा-स्फीति और कीमतों पर नियंत्रण हेतु सरकार द्वारा उठाये गये कदम

12.9 सारांश

12.10 शब्दावली।

12.11 स्वपरख प्रश्न

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप:

- मुद्रा-स्फीति तथा बढ़ती कीमतों की समस्या के बारे में जाने सकेंगे।
- भारत में मुद्रा-स्फीति और बढ़ती कीमतों की समस्या की तथ्यात्मक स्थिति के बारे में जान सकेगें।

12.2 प्रस्तावना

मुद्रा-स्फीति और बढ़ती कीमतों की समस्याएँ आम आदमी के जीवन स्तर तथा आर्थिक कल्याण से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई हैं। त्वरित आर्थिक क्किास के लिए भी मुद्रा-स्फीति और बढ़ती हुई कीमतों पर अंकुश लगाना अतिआवश्यक है। कीमतों में होने वाले भारी उच्चावयन अर्थव्यवस्था की चूलें हिलाकर रख देते है। प्रथम योजनाकाल के पश्चात् से भारत में कुल मिलाकर कीमतों में वृद्धि का रूख रहा है। हम इस अध्याय में भारत में मुद्रा-स्फीति और बढ़ती कीमतों की समस्याओं के बारे में तथ्य परख जानकारी करेंगे और इस बात को जानने का प्रयास करेंगे कि ये समस्याएँ क्यों उत्पन्न होती है ताकि समय रहते इनका उचित निराकरण किया जा सके।

12.3 मुद्रा-स्फीति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Inflation)

सामान्यत: मुद्रा-स्फीति को मुद्रा की मात्रा में होने वाली वृद्धि और उसके परिणामस्वरूप वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में हुई वृद्धि के अर्थ में लिया जाता है। मुख्य रूप से मुद्रा-स्फीति का यह अर्थ सही हो सकता है, किन्तु अर्थशास्त्रीय दृष्टि से मुद्रा की पूर्ति में होने वाली प्रत्येक वृद्धि कीमतों में वृद्धि को जन्म नहीं देती। प्रो. पीगू (Pigou) मुद्रा-स्फीति को परिभाषित करते हुए लिखते है कि "मुद्रा-प्रसार की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब मौद्रिक आय में उत्पादन की तुलना में अधिक वृद्धि हो जाती है।" प्रो. पीगू उस स्थिति को मुद्रा-स्फीति की संज्ञा देते है जब देश में मुद्रा की आपूर्ति उत्पादित समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा से अधिक हो जाती है जिसके फलस्वरूप सामान्य मूल्य स्तर बढ़ने लगता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए प्रो मीड लिखते है कि "जब अत्यधिक मुद्रा की मात्रा बहुत थोड़ी वस्तुओं और सेवाओं को पीछा करती है तो इस स्थिति को मुद्रा-स्फीति कहते है।"

संक्षेप में कहें तो मुद्रा-स्फीति वह अवस्था जब अर्थव्यवस्था में मुद्रा एवं साख की आपूर्ति देश के कुल उत्पादन से अधिक हो जाती है जिसके कारण वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों मे निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

12.4 भारत में मुद्रा आपूर्ति और इसके संघटक (Money Supply and Its Components in India)

मुद्रा की पूर्ति और मुद्रा-प्रसार में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है क्योंकि अन्य बातें समान रहने पर मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने से सामान्य कीमत स्तर बढ़ता है और मुद्रा की पूर्ति में कमी होने से सामान्य कीमत स्तर घटता है। वैसे भी मुद्रा की पूर्ति और मुद्रा-प्रसार एक दूसरे को प्रभावित करते है, अत: ये एक दूसरे के कारण और प्रभाव (Causes and effect) दोनों हैं।

भारत में मुद्रा आपूर्ति के संघटक (Components of Money Supply in India): मुद्रा आपूर्ति के द्वितीय कार्यकारी दल (Second Working Group on Supply) की अनुशंसाओं के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक देश में मुद्रा पूर्ति का आंकलन निम्नांकित चार संघटकों के आधार पर करता है:

1. M_1 = जनता के पास मुद्रा (करेन्सी नोट व सिक्के) तथा बैंकों की माँग जमाएँ (चालू और बचत बैंक खातों की):
2. M_2 = M_1 + डाकघरों की बचत बैंक जमाएँ
3. M_3 = M_2 + बैंकों कीं सावधि जमाएँ, और
4. M_4 = M_3 + डाकघरों की सम्पूर्ण जमाएँ।

मौद्रिक तरलता के उक्त चार मापों में M_1 मुद्रा आपूर्ति का सर्वाधिक तरल रूप है वस्तुत: यही मुद्रा जनता के द्वारा विनिमय के माध्यम के रूप में वस्तुओं और सेवाओं के लेन-देन तथा भुगतान दावों की अन्तिम अदायगी के लिए प्रयुक्त होती है। जैसे-जैसे हम M_1 से

M_2, M_3 एवं M_4 की तरफ बढ़ते है, वैसे-वैसे मुद्रा की तरलता घटती जाती है अर्थात् हम मुद्रा के 'विनिमय के माध्यम' के रूप से 'मूल्य संचय- के रूप की तरफ बढ़ते जाते है। भारत में मुद्रा पूर्ति के और इसके संघटकों को तालिका संख्या 12.1 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या 12.1

भारत में मुद्रा आपूर्ति और इसके संघटक (करोड़ रूपयों मे)

अन्तिम शुक्रवार को बकाया राशि	1970-71	1980-81	1990-91	2001-01	2004-05
M_1	7,373	23,424	92,892	3,79,791	6,39,784
(अ) जनता के पास मुद्रा	4,371	13, 426	53,048	2,09,562	3,55,768
(ब) बैंको के पास माँग जमाएँ	3,002	9,998	39,844	1,70,229	2,84,017
M_2 (M_1 + डाकघरों की बचत बैंक जमाएँ)	8,363	25,758	97,097	3,84,832	6,44,826
M_3 (M_2 +बैंको की सावधि जमाएँ)	11.019	55,724	2,65,878	13,11,583	22,53,938
M_4 (M_3 +डाकघरों की सम्पूर्ण जमाएँ)	12,202	62,406	2,80,509	13,37,552	22,79,907

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि देश में मुद्रा की आपूर्ति निरन्तर रूप से बढ़ी है। समग्र रूप से योजनाकाल के प्रारम्भिक वर्षो में मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि अपेक्षाकृत कम थी, किन्तु बाद में चलकर यह काफी बढ़ गयी। 1950-51 से 1960-61 तक की 10 वर्ष की अवधि में M_1 4.1 प्रतिशत औसत वार्षिक दर से बढ़ा जबकि इसमें 1960 के दशक की औसत वार्षिक वृद्धि 15 प्रतिशत और 1977 के दशक की वृद्धि लगभग 22 प्रतिशत थी। 1980 के दशक के प्रारम्भिक चार-पाँच वर्षो में यह वृद्धि अपेक्षाकृत कम (14 प्रतिशत) रही। 1970-71 से लेकर 2004 -05 की अवधि में M_1 में लगभग 87 गुना वृद्धि हुई है जो बहुत अधिक एवं स्फीतिकारक है।

पिछले कुछ समय से कुल मुद्रा संसाधनों के रूप में M_3, पर अधिक जो दिया जाने लगा है। इस देश में मुद्रा पूर्ति के व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 1970-71 से लेकर 2004-05 तक की अवधि में M_3 की पूर्ति लगभग 205 गुना बढ़ी है, जो बहुत अधिक और स्फीतिकार रही है।

12.5 भारत में मुद्रा-स्फीति (Inflation in India)

भारत में मुद्रा-स्फीति की माप का सबसे लोकप्रिय आधार 'थोक मूल्य सूचकांक' (Wholesale Price Index) है। भारत में वार्षिक थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति दर को तालिका संख्या 12.2 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या 12.2

वार्षिक थोक मूल्य सूचकांक मुद्रा-स्फीति दर (Annual WPI Inflation Rate)

वर्ष	प्राथमिक वस्तुएँ	ईंधन,ऊर्जा बिजली एवं चिकनाई	विनिर्माण वस्तुएँ	समस्त वस्तुएँ	52 सप्ताह औसत (समस्त वस्तुओं का)
भार (प्रतिशत)	22.0	4.2	63.8	100	100.0
दीर्घकालीन प्रवृत्ति (औसत वार्षिक)					
1991-1996	11.3	11.3	10.1	10.65	-
1996-2001	5.4	13.0	3.1	5.1	-
2001-2006	3.6	8.1	3.9	4.7	-
आधुनिक वार्षिक प्रवृत्ति (Point to point)					
2002-2003	6.1	10.8	5.1	6.5	3.4
2003-2004	1.6	2.5	6.7	4.6	3.5
2004-2005	1.3	10.5	4.6	5.1	6.4
2005-2006	5.4	8.9	1.7	4.1	4.4
2006-2007*	9.76	3.67	5.65-	6.11	4.90
2005-2006*	5.87	7.84	2.32	4.24	4.65

वार्षिक मुद्रा-स्फीति दर में योगदान (समायोजित)

Contribution (Adjusted) to annual inflation rate

(प्रतिशत में)

2006-07*	34.90	13.51	51.58	100	-
2005-06*	29.44	39.79	30.77	100	-

* : As on 43rd week-January 20,2007 and January 21,2006

स्त्रोत आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2006-07

तालिकानुसार 20 जनवरी, 2007 (जो वर्ष 2006-07 का 43 वाँ सप्ताह था) को वार्षिक मुद्रा-स्फीति दर 6.11 प्रतिशत थी, जो विगत वर्ष 2005-06 के समतुल्य सप्ताह (Corresponding week) की मुद्रा-स्फीति की दर (4.24 प्रतिशत) से लगभग 2 प्रतिशत अधिक थी। वर्ष 2006-07 के प्रारम्भ में मुद्रा-स्फीति की दर अपेक्षाकृत कम (3.98 प्रतिशत) थी, किन्तु बाद में उसमें कुल मिलाकर कुछ घटत-बढ़त के साथ वृद्धि की प्रवृत्ति दिखाई थी। 20 जनवरी, 2007 को समाप्त 52 सप्ताह में औसत मुद्रा-स्फीति दर 5 प्रतिशत से कम (4.90 प्रतिशत) रही है। हाल ही के विगत कुछ वर्षो (1988-89, 2000-01, 2003-04, तथा 2004-05) में मुद्रा-स्फीति की यह दर इससे अधिक रही है।

प्राथमिक वस्तुओं की मुद्रा-स्फीति दर 20 जनवरी, 2007 को समाप्त हुए सप्ताह में 9.76 प्रतिशत जो विगत वर्ष के समतुल्य सप्ताह में 5.87 प्रतिशत की दर से काफी अधिक है। इसी प्रकार विनिर्मित वस्तुओं की मुद्रा-स्फीति दर 20 जनवरी, 2007 को समाप्त सप्ताह में 5.65 प्रतिशत थी, जो एक वर्ष पूर्व के समतुल्य सप्ताह की दर (2.32 प्रतिशत) से कहीं अधिक है। आश्चर्यजनक बात यह है कि ईंधन व ऊर्जा समूह में इस अवधि में मुद्रा-स्फीति की दर में गिरावट हुई। इस समूह में विगत वर्ष के समतुल्य सप्ताह में मुद्रा-स्फीति दर 7.84 प्रतिशत थी, वह 20 जनवरी 2007 को समाप्त सप्ताह में गिरकर 3.67 प्रतिशत रही गयी। वर्ष 2006-07 में प्राथमिक वस्तु की ऊँची मुद्रा-स्फीति का प्रमुख कारण गेहूँ दालों, खाद्य तेलों, फल व सब्जियों, मसालों की कीमतों में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होना रहा है। इन वस्तुओं के घरेलू उत्पादन में कमी, इनकी घरेलू माँग में वृद्धि तथा इनकी अन्तराष्ट्रीय कीमतों का ऊँचा होना इनकी कीमतों मे वृद्धि का मुख्य कारण रहा है। कच्चे खनिज तेल (Crude Oil) के अन्तर्राष्ट्रीय दामों में हुई भारी वृद्धि के कारण हमारे देश में भी पेट्रो-उत्पाद के दामों में वृद्धि करनी पड़ी। कच्चे खनिज तेल की कीमत जो 2004 में 38 डालर प्रति बैरल थी, वह 2005 तथा 2006 में बढ़कर क्रमश: 54 तथा 65 डालर प्रति बैरल हो गयी। इसके परिणामस्वरूप जून, 2006 में पेट्रोल व डीजल के घरेलू दामों में वृद्धि करनी पड़ी।

तालिका संख्या 12.3

विभिन्न वस्तु समूहों की मुद्रा-स्फीति दर तथा उनका समग्र मुद्रा-स्फीति दर में योगदान

वस्तु समूह	भार	मुद्रा स्फीति दर (प्रतिशत में)		समग्र मुद्रा-स्फीति दर में योगदान (प्रतिशत में)	
		21, जनवरी, 2006	20, जनवरी 2007	21, जनवरी, 2006	20, जनवरी 2007
1. प्राथमिक वस्तु समूह	22.03	5.87	9.76	29.73	34.87
(i) खाद्य वस्तुएँ	15.40	7.43	9.16	26.18	23.10
(ii) गैर-खाद्य वस्तुएँ	6.14	-1.61	10.17	-2.23	9.21
(iii) खनिज	0.48	34.81	18.23	5.59	2.63
2. ईधन एवं ऊर्जा समूह	14.23	7.84	3.67	40.19	13.51
(i) विद्युत	5.48	2.75	4.93	4.80	5.89
(ii) खजिन तेल	6.99	12.30	3.55	35.30	7.63
3. विनिर्माणकारी वस्तु समूह	63.67	2.32	5.65	31.08	51.53

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2006-07

तालिका संख्या 12.3 से थोक मूल्य सूचकांक में सम्मिलित विभिन्न वस्तु समूहों की मुद्रा-स्फीति दर तथा उसके समग्र मुद्रा-स्फीति दर में योगदान (Contribution in over all

inflation rate) को दर्शाया गया है। थोक मूल्य सूचकांक में सम्मिलित समस्त 435 वस्तुओं को निम्नलिखित तीन समूहों में वर्गीकृत किया गया है:

1. प्राथमिक वस्तु समूह (Primary Articles Group)
2. ईंधन व ऊर्जा समूह (Fuel & Power Group); तथा
3. विनिर्मित वस्तु समूह (Manufactured Product Group)।

20 जनवरी, 2007 को प्राथमिक वस्तुओं का समग्र मुद्रा-स्फीति की दर में 34.87 प्रतिशत का योगदान था। प्राथमिक वस्तुओं की मुद्रा-स्फीति का यदि हम वस्तु-वार विश्लेषण करें, तो खाद्यान्न एवं दालों के 34 समूह में 8 वस्तुओं की मुद्रा-स्फीति दर 5 प्रतिशत से अधिक थी। इन वस्तुओं में उड़द, मूँग, चना, गेंहूँ, मक्का, रागी, ज्वार तथा अरहर सम्मिलित है। सरकार द्वारा गेहूँ व दालों के शुल्क मुक्त आयात के बावजूद भी इनकी कीमतों पर कोई विशेष प्रभाव इसलिए नहीं पड़ा क्योंकि उनकी अन्तर्राष्ट्रीय कीमतें अधिक थी। वर्ष 2006-07 में विश्व में गेहूँ के उत्पादन में भारी कमी का प्रभाव इसकी कीमतों पर पड़ा। गेहूँ की कीमतें जो 2005 (जनवरी-दिसम्बर) के दौरान औसतन 152.4 डालर थी, वह अक्टूबर, 2006 में बढ़कर 212.1 डालर हो गयी। फल व सब्जी के दामों में भी बेतहाशा वृद्धि दर्ज की गयी। आलू, टमाटर, बैंगन, सेव, अंगूर, प्याज, केला, पाइनएपल, संतरे इत्यादि के दामों में भारी वृद्धि हुई-इस कारण इन वस्तुओं को 'उच्च मुद्रा-स्फीति समूह' में रखा गया। चाय, काफी मसालेदार व चटनीदार मसालों के दामों में भी 2006-07 में काफी वृद्धि दर्ज की गयी।

खाद्य पदार्थ समूह में खाने के तेलों में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। 20 जनवरी, 2007 को इनकी कीमतें जनवरी, 2003, 2004 तथा 2005 की कीमतों से अधिक थी। खाद्य तेलों में कीमतों की बढ़ने की प्रवृत्ति नवम्बर 2006 से निरन्तर बनी रही। 20 जनवरी, 2007 के ईंधन व ऊर्जा समूह की वस्तुओं का समग्र मुद्रा-स्फीति की दर में 13.51 प्रतिशत का योगदान था। विनिर्माणकारी उत्पादों का समग्र मुदा-स्फीति दर में 20 जनवरी, 2007 को आधे से भी अधिक (51.53 प्रतिशत) योगदान था। वैसे भी इस समूह की वस्तुओं का थोक मूल्य सूचकांक में सर्वाधिक भार (63.75 प्रतिशत) है। इस समूह में सीमेंट की कीमतें वर्ष-दर वर्ष आधार पर 20 जनवरी, 2007 को लगभग 18 प्रतिशत बढी।

30 आवश्यक वस्तुओं (जिनका थोक मूल्य सूचकांक मे संयुक्त भार 17.63 प्रतिशत है) की समग्र स्फीति दर 20 जनवरी, 2007 को 4.83 प्रतिशत दर्ज की गयी जो एक वर्ष पहले की दर (4 प्रतिशत) से थोड़ी अधिक थी। इन वस्तुओं का समग्र मुद्रा-स्फीति में 13.67 प्रतिशत योगदान था। इन 30 वस्तुओं में से 9 वस्तुओं की कीमतों में या तो कोई बदलाव नहीं हुआ या फिर पिछले वर्ष की तुलना में इनकी कीमतों में गिरावट हुई। इनमें से तीन मदों की मुद्रास्फीति दर 5 प्रतिशत से कम थी।

मुद्रा-स्फीति की प्रतिशत दर के आधार पर विभिन्न आवश्यक वस्तुओं के समूह को तालिका संख्या 12.6 प्रदर्शित किया गया है। इस तालिका को देखने से यह पता चलता है कि 20 जनवरी, 2007 को किन-किन वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि की दर कितनी-कितनी रही है?

तालिका संख्या 12.4

कीमत वृद्धि के अनुरूप आवश्यक वस्तुओं का समूह

(20 जनवरी, 2007 को)

क्रम संख्या	मुद्रा -स्फीति की दर (Rate of Inflation)	मदें/वस्तुए (Item/Commodities)
1.	विगत वर्ष की तुलना में निरपेक्ष कीमतों में कमी अथवा वृद्धि नहीं	आलू, चीनी, नमक, घरेलू, मछली, गुड़, कूकिंग, कोयला, मिट्टी, का तेल, लम्बे कपड़े, धोती, साड़ी इत्यादि।
2.	धनात्मक मुद्रा-स्फीति : 5 प्रतिशत तक	चावल, मसूर, बाजरा ।
3.	वार्षिक मुद्रा-स्फीति : 5 से 10 प्रतिशत तक	-अरहर, सरसों का तेल, दूध, वनस्पति,मटन तथा सुरक्षा
4.	वार्षिक मुद्रा-स्फीति:10 प्रतिशत से अधिक	गेहूँ(11.8 प्रतिशत),चना (28.2 प्रतिशत)चाय (19.4 प्रतिशत) मूँगफली तेल (25.5प्रतिशत), ज्वार (10 प्रतिशत), मूँग (25.8प्रतिशत), उड़द (23.5 प्रतिशत), सूखी मिर्च (62.4 प्रतिशत), आटा (19.6 प्रतिशत), नारियल तेल (13.9 प्रतिशत), घरेलू कपड़े धोने का साबुन(10.3 प्रतिशत), प्याज (28.2 प्रतिशत)

स्त्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2006-07

तालिका संख्या 12.5 में थोक मूल्य सूचकांक की प्रमुख विशेषताओं को दर्शाया गया है। योजना आयोग के सदस्य प्रो. अभिजीत सेन की अध्यक्षता में गठित कार्यदल थोक मूल्य सूचकांक की वर्तमान श्रृंखला में संशोधन हेतु कार्य कर रहा है। आर्थिक सर्वेक्षण 2006-07 के अनुसार इस कार्यदल ने थोक मूल्य सूचकांक का वर्तमान आधार वर्ष 1993-1994 को बदल कर 2000-2001 को आधार वर्ष बनाने का निश्चय कर लिया है।

तालिका संख्या 12.5

थोक मूल्य सूचकांक की प्रमुख विशेषताएँ

क्रम संख्या	विवरण	
1.	भार आवंटन का आधार	1993-84 के थोक सौदा
2.	वर्तमान श्रृंखला का आधार	1993-94
3.	टोकरी में मदों/वस्तुओं की संख्या	435 (98 वस्तुएँ प्राथमिक वस्तु समूह की, 19 वस्तुएँ ईंधन व ऊर्जा समूह की तथा318 वस्तुएँ निर्माणकारी समूह)
4.	केन्द्रो की संख्या	1918 बोलियाँ (Quotation)
5.	सूचकांक का समय विलम्ब	2 सप्ताह

	(Time lag of the Index)	
6.	बारम्बारता (Frequency)	साप्ताहिक

स्त्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2006-07

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Indices) : भारत में चार प्रकार के निम्नांकित उपभोक्ता मूल्य सूचकांक अलग-अलग जनसंख्या समूहों के संदर्भ में वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य मूल्य स्तर में एक निश्चित समयावधि में हुए परिवर्तनों को मापने के लिए प्रयुक्त किये जाते है:

1. **शहरी- गैर शारीरिक कार्मिक उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Indices for Urban Non-Manual Employees) :** यह उपभोक्ता मूल्य सूचकांक शहरी गैर शारीरिक कर्मियों द्वारा काम में ली जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में होने वाले परिवर्तनों को ज्ञात करने के लिए निकाला जाता है। इसका आधार वर्ष 1984-85 है। इसे संक्षेप में CPI-UNME कहते है।

2. **औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Indices for Industrial Workers) :** यह सूचकांक औद्योगिक श्रमिकों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में होने वाले परिवर्तनों को ज्ञात करने के लिए प्रयुक्त किया-जाता है। इसकी गणना का आधार वर्ष 2001 (नई श्रृंखला) है। इसे संक्षेप में CPI-IL के नाम से जाना जाता है।

3. **कृषि श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Indices for Agricultural Labourers):** इस सूचकांक की गणना कृषि श्रमिकों द्वारा प्रयुक्त वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में होने वाली परिवर्तनों को ज्ञात करने के लिए की जाती है। इसकी गणना का आधार वर्ष 1986-87 हैं। इसे संक्षेप में CPI-AL कहते है।

4. **ग्रामीण श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Indices for Rural labourers):** इस सूचकांक की गणना ग्रामीण श्रमिकों द्वारा काम में ली जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों को ज्ञात करने के लिए भी की जाती है। इसे संक्षेप में CPI-RL कहते है।

प्रथम प्रकार का उपभोक्ता मूल्य सूचकांक केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO), सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय द्वारा संकलित एवं निर्गमित (Compiled & released) किया जाता है। शेष तीन उपभोक्ता मूल्य सूचकांक श्रम ब्यूरो, श्रम मंत्रालय द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) द्वारा निर्धारित सामान्य प्रमाप तथा दिशा-निर्देशों के अनुरूप संकलित कर जारी किये जाते है। उक्त चारों उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में से सबसे अधिक प्रचलित औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक है। इस सूचकांक का प्रयोग देश में सरकारी तथा संगठित क्षेत्र में काम करने वाले कामगारों के लिए मजदूरी सूचकांक (Wages Indexation) हेतु काम में लिया जाता है। इस सूचकांक की नई श्रृंखला का आधार वर्ष जनवरी, 2006 से 2001 कर दिया हैं। इस सूचकांक में अप्रैल, 2006 से वृद्धि की प्रवृति परिलक्षित हुई है और इसके आधार पर वर्ष-दर-वर्ष मुद्रा-स्फीति जून 2006 को अपने सात वर्ष के शिखर (7.6 प्रतिशत)

पर थी। दिसम्बर 2006 में यद्यपि इसमें मामूली गिरावट आई, किन्तु फिर भी यह दिसम्बर, 2005 की मुद्रा-स्फीति (5.6 प्रतिशत) से अधिक थी। विभिन्न सूचकांकों पर आधारित मुद्रा-स्फीति की प्रतिशत दर को तालिका संख्या 12.6 में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या 12.8

विभिन्न सूचकांकों के आधार पर मुद्रास्फीति दर

(प्रतिशत में)

वर्ष	**थोक मूल्य सूचकांक**	**उपभोक्ता मूल्य सूचकांक(CPI)**			
	WPI	CPI-UNME	CPI-IW	CPI-AL	CPI-RL
2001-02	3.6	4.3	5.1	1.1	1.3
2002-03	3.4	4.0	3.8	3.2	3.1
2003-04	5.5	3.9	3.7	3.9	3.8
2004-05	6.5	3.8	3.6	2.6	2.6
2005-06	4.4	4.4	4.7	3.9	3.9
2006-07 (अप्रैल-दिसम्बर 06)	5.0	6.6	6.3	7.2	6.9

स्त्रोत आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2006-07

12.6 योजनाकाल में कीमतों में वृद्धि (Rise in Prices during Plan Period)

प्रथम योजनाकाल को छोड़कर (जब कीमतों में मामूली सी गिरावट आई थी), शेष योजनाकालों में भारतीय अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में निरन्तर वृद्धि हुई है। द्वितीय योजनाकाल में कीमतों की औसत वार्षिक वृद्धि दर 6.3 प्रतिशत रही। तृतीय योजनाकाल में 1962 में चीन से युद्ध तथा 1965 में पाकिस्तान से युद्ध हो जाने के कारण कीमतों में बेतहाशा वृद्धि हुई। इस काल में अनाज की कीमतों में 45 प्रतिशत तथा दालों की कीमतों में 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1966 से 69 तक की तीन वार्षिक योजनाओं की अवधि में कीमतें 8.1 प्रतिशत की दर से बढ़ी। चौथी योजनाकाल में कीमत वृद्धि 9 प्रतिशत की दर से हुई तथा छठी योजनाकाल में यह वृद्धि दर 9.3 प्रतिशत रही। 1970-71 से लेकर 1988-89 की अवधि के 18 वर्षो में थोक कीमतें लगभग साढे चार गुना बढ़ गई। वर्ष 1774-75 में कीमतें 25%, 1979-80 में 21 प्रतिशत, 1980-81 में 17 प्रतिशत तथा 1991-92 में 14 प्रतिशत तक बढ़ी। वर्ष 1975-76 में कीमत स्तर में 6.5 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी तथा वर्ष 1977-78 में कीमत स्तर लगभग स्थिर रहा। 1991 से 1996 तक की अवधि में कीमत स्तर में लगभग 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1996 से 2001 तक के काल में कीमतों में हुई वृद्धि इसके पूर्व के पाँच वर्षो की तुलना में आधी (5 प्रतिशत) थी। वर्ष 2001 से लेकर 2006 तक के काल में कीमत स्तर में वृद्धि की रफ्तार और भी कम (4.7 प्रतिशत रही)। किन्तु वर्ष 2006-07 में मुद्रा-स्फीति की दर पुन: तेजी से बढ़ने लगी

और वर्तमान में यह कभी भी 6 प्रतिशत से अधिक बनी हुई है। वर्ष 2007 में मुद्रा-स्फीति अपने उच्चतम शिखर 6.83 प्रतिशत पर पहुँच गयी।

12.7 भारत में मुद्रा-स्फीति तथा बढ़ती कीमतों के कारण (Causes of Inflation and Rising Prices in India)

भारत में मुद्रा-स्फीति तथा वस्तुओं की बढ़ती कीमतें अनेक कारणों का सामूहिक परिणाम है। देश में मुद्रा-स्फीति व बढ़ती कीमतों के लिए निम्नांकित कारण मुख्य रूप से उत्तरदायी रहे है:

1. **सार्वजनिक व्यय में भारी वृद्धि (Heavy Increase in Public Expenditure) :** सम्पूर्ण आयोजन काल में सरकार का विकास तथा गैर-विकास लोक व्यय तेजी से बढ़ा है, परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि होना स्वाभाविक था। उदाहरण के लिए, 1960-61 में कुल सार्वजनिक व्यय सकल घरेलु उत्पाद (GDP) का 15.3 प्रतिशत था, वह बढ़कर 2002-03 में 31.3 प्रतिशत हो गया। कुल सार्वजनिक व्यय का लगभग आधा भाग अनुत्पादक गैर-विकास कार्यो पर व्यय किया जा रहा है।

2. **घाटे का वित्त प्रबन्धन (Deficit Financing) :** सरकार का प्रत्येक बजट घाटा दर्शाता है। जिसका आशय है कि सरकार अपनी आय से ज्यादा व्यय करती है। इस घाटे की पूर्ति रिजर्व बैंक से उधार लेकर की जाती है। अनेक बार वास्तविक बजटीय घाटा अनुमान से कहीं अधिक होता है। उदाहरण के लिए, प्रथम योजनाकाल में घाटा वित्तीयन 333 करोड रूपये का था, जो सातवीं योजनाकाल में 28,256 करोड़ रूपये हो गया जो इस योजना के लिए अनुमानित 14,000 करोड़ रूपये से दुगने से भी अधिक था। 1990-91 में सरकार का राजकोषीय घाटा 37606 करोड़ रूपये था, वह 2006-07 के बजट अनुमानों के अनुसार 1,48,686 करोड़ रूपये हो गया।

3. **अनियमित कृषि संवृद्धि (Erratic Agriculture Growth) :** भारतीय कृषि आज भी एक बड़ी सीमा तक मानसून पर निर्भर है, इसलिए कृषिजन्य खाद्य व गैर-खाद्य पदार्थो का उत्पादन मानसून की निश्चितता, नियमितता तथा पर्याप्तता पर निर्भरत करता है। अनेक बार अकाल, सूखे, बाढ़ तथा अन्य प्राकृतिक प्रकोपों के कारण कृषिजन्य वस्तुओं का उत्पादन गिर जाता है अथवा उनकी संवृद्धि की दर स्थिर नहीं रह पाती। इसके परिणामस्वरूप इन सब वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होना स्वाभाविक है। चूँकि थोक मूल्य सूचकांक में कृषि वस्तुओं का भार ऊँचा है, इसलिए इन वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होने पर सामान्य कीमत स्तर स्वत: ही बढ़ जाता है।

4. **आवश्यक वस्तुओं की जमाखोरी (Hoarding of Essential Commodities) :** कृषिजन्य वस्तुओं के उत्पादन में गिरावट आ जाने पर बड़े किसान और थोक व्यापारी इनकी जमाखोरी करने लगते हैं जिसके कारण कीमतों में वृद्धि होने लगती है। अनेक बार आलू प्याज, गेंहूँ दालों की जमाखोरी के कारण कालाबाजारी तथा मुनाफाखोरी होती रही है।

5. **प्रशासकीय कीमतों में वृद्धि (Increase in Administered Prices) :** सरकार कृषि जिन्सों के लिए प्रत्येक वर्ष 'न्यूनतम समर्थन मूल्य' (Maximum Support Price) घोषित करती है, जो प्राय: विगत वर्ष के मूल्य से अधिक होता है। विगत दो वर्षो से तो सरकार गेहूँ के

लिए घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य के अतिरिक्त बोनस भी और देती रही है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सरकार की कृषि मूल्य नीति कृषि पदार्थो में मूल्य वृद्धि का कारण रही है।

6. **मुद्रा पूर्ति में वृद्धि (Increase in Money Supply) :** देश में मुद्रा की पूर्ति में निरन्तर वृद्धि होते रहने के कारण सामान्य मूल्य स्तर बढ़ा है। 1996-97 से लेकर 2000-01 तक के काल में M_3 में लगभग 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई है तथा 2001-02 में 2004-05 तक के काल M_3 मे वृद्धि की दर लगभग 15 प्रतिशत थी। उक्त दोनों अवधियों में निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) में वृद्धि की दर क्रमश: मात्र 5.4 तथा 6.4 प्रतिशत रही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि देश में मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि की दर वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन से कही अधिक रही है, फलस्वरूप मुद्रा-स्फीति व सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होना नितान्त स्वाभाविक है।

12.8 मुद्रा-स्फीति तथा कीमतों पर नियंत्रण हेतु सरकार द्वारा उठाये गये कदम (Anti-Inflationary Measures taken up by the Govt.)

वर्ष 2006-07 मे मुद्रा-स्फीति की दर 6.83 प्रतिशत तक पहुँच गयी थी, इसलिए मुद्रा-स्फीति तथा आवश्यक वस्तुओं की तेजी से बढती कीमतों पर अंकुश लगाना सरकार की उच्च प्राथमिकता में आ गया। मुद्रा-स्फीति तथा बढती कीमतों पर काबू पाने के लिए भारत सरकार ने हाल ही में निम्नांकित कदम उठाये है:

1. गेहूँ की घरेलू आपूर्ति में सुधार हेतु राज्य व्यापार निगम (STC) ने 55 लाख टन गेहूँ का आयात किया।
2. 27 जून, 2006 को निजी क्षेत्र को 5 प्रतिशत शुल्क पर गेहूँ आयात की अनुमति प्रदान की गयी तथा 9 सितम्बर, 2006 से शुल्क मुक्त आयात की अनुमति दी गयी।
3. 8 जून, 2006 से दालों को शून्य शुल्क पर आयात करने की अनुमति प्रदान की गयी तथा 22 जून, 2006 को दालों के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।
4. प्रत्येक आवश्यक वस्तु की कीमतों पर समीप निगरानी की साप्ताहिक व्यवस्था की गयी। बाद में चलकर आवश्यक वस्तुओं की कीमतों पर निगरानी हेतु प्रधानमंत्री कार्यालय में एक प्रकोष्ठ (Cell) गठित किया गया, जो प्रधानमंत्री की प्रत्यक्ष निगरानी में काम करता है।
5. गेहूँ चीनी तथा दालों की कीमतों में भविष्य में होने वाले उच्चावचनों को रोकन हेतु 'वायदा बाजार आयोग (Forward Market Commission) ने अनेक नियमनकारी कदम उठाये। कुछ समय पश्चात आयोग ने सट्टेबाजी के दबाव को कम करने के लिए कुछ दालों के वायदे सौदों पर प्रतिबन्ध लगा दिया।
6. गेहूँ व चावल के वायदे सौदों (Future trading) पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया।
7. पाम वर्ग के तेलों (Palm groups of oils) पर से प्रतिशत आधार पर दो चरणों में 20-22.5 प्रतिशत शुल्क घटा दिया जिससे इनकी अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में वृद्धि के प्रभाव को

कम किया जा सके। प्रथम चरण अगस्त, 2006 तथा द्वितीय चरण जनवरी, 2007 में प्रारम्भ किया गया।

8. 22 जनवरी, 2007 को पोर्टलैण्ड सीमेंट, अनेक धातुओं तथा मशीनरी मदों का शुल्क और कम किया।

सरकार ने राजकोषीय एवं मौद्रिक अनुशासन को कठोर करने, सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ करने, तटकर तथा व्यापार नीतियों के माध्यम रो संवेदनशील वस्तुओं की माँग-पूर्ति प्रबन्धन को प्रभावी बनाने तथा उत्पादन कर व सीमा कर के विवेकीकरण करने जैसे अनेक कदम उठाये है। इसके अलावा रिजर्व बैंक ने नकद कोषानुपात (CRR) तथा रेपो रेट में वृद्धि कर साख की मात्रा को संकुचित करने का प्रयोग किया है। इन सब कदमों के उपरान्त भी अभी तक मुद्रा-स्फीति की दर 5.5 प्रतिशत से अधिक बनी हुई है।

12.9 सारांश (Summary)

मुद्रा स्फीति उस अवस्था को कहते है जिसमें देश की मौद्रिक आय उसके कुल उत्पादन की तुलना में अधिक हो जाती है, परिणामस्वरूप सामान्य कीमत स्तर बढ़ने लग जाता है। भारत में मुद्रा स्फीति के चार संघटक है - M_1, M_2, M_3 एवं M_4। भारत में सम्पूर्ण योजनाकाल में सामान्य कीमत स्तर बढने की प्रवृत्ति रही है। भारत में मुद्रा-स्फीति की माप का आधार थोक मूल्य सूचकांक है। इस सूचकांक का आधार वर्ष बदलता रहा है तथा उस सूचकांक में प्राय: बढ़ोतरी होती रही है। इसके अलावा देश में चार प्रकार के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन हेतु प्रयुक्त किये जाते है। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक है। सरकार ने मुद्रा-स्फीति तथा कीमतों पर नियन्त्रण हेतु समय-समय पर राजकोषीय, मौद्रिक तथा अन्य कदम उठाए हैं। सार्वजनिक व्यय में भारी वृद्धि, घाटे का वित्त प्रबन्धन, अनियमित कृषि संवृद्धि दर, आवश्यक वस्तुओं की जमाखोरी, प्रशासकीय कीमतों में वृद्धि तथा मुद्रा पूर्ति में वृद्धि-देश में मुद्रा-स्फीति और बढ़ती कीमतों के मुख्य कारण रहे है।

12.10 शब्दावली (Key Words)

1. **मुद्रा-स्फीति (Inflation) :** यह वह अवस्था होती है जब अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा देश के कुल उत्पादन से अधिक होती हे, फलस्वरूप सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होने लगती है।
2. **सामान्य मूल्य स्तर (General Price Level) :** विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के अलग-अलग मूल्य का औसत सामान्य मूल्य स्तर कहलाता है। यह किसी वस्तु विशेष का मूल्य न होकर सूचकांक में सम्मिलित वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों का औसत होता है।
3. **मुद्रा आपूर्ति के संघटक (Component of Money Supply):** भारत में मुद्रा-आपूर्ति के चार संघटक है M_1, M_2, M_3एवं M_4। इनमें से M_1 का मुद्रा पूर्ति के संकुचित अर्थ में तथा M_3 को व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है।

4. मौद्रिक तरलता (Monetary Liquidity) : इसका अर्थ नकद मुद्रा तथा आसानी से नकद मुद्रा में बदल जा सकने वाली परिसम्पत्तियों से लिया जाता है।
5. **विनिमय का माध्यम (Medium of Exchange);** मुद्रा हमारे सामान्य आर्थिक जीवन में वस्तुओं एवं सेवाओं के लेन-देन मे प्रयुक्त होती है, इसलिए यह विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करती है।
6. **मूल्य संचय (Store of Value) :** मुद्रा विनिमय के माध्यम के अलावा अनेक अन्य कार्य करती है। मुद्रा के रूप में अपनी आय को बचत एवं विनियोग कर सकते है।
7. **थोक मूल्य सूचकांक (Wholesale Price Index) :** यह सूचकांक वस्तुओं और सेवाओं के थोक मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों की माप का प्रतीक हैं। हमारे देश में यही मुद्रा-स्फीति की माप का लोकप्रिय सूचकांक है।
8. **प्राथमिक वस्तु समूह (Primary Articles Group) :** इस समूह में खाद्य वस्तुएँ, अखाद्य वस्तुएँ तथा खनिज समूह की वस्तुएँ सम्मिलित होती है।
9. **उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (Consumer Price Index) :** यह सूचकांक उपभोक्ताओं द्वारा काम में ली जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों को ज्ञात करने के लिए प्रयुक्त होता है। भारत में विभिन्न प्रकार के उपभोक्ताओं के लिए चार अलग-अलग प्रकार के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक ज्ञात किये जाते है। इनमें से औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI-IW) सर्वाधिक प्रचलित है, जो सरकारी तथा संगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए मजदूरी वृद्धि का आधार है।
10. **घाटे का वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) :** जब सरकार द्वारा उसकी आय से अधिक व्यय की देश के केन्द्रीय बैंक से मुद्रा लेकर भरपाई की जाती है तो उसे घाटे का वित्त प्रबंधन (हीनार्थ प्रबंधन) कहते है।
11. **प्रशासकीय कीमत (Administered Price) :** सरकार द्वारा निर्धारित कीमतों को प्रशासकीय कीमत कहते है।

12.11 स्वपरख प्रश्न

1. मुद्रा स्फीति से क्या आशय है? मुद्रास्फीति के संघटक बताइए।
2. "भारत में मुद्रास्फीति" विषय पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. भारत में मुद्रास्फीति तथा बढ़ती कीमतों, के क्या प्रभावी कारण हैं? चर्चा कीजिए।
4. भारत में मुद्रास्फीति तथा बढ़ती कीमतों को रोकने मे सरकार द्वारा किए गए उपायों की समीक्षा कीजिए।

इकाई-13

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण

(International Economic Environment)

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का अर्थ एवं परिदृश्य

13.4 अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के बदलते आयाम

(i) बाजारों का वैश्वीकरण

(ii) उत्पादन का वैश्वीकरण

(iii) वैश्विक संस्थाओं का अभ्युदय एवं आधिपत्य

(iv) प्रौद्योगिकी परिवर्तनों की भूमिका

(v) वैश्विक अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप

(vi) 21वी शताब्दी की वैश्विक अर्थव्यवस्था

13.5 सारांश

13.6 शब्दावली

13.7 स्व-परख प्रश्न

13.8 संदर्भ ग्रंथ/उपयोगी पुस्तकें

13.1 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन से आप-

- अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का अर्थ जान सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के बदलते आयामों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

विश्व अर्थव्यवस्थाएं में आधारभूत परिवर्तन हो रहा है। हम ऐसे विश्व से दूर हटते जा रहे हैं जहां राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं स्व-सीमित (Self contained) इकाईयां हुआ करती थीं और जहां सीमा पार व्यापार और निवेश, दूरी, समय, भाषा, सरकारी नियमन, संस्कृति एवं व्यवसाय व्यवस्था संबंधी भारी राष्ट्रीय अन्तर हुआ करते थे। अब हम ऐसी अर्थव्यवस्था की ओर उन्मुख हैं, जहां सीमा पार व्यापार और निवेश रूपी बाधाओं की दीवार ढह रही हैं, राष्ट्रों के बीच दूरियां सिमटती जा रही है, परिवहन एवं दूरसंचार प्रौद्योगिकी में सुधार के कारण भौतिक संस्कृति संपूर्ण विश्व में कमोबेश रूप में समान नजर आने लगी हैं तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं एक स्वतंत्र वैश्विक आर्थिक प्रणाली में समाहित/समाविष्ट होती जा रही है। जिस प्रक्रिया से अथवा जिसके अन्तर्गत यह सब हो रहा है उसे सामान्यत: वैश्वीकरण कहा जाता है। वैश्वीकरण के परिदृश्य में

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण तेजी के साथ बदलता जा रहा हैं इसलिए बदलते अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का अध्ययन आवश्यक हो गया है। हम इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का अर्थ एवं परिदृश्य तथा इसके बदलते हुए आयामों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

13.3 अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का अर्थ एवं परिदृश्य (Meaning and Scenario of International Economic Environment)

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण से हमारा आशय उस आर्थिक वातावरण से है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त है और जो हमारे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक कार्यो एवं व्यवहारों को प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। इसके अन्तर्गत उन समस्त आर्थिक घटकों को सम्मिलित किया जाता है, जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय निवेश, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहार तथा अन्तर्राष्ट्रीय फर्मों तथा संस्थाओं के आचरण को प्रभावित करते हैं।

आज हम ऐसी विश्व अर्थव्यवस्था में रह रहे हैं, जहां अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विश्व उत्पादन से कहीं अधिक तेजी के साथ बढ़ रहा है। यह एक ऐसा विश्व है जहां प्रतिदिन 1.2 अरब डालर से भी अधिक विदेशी विनिमय सौदे सम्पन्न हो रहे हैं। यह एक ऐसा विश्व है जहां विश्व व्यापार संगठन (W.T.O) तथा विश्व की सबसे अधिक शक्तिशाली अर्थव्यवस्थाओं के कर्ताधर्ता सीमा पार व्यापार और निवेश पर लगे प्रतिबंधों को (जो पहले ही काफी कम हो चुके हैं) कम करने की निरंतर मांग कर रहे हैं। यह एक ऐसा विश्व है जहाँ भौतिक और लोकप्रिय संस्कृति के चिन्ह तेजी के साथ वैश्विक बनते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए कोका-कोला तथा मेकडोनाल्ड्स से लेकर सोनी प्ले स्टेशन्स नोकिया सेल फोन्स, एम टी वी शो तथा डिजनी फिल्मस का प्रचलन विश्वव्यापी हो गया है। यह एक ऐसा विश्व है जहां उत्पादन हेतु पड़ते (Inputs) संपूर्ण विश्व से आती है। यह एक ऐसा विश्व है जहां एक देश/क्षेत्र का संकट अन्य देशों में परेशानी का सबब बन सकता है। उदाहरण के लिए 1997-98 के एशिया संकट ने अमेरिका तथा अन्य राष्ट्रों में अवसाद/मंदी उत्पन्न कर दी।

व्यवसाय की दृष्टि से आज का विश्व अनेक दृष्टि से सर्वोत्तम समय है। वैश्वीकरण ने व्यावसायिक इकाइयों के लिए इस रूप में अपार सुनहरे अवसर पैदा किये हैं कि वे अपना उत्पाद विश्व में कही भी बेचकर अपने आगम (Revenues) को अधिकतम कर सकते हैं । 1980 के दशक के अन्त में समाजवाद के मजबूत किले के ध्वस्त हो जाने के पश्चात् एक के बाद एक देशों का सार्वजनिक नीति पेन्डुलम (Public Policy pendulum) स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था की तरफ मुड़ गया। विदेशों में व्यवसाय करने की नियामक एवं प्रशासनिक बाधाएं काफी कम हो गयीं। अनेक देशों ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं में आमूल-चूल परिवर्तन करने के लिए सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण किया, बाजारों को नियंत्रण के बोझ से मुक्त किया और विदेशों से आने वाले निवेश का स्वागत किया तथा अपने आपको वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए तैयार किया। ये परिवर्तन अपने आप में अपरिकल्पित अप्रत्याशित तथा क्रान्तिकारी थे। इन्होंने देश और विश्व की अर्थव्यवस्था और उसके परिवेश को नख से लेकर सिर तक बदल दिया। उदाहरण के लिए जेट एयर क्राफ्ट, ऑटोमोबाइल, सेमी कन्डेक्टर चिप्स् कम्प्यूटर्स आदि ने

अर्थव्यवस्थाओं को वैश्विक स्वरूप प्रदान करने में भारी मदद की। इसके अलावा विकासशील देशों में आर्थिक संवृद्धि की बढती दर तथा विकसित राष्ट्रों के घरेलू बाजारों के शिखर (Saturation) पर पहुंच जाने के कारण वैश्वीकरण एक अपरिहार्य व्यूहरचना बन गयी।

व्यावसायिक फर्मों का वैश्विक उन्मुखीकरण होने लगा जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अनेक प्रकार के लाभ मिलने लगे; जैसे वैश्विक ब्राण्ड का निर्माण करना, विशाल पैमाने की मितव्ययताओं को प्राप्त करना तथा सीमा पार की दक्षता एवं कौशल को अपने हित में काम लेना। वैश्वीकरण के कारण उत्पन्न प्रतिस्पर्धा ने राष्ट्रों के सम्मुख एक साथ अवसर और चुनौती दोनों उत्पन्न कीं। जिन राष्ट्रों ने वैश्वीकरण की चुनौतियों को सफलतापूर्वक स्वीकार किया, उन्हीं ने वैश्वीकरण के अवसरों का सर्वाधिक लाभ उठाया। वैश्वीकरण के कारण अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक - राजनैतिक परिदृश्य काफी तेजी से बदल रहा है, फलस्वरूप इसका अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस बदलते अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण को समझने के लिए उसके बदलते आयामों को समझना आवश्यक हैं। आगे यहां हम इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे।

13.4 अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के बदलते आयाम (Changing Dimensions of International Economic Environment)

तेजी से बदलते अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के निम्नांकित महत्वपूर्ण आयाम हैं:

(i) **बाजारों का वैश्वीकरण (Globalisation of Markets) :** बाजारों के वैश्वीकरण से तात्पर्य ऐतिहासिक रूप से भिन्न व पृथक राष्ट्रीय बाजारों के विलयन (Merger) अथवा एक हो जाने से है। सीमा पार प्रतिबंधों मे तेजी से होती कमी ने वैश्विक बाजारों के उदय को सरल बना दिया। वैश्विक बाजारों के अभ्युदय निमित यह तर्क दिया जाता है कि आज के बदलते परिदृश्य में विभिन्न राष्ट्रों के उपभोक्ताओं की अभिरूचि एवं पसंद में एक बडी सीमा तक समानता दिखायी देती है। इरा प्रवृत्ति के कतिपय उदाहरण हैं : कोका-कोला, मेकडोनाल्ड्स हेमबर्गर, सोनी प्ले स्टेशन वीडियो गेम्स, सिटीकॉर्प क्रेडिट कार्ड्स इत्यादि । ये फर्में विश्वव्यापी मानक उत्पाद बेच कर वैश्विक बाजार निर्माण में योगदान कर रही हैं। वैश्विक बाजारों का लाभ उठाने के लिए यह कतई आवश्यक नहीं है कि व्यावसायिक इकाई बहुराष्ट्रीय निगमों जैसी विशाल एवं भीमकाय हों। छोटी व्यावसायिक इकाईयां भी वैश्विक बाजार का लाभ उठा सकती है। उदाहरण के लिए, अमेरिका की 89 प्रतिशत फर्में, जो 2001 में निर्यात व्यापार में संलग्न थी, उनमें 100 से भी कम व्यक्ति काम कर रहे थे। इससे यह स्पष्ट है कि छोटी व्यावसायिक इकाईयों के वैश्विक बाजार में प्रवेश से वैश्विक बाजार के आकार और इसके सहभागियों की संख्या में वृद्धि एवं विविधता आई हैं।

वैश्विक बाजारों ने वैश्विक प्रतिस्पर्धा (Global competition) को जन्म दिया है। बडी फर्मों को आपस में वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है; जैसे कोका-कोला व पेप्सी फोर्ड व टोयटो, बोईंग तथा एयरबस। यदि एक फर्म किसी देश के बाजार में जाती है, तो उसकी प्रतिद्वन्द्वी फर्म भी अवश्य ही उसका अनुगमन करेगी। जब ये विशाल फर्में किसी देश के बाजार में प्रवेश करती हैं तो वे अपने उत्पाद के साथ विपणन व्यूह रचना तथा ब्राण्ड नाम लेकर भी

आती है जो विभिन्न राष्ट्रों के बाजारों में समान होती है, अर्थात् यह एकरूपता बाजारों में विविधता/अन्तर को प्रतिस्थापित करने लगती है। ऐसे परिवेश में यह बात करना बेमानी है कि यह जर्मनी का बाजार है, यह जापान का बाजार है, यह अमेरिका का बाजार है अथवा यह भारत का बाजार है। इससे यह स्पष्ट है कि आज के बदलते वैश्विक परिदृश्य में अब केवल एक ही बाजार होता है और वह वैश्विक बाजार होता है।

(ii) **उत्पादन का वैश्वीकरण (Globalisation of Production) :** उत्पादन के साधनों की लागत और गुणवत्ता में अन्तरों से लाभ कमाने हेतु उत्पाद का निर्माण स्थल/उद्गम (Sourcing) विश्व के किसी भी स्थान से हो सकता है। ऐसा करने से फर्मों की उत्पादन औसत लागत को कम करने एवं वस्तु की गुणवत्ता में सुधार करने का मार्ग प्रशस्त होता है। उससे फर्मों को वैश्विक बाजार में प्रभावशाली तरीके से प्रतिस्पर्धात्मक बने रहने का अवसर रहता है। यहां यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उत्पादक गतिविधियों का वैश्विक फैलाव (Global spread) केवल विशाल फर्मों तक ही सीमित नहीं है। छोटी फर्में भी इस काम में जुडी हुई हैं उदाहरण के लिए स्वान ऑप्टीकल्स (Swan optical) अमेरिका की एक छोटी कम्पनी है जो हॉग-कांग, चीन, जापान, फ्रांस, इटली इत्यादि अनेक देशों में अपने उत्पादों का निर्माण करती है। कम्पनी ने अपने निर्माण और डिजाईन प्रोसेसिंग को अनेक स्थानों पर फैला रखा है। उसका प्रमुख कारण यह है कि ऐसा करके कम्पनी स्थानीयत अनुकूल कौशल आधारित लागत ढांचे (Favourable skill based cost structure) का लाभ उठाती है।

बडी फर्मों में बोईंग कम्पनी का वाणिज्यिक जेट एयर लाइनर 777 इसका सुन्दर उदाहरण है। इसके दरवाजों, पंखों तथा फ्यूसेलेज के पार्ट्स (Parts) की आपूर्ति जापान की 8 फर्में करती हैं। सिंगापुर की फर्म नोइज लेन्डिंग गियर की आपूर्ति करती है तथा इटली में इसकी विंग फ्लेपस बनायी जाती है। उत्पादन की आउटसोर्सिंग (Out sourcing of output) आज के अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण की अपवाद के स्थान पर एक नियमित विशेषता (Regular feature) बन चुकी है और इसका तेजी से विस्तार होता जा रहा है। विदेशी आपूर्तिकर्ताओं के आउटसोर्सिंग की बढ़ती प्रवृति का प्रमुख कारण यह है कि ये अपने-अपने क्षेत्र के धुरन्धर (the best) हैं अर्थात इनसे सस्ती और अच्छी वस्तु और कोई नहीं दे सकता। आउटसोर्सिंग ने फर्मो की वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को बढाया है जिसके कारण वैश्विक बाजार में उनके भाग लेने की संभावना बढ जाती है। इसका एक अन्य लाभ यह भी है कि जिस देश को आउटसोर्सिंग की जाती है, उससे भी माल के आदेश मिलने की संभावना बढ जाती है। अत: उक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्पादन का विश्वव्यापी फैलाव होने लगा है और आउटसोर्सिंग ने इसकी आग में घी का काम किया है।

(iii) **वैश्विक संस्थाओं का अभ्युदय एवं प्रभुत्व (Emergence and Dominance of Global Institution):** जैसे-जैसे बाजार वैश्विक होते जाते हैं और व्यावसायिक गतिविधियों का बढ़ता भाग राष्ट्रीय सीमाओं के पार होने लगता है, तो ऐसी स्थिति में व्यावसायिक गतिविधियों के प्रबंध, नियंत्रण एवं नियमन हेतु वैश्विक संस्थाओं की आवश्यकता होने लगती है। पिछली शताब्दी में इन कार्यो को सम्पन्न करने में कई महत्वपूर्ण वैश्विक संस्थाएं खड़ी की गयी। इनमें

गैट (GATT) और बाद में चलकर इसका उत्तराधिकारी बना विश्व व्यापार संगठन (WTO), अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), विश्व बैंक (World Bank of IBRD) तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं। रोचक बात यह है कि ये सब संस्थाएं स्वैच्छिक समझौतों के द्वारा गठित की गयी हैं।

1 जनवरी 1995 को अस्तित्व में आया विश्व व्यापार संगठन मुख्य रूप से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली को व्यवस्थित करने के लिए गठित किया गया इसका प्रमुख काम सदस्य देशों को इसके नियमों की अनुपालना करवाने का है। अप्रैल 2003 में इसके 146 देश सदस्य थे जिनके पास विश्व व्यापार का 97 प्रतिशत भाग था। इस तथ्य से विश्व व्यापार संगठन के अधिकार क्षेत्र और स्थिति (Position) का पता चलता है। विश्व व्यापार संगठन सीमा पार व्यापार और निवेश की बाधाओं को कम करने के लिए न केवल संकल्पबद्ध है वरन् ईमानदारी से प्रयत्नरत भी है। ब्रेटन बुड्स समझौते (Bretton woods agreement) के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक दोनों बहिनों की स्थापना की गयी। मुद्रा कोष का मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली को व्यवस्थित रखने का है, जबकि विश्व बैंक का प्रमुख कार्य सदस्य राष्ट्रों के पुनर्निर्माण तथा विकास करने का है। विश्व बैंक विकासशील राष्ट्रों को इन दोनों कार्यो हेतु अपेक्षाकृत कम ब्याज दरों पर दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है; जबकि मुद्रा कोष भुगतान संतुलन में उत्पन्न संतुलन को कम अथवा समाप्त करने के लिए अल्पकालीन ऋण प्रदान करता है।

1945 में स्थापित संयुक्ता राष्ट्र का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, सामूहिक सुरक्षा एवं शान्ति की स्थापना करना है। 190 राष्ट्रों का यह संघ सदस्य राष्ट्रों के जीवन स्तर में सुधार, आर्थिक सामाजिक प्रगति तथा पूर्ण रोजगार व विकास को प्रोत्साहित करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। इन सब कार्यो की पूर्ति हेतु अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ सहयोग एवं समन्वय स्थापित करता है। संयुक्ता राष्ट्र के कार्यो का मार्गदर्शक सिद्धान्त यह है कि विश्व में चिरस्थायी शान्ति स्थापना हेतु सभी राष्ट्रों में गरीबी उन्मूलन तथा जीवन स्तर में सुधार होना आवश्यक शर्त है।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उपर्युक्त उल्लेखित चारों संस्थाओं की समुचित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण बनाये रखने में अतिमहत्वपूर्ण भूमिका और प्रभाव दोनों हैं।

(iv) **प्रौद्योगिकी परिवर्तनों की भूमिका (Role of Technological changes) :** व्यापारिक बाधाओं में कमी ने बाजारों व उत्पादन के वैश्वीकरण की सैद्धान्तिक संभावनाएं उत्पन्न कीं, किन्तु प्रौद्योगिकी परिवर्तनों ने इसे वास्तव में मूर्तरूप प्रदान किया । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् और विशेषकर विगत दो दशकों में विश्व में संचार, सूचना प्रोसेसिंग तथा परिवहन प्रौद्योगिकी में भारी, अप्रत्याशित एवं अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं। इन्टरनेट तथा विश्वव्यापी वेब (World Wide Web-www) के अभ्यूदय को तकनीकी क्षेत्र में विस्फोटक परिवर्तनों की श्रेणी में रखा जाता है। तकनीकी परिवर्तनों ने वैश्विक परिवेश के सभी क्षेत्रों व अंगों को गहन एवं विस्तृत दोनों रूपों में प्रभावित किया है। विश्व के आर्थिक जीवन में इन परिवर्तनों का विस्मयकारी प्रभाव पड़ा है। विश्व व्यापार संगठन के पूर्व महानिदेशक रेनाटो रगिरो (Reato

Ruggiero) के शब्दों में, "दूरसंचार वैश्विक श्रोता (Global audience) उत्पन्न कर रहा है। परिवहन वैश्विक ग्राम (Global village) उत्पन्न कर रहा है। ब्यूनस आयर्स से बोस्टन, बोस्टन से बीजिंग तक सामान्य आदमी एम टी दी (MTV) देख रहा है, लेविस जीन्स (Levi's Jeans) पहन रहा है तथा सोनी वाकमेन सुन रहा है"। इससे यह स्पष्ट है कि इन प्रौद्योगिकी परिवर्तनों ने हमारे आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को वैश्विक स्वरूप प्रदान करने में जबर्दस्त भूमिका निभायी हैं माइक्रो प्रोसेसर तथा संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी से संबंधित विकास ने फर्मों को अपने विश्वव्यापी कार्यो को नवीनतम सूचना तंत्र से जोड़ने में सहायता की है। माइक्रो प्रोसेसर की लागत में निरन्तर कमी होती जा रही है; जबकि उसकी शक्ति बढ़ती जा रही है। [इस तथ्य को मूरे के नियम (Moore's Law) के नाम से जाना जाता है - इससे व्यावसायिक कार्यो की लागत में कमी आई है।]

जेट एयर ट्रेवल ने यात्रा समय में कमी करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक गतिविधियों को परस्पर जोड़ने में मदद की है। उन परिवर्तनों ने व्यावसायिक इकाइयों को अपने विश्वव्यापी कार्यो में समन्वय स्थापित करने तथा संपूर्ण विश्व को एक बाजार बनाने में सक्षम बनाया है।

इन्टरनेट तथा विश्वव्यापी वेब (www) को वैश्विक अर्थव्यवस्था की सूचना रीढ़ (Information backbone) माना जाता है। इसके कारण ई-कॉमर्स तथा ई-व्यवसाय (E-Commerce and E-Business) का बहुत तेजी से विकास हुआ है। इसने स्थान, पैमाने तथा समय (Location, scale and time) की अनेक बाधाओं को समाप्त कर दिया है। वेब के कारण लघु तथा विशाल दोनों प्रकार के व्यवसायों को पहले से कही कम लागत पर अपनी **वैश्विक उपस्थिति (Global presence)** दर्ज कराने का सुअवसर मिला है। वेब ने क्रेता व विक्रेता को एक दूसरे से मिलाने की भारी सुविधा उपलब्ध करवाई है-चाहे वे कहीं पर भी क्यों न हों और चाहे उनका आकार कैसा ही क्यों न हों। 2005 तक इन्टरनेट को लेने वाले व्यक्ति (1.2 अरब) कुल विश्व जनसंख्या के लगभग 18 प्रतिशत थे और अब इनकी संख्या में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। वर्तमान में यह आकड़ा 25 प्रतिशत को भी पार गया है। डेल कम्प्यूटर्स इन्टरनेट को इस प्रकार काम में लेता है कि वह अपने उत्पादन स्थल पर केवल तीन दिन की ही सामग्री रखता है परिवहन प्रौद्योगिकी में भारी नवोन्मेष हुए हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण जेट एयर क्राफ्ट तथा सुपर फ्रेटर्स व कन्टेनराइजेशन (Containerization) है। इनके कारण न केवल यातायात में लगने वाले समय में काफी कमी हुई है वरन् यातायात के एक साधन (Mode)से दूसरे साधन में माल लदान भी काफी सुविधाजनक व सस्ता हो गया है। यातायात समय में प्रभावी कमी ने विश्व को पहले से छोटा कर दिया है। कम लागत वाले वैश्विक सूचना-तंत्र ने **'इलेक्ट्रोनिक वैश्विक बाजार' (Electronic global market)** उत्पन्न कर दिये है। कम लागत वाले जेट एयर ट्रेवल ने राष्ट्रों के बीच व्यक्तियों के आवागमन को त्वरित एवं आसान बना दिया है। इन सबके कारण राष्ट्रों/व्यक्तियों के बीच सांस्कृतिक दूरियां कम हुई हैं और विभिन्न राष्ट्रों के उपभोक्ताओं की रूचि एवं पसंद में असमानताएं घटी हैं इसी प्रकार वैश्विक संचार तंत्र तथा वैश्विक मीडिया एक **विश्वव्यापी संस्कृति (Global Culture)** को जन्म दे रहा है। उदाहरणार्थ, अमेरिकन टेलीविजन तंत्र CNN,MTV तथा HBO अब अनेक देशों में देखा जाने लगा है। हॉलीवुड फिल्में संपूर्ण विश्व

में देखी जाती हैं। इसी प्रकार बॉलीबुड फिल्में भी अब अनेक देशों में देखी जाने लगी है। यह माना जाने लगा है कि जैसे-जैसे विश्व मीडिया का विकास और विस्तार होता जाएगा, वैसे-वैसे विश्व संस्कृति का भी विकास होता चला जाएगा। इन सबके विकास का तार्किक परिणाम यह निकला है कि अब उपभोक्ता उत्पादों के लिए वैश्विक बाजार बनने लगे हैं। अब यह बहुत आसान है कि मेकडोनाल्ड रेस्टोरेन्ट न्यूयार्क की तरह टोकियों में मिल जाता है तथा लेवीस जीन्स सेन फ्रांसिसको की तरह पेरिस में भी मिल जाती हैं। विश्व मीडिया ने इन सबको विश्व ब्राण्ड (Global Brand) बना दिया है। इससे मीडिया की वैश्विक बाजार बनाने की शक्ति का पता चलता है।

यद्यपि यह सही है कि आधुनिक संचार तथा परिवहन प्रौद्योगिकी ने वैश्विक ग्राम' की कल्पना' को साकार कराने में काफी मदद की है, किन्तु अभी भी विभिन्न राष्ट्रों के बीच उपभोक्ता पसन्दगी अधिमानों, व्यावसायिक व्यवहारों तथा संस्कृतियों में भारी अन्तर विद्यमान है। आज भी एक फर्म जो विभिन्न राष्ट्रों के बीच इन अंतरों की अनदेखी करती है, वह ऐसा अपने लिए संकट उत्पन्न करके ही कर सकती हैं।

(v) **वैश्विक अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप (Changing demographics of Global Economy):** वैश्वीकरण की बढती प्रवृत्ति ने वैश्विक अर्थव्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण में भारी परिवर्तन ला दिया है, जिसका अध्ययन हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे

(अ) विश्व उत्पादन एवं विश्व व्यापार का बदलता परिदृश्य (Changing Scenario of world production and world trade) : 1960 के दशक के प्रारम्भ में विश्व उत्पादन व विश्व निर्यात में अमेरिका का दबदबा था। 1963 में कुल विश्व उत्पादन में अमेरिका का हिस्सा 40.3 प्रतिशत था, वह गिरकर 2001-02 में मात्र 21.5 प्रतिशत रह गया। 2002 में चीन का विश्व उत्पादन में हिस्सा 12.77 प्रतिशत तथा जापान का हिस्सा 7.55 प्रतिशत था। इन दोनों देशों के अलावा थाइलैण्ड, ताइवान तथा दक्षिणी कोरिया की विश्व उत्पादन में भागीदारी काफी बढ़ी है। इसी प्रकार हम यदि विश्व निर्यात में अमेरिका के हिस्से की तुलनात्मक स्थिति की बात करें, तो यह पाते हैं कि 1960 की तुलना में 2002 में उसका विश्व निर्यात में हिस्सा लगभग आधा रह गया है। 1960 में विश्व निर्यात में अमेरिका का भाग 20 प्रतिशत था, जो 2002 में गिरकर 11.9 प्रतिशत ही रह गया। यद्यपि आज भी अमेरिका विश्व का सबसे बड़ा निर्यातक राष्ट्र है, किन्तु उसकी भागीदारी में भारी कमी हुई हैं इसके विपरीत विश्व निर्यातों में जर्मनी (9.3 प्रतिशत), जापान (6.6 प्रतिशत) तथा चीन (4.6 प्रतिशत) का भाग बढ़ा है। अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि विश्व उत्पादन और निर्यात में 1960 में अमेरिका का जो दबदबा था, उसमें निरन्तर गिरावट हो रही है और अन्य राष्ट्रों की भागीदारी बढ़ती जा रही है।

यदि हम विश्व के आगामी 20 वर्ष के भविष्य गर्भ में झांक कर देखें, तो वर्तमान संकेतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विश्व उत्पादन में चीन, भारत, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, दक्षिणी कोरिया, मैक्सिको तथा ब्राजील का हिस्सा अपेक्षाकृत तेजी के साथ बढ़ेगा और अमेरिका एवं पश्चिमी राष्ट्रों का हिस्सा गिरेगा। विश्व बैंक के अनुमानों के अनुसार यदि वर्तमान विकास दर

की प्रवृत्ति बनी रहे तो 2020 तक चीन की अर्थव्यवस्था अमेरिका और भारत की अर्थव्यवस्था जर्मनी के समकक्ष होगी। विश्व बैंक के ही अनुमानों के अनुसार सन् 2020 तक विश्व आर्थिक गतिविधियों में विकासशील राष्ट्रों का हिस्सा बढ़कर 60 प्रतिशत से भी अधिक हो सकता है। वर्तमान में विश्व की आर्थिक गतिविधियों में धनाढ्य राष्ट्रों का हिस्सा 55 प्रतिशत है, वह 2020 तक गिरकर 38 प्रतिशत रह जाने की संभावना है। हो सकता है कि ये अनुमान पूर्णत: सत्य न हों, फिर भी इनसे यह संकेत अवश्य मिलता है कि विश्व का आर्थिक भूगोल अवश्य बदलेगा तथा आने वाले कल के अवसर तथा सबसे अधिक सक्षम प्रतिस्पर्धी संभवत: विकासशील राष्ट्रों से ही आयेंगे।

(ब) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का बदलता परिदृश्य (Changing Scenario of Foreign Direct Investment) : 1960 दशक में विश्व के कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में अमेरिका प्रथम स्थान (63.3 प्रतिशत) पर ब्रिटेन द्वितीय स्थान (10.5 प्रतिशत) पर तथा जापान आठवें स्थान (2 प्रतिशत) पर था। लेकिन अब अमेरिका का दबदबा समाप्त हो गया है। 1980 में विश्व के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश स्टॉक में अमेरिका की भागीदारी 42 प्रतिशत थी, वह 2001 में गिरकर आधी (21 प्रतिशत) रह गयी है; जबकि इसी काल में जापान, फ्रांस तथा विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों का अंश काफी बढ़ गया है। वर्तमान में चीन, भारत, मैक्सिको, रूस तथा ब्राजील जैसे विकासशील राष्ट्र विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की दृष्टि में सबसे तेजी से उभरते हुए गन्तव्य स्थान (Destinations) माने जा रहे है। वर्ष 2006-07 में भारत में कुल 15 अरब डॉलर का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश हुआ, जो अब तक का सर्वाधिक है। चीन में यह निवेश 80 अरब डालर होने का अनुमान है। 1998 से 2002 तक की अवधि में विकासशील राष्ट्रों में औसतन 200 अरब डालर वार्षिक का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश हुआ।

(स) बहुराष्ट्रीय उपक्रमों का बदलता परिदृश्य (Changing Scenario of Multinational enterprises): बहुराष्ट्रीय उपक्रम वे होते हैं जिनकी उत्पादक गतिविधियां दो या दो से अधिक राष्ट्रों में होती है। इन उपक्रमों के स्वरूप में निम्नांकित दो प्रवृत्तियां पाई गई:

(i) **गैर-अमेरिका बहुराष्ट्रीय उपक्रमों में होती वृद्धि (Increase in Non-American Multinational enterprises):** 1973 में विश्व के 260 विशालतम बहुराष्ट्रीय उपक्रमों से 48.5 प्रतिशत अमेरिका के थे और दूसरे स्थान पर यूनाइटेड किंगडम (18.8 प्रतिशत) था। जापान का हिस्सा मात्र 3.5 प्रतिशत था। लेकिन 2000 में विश्व के 100 विशालतम बहुराष्ट्रीय उपक्रमों में अमेरिका के 24, जापान के 16 तथा ब्रिटेन के 14 थे। इससे इस क्षेत्र में अमेरिका के गिरते आधिपत्य और जापान के बढ़ते आधिपत्य का पता चलता है।

संयुक्त राष्ट्र के समंकों के अनुसार यद्यपि विश्व के 100 विशालतम बहुराष्ट्रीय उपक्रमों में विकसित देशों का ही आधिपत्य है, किन्तु अब इनमें पहली बार तीन उपक्रम विकासशील राष्ट्रों के हैं, जो निम्नांकित है :

- Hutchison Whampoa of Hong Kong, China - 48th rank
- Petroleos de Venezuela of Venezuela - 84th rank

- Comex of Mexico - 100th rank

इससे यह सिद्ध होता है कि आने वाले वर्षो में नये बहुराष्ट्रीय उपक्रम विकासशील राष्ट्रों से होंगे। वैश्विक बाजार में अब विकासशील राष्ट्रों की फर्में महत्वपूर्ण प्रतियोगी के रूप में उभर कर आयेंगी।

(ii) **मध्यम आकार एवं लघु बहुराष्ट्रीय उपक्रमों का विकास (Growth of medium sized and small multinationals) :** अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में एक अन्य प्रवृत्ति यह उभरकर आ रही है कि अब मध्यम आकार तथा लघु बहुराष्ट्रीय उपक्रमों का विकास हो रहा है। इन्हें 'लघु बहुराष्ट्रीय' (Mini-Multinationals) भी कहते हैं। यद्यपि आज भी, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व निवेश के अधिकांश भाग का परिचालन विशाल बहुराष्ट्रीय उपक्रमों के पास है किन्तु मध्यम आकार तथा लघु उपक्रम अब तेजी के साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व निवेश में संलिप्त होने लगे है। उदाहरण लिए, स्वान ऑप्टीकल्स (Swan Opticals), ब्रिज वाटर (Bridge Water) तथा कार्डियक साइन्स (Cardiac Science) इत्यादि लघु बहुराष्ट्रीय उपक्रम हैं। जी. डब्ल्यू. बार्थ (W.C.Barth) कोकोबीन रोसटिंग मशीनरी, जर्मनी की फर्म है जो मात्र 65 व्यक्तियों वाली कम्पनी है। यह कोकोबीन रोसटिंग मशीनरी विश्व बाजार के 70 प्रतिशत भाग पर कब्जा किये हुए है। इससे यह सिद्ध होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय केवल बड़ी फर्मों द्वारा ही नहीं किया जाता, बल्कि मध्यम व लघु आकार वाली फर्मों द्वारा भी किया जाता है।

(द) विश्व अर्थव्यवस्था का बदलता क्रम (Changing of World Economy) : 1989 तथा 1991 में साम्यवादी विश्व में उल्लेखनीय प्रजातांत्रिक एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। पूर्वी यूरोप और सोवियत यूनियन की साम्यवादी सरकारें ताश के पत्तों की तरह गिर गयीं। सोवियत यूनियन 15 स्वतंत्र गणराज्यों में तबदील हो गया चेकोस्लोवाकिया दो राज्यों में बंट गया तथा यूगोस्लोवाकिया पांच राज्यों में बंद गया। इससे पूर्व साम्यवादी विश्व की केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्थाएं विश्व का लगभग आधा भाग थी, जो बहुपक्षीय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं बाजारवादी व्यवस्था में विश्वास नहीं रखती थी। लेकिन साम्यवादी व्यवस्था के विघटन के पश्चात् 'इन राष्ट्रों ने प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता प्रकट की और अब ये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व निवेश में विश्वास करने लगे हैं। चीन ने भी वैश्विक अर्थव्यवस्था के स्वतंत्र बाजारवादी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व निवेश मॉडल को स्वीकार कर लिया है। इसका परिणाम यह निकला है कि आज चीन में आर्थिक संवृद्धि दर विश्व में सबसे अधिक है और आने वाले वर्षो में यह सुपर पावर का दर्जा प्राप्त कर लेगा। यदि चीन 6-7 प्रतिशत की दर से विकास करता रहा, तो 2020 तक इसकी प्रति व्यक्ति आय 13000 डॉलर हो जायेगी जो स्पेन के बराबर होगी। इसी प्रकार लेटिन अमेरिका के देशों में भी प्रजातंत्र और स्वतंत्र बाजार सुधारों ने जोर पकड़ रखा है, परिणामस्वरूप इनकी गरीबी व ऋणग्रस्तता में कमी आयी है। इसके अलावा, अब यहां विदेशी निवेशक भी आने लगे हैं जिसके कारण इनकी अर्थव्यवस्थाएं विकास की ओर अग्रसर होने लगी हैं।

(vi) **21वीं शताब्दी की वैश्विक अर्थव्यवस्था (Global Economy of 21st Centuary) :** पिछले 25-30 वर्षा में वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारी और विस्मयकारी परिवर्तन हुए है। वस्तुओं, सेवाओं तथा पूंजी प्रवाह की समस्त बाधाएं कम हो रही हैं। सीमा पार व्यापार और निवेश विश्व

उत्पादन की तुलना में अधिक तेजी के साथ बढ़ रहा है। इन सब से यह संकेत मिल रहा है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का एक स्वतंत्र वैश्विक प्रणाली में एकीकरण पहले से अधिक निकट होता जा रहा है। जैसे-जैसे देशों की अर्थव्यवस्थाएं उन्नत होती जायेगी, वैसे-वैसे वे विकसित राष्ट्रों की पंक्ति में आकर खड़ी होती चली जायेंगी। एक पीढी पूर्व तक दक्षिण कोरिया और ताइवान जैसी अर्थव्यवस्थाओं को द्वितीय श्रेणी के विकासशील राष्ट्र माना जाता था, आज वे बड़ी और उन्नत अर्थव्यवस्थाएं हो गयी है। आज इन राष्ट्रों की अनेक फर्में अपने-अपने क्षेत्रों की वैश्विक प्रतिस्पर्धी फर्में हैं। ये जहाजरानी बनाने से लेकर स्टील, केमीकल्स तथा इलेक्ट्रोनिक्स तक के क्षेत्रों में विश्वव्यापी उपस्थिति रखती हैं। 21वीं शताब्दी में विश्व के अनेक राष्ट्रों के वैश्विक अर्थव्यवस्था की तरफ तेजी से कदम बढ़ते जा रहे हैं क्योंकि अब जिन राष्ट्रों में पहले वैश्वीकरण का विरोध किया जाता था, अब वे इसे राज्य मार्ग बनाने में प्राण-पण से जुटे हुए हैं। उदारवादी आर्थिक दर्शन के सकारात्मक पहलुओं को ध्यान में रखकर अब एक के बाद एक राष्ट्र अपने सार्वजनिक उद्यमों का निजीकरण कर रहे हैं, आर्थिक नियंत्रणों को कम अथवा समाप्त कर रहे हैं, अपने बाजारों को खोल रहे है तथा सीमा पार व्यापार और निवेश पर लगे प्रतिबंधों को कम अथवा समाप्त करने के लिए प्रतिबद्धता प्रदर्शित कर रहे हैं। वर्तमान संकेतों से ऐसा प्रतीत होता है कि आने वाले दशकों में चैक गणराज्य, पोलैण्ड, चीन, भारत तथा दक्षिण अफ्रीका की अर्थव्यवस्थाएं अधिक शक्तिशाली बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्थाओं के रूप में उभरेगी। संक्षेप में कहें, तो विश्व एक ऐसी वैश्विक आर्थिक प्रणाली के रूप में उभर रहा है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के लिए अधिक अनुकूल होगी। यद्यपि विश्व पहले से अधिक वैश्वीकरण की तरफ बढ़ रहा है, किन्तु फिर भी वैश्वीकरण अपरिहार्य नहीं है। यदि वैश्वीकरण से राष्ट्रों की आशाएं पूरी नहीं होती है तो वे वैश्वीकरण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता बदल सकते है। वैश्वीकरण के विरोध में अनेक राष्ट्रों में विरोध के छोटे-मोटे स्वर भी मुखर होने लगे हैं। अधिक वैश्वीकरण के साथ अधिक जोखिम जुड़ा है। इसका नमूना 1997-98 का एशिया का वित्तीय संकट है। जो थाइलैण्ड से शुरू होकर संपूर्ण विश्व मे फैल गया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण विकास के एक बड़े अवसर के साथ एक बडी चुनौती भी है।

13.5 सारांश (Summary)

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का परिदृश्य तेजी से बदलता जा रहा है। संपूर्ण विश्व में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की बयार तेजी के साथ बह रही है। सीमा पार व्यापार और निवेश पर लगे प्रतिबंध कम होते जा रहे हैं। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं की अवधारणा ध्वस्त होकर वैश्वीकरण के समुद्र में समाती जा रही है। वैश्विक ग्राम की परिकल्पना अब मूर्त होती दिखाई देती है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के बदलते आयाम निम्न लिखित हैं :

(i) बाजारों का वैश्वीकरण; (ii) उत्पादन का वैश्वीकरण (iii) वैश्विक संस्थाओं का अभ्युदय एवं आधिपत्य (iv) प्रौद्योगिकी परिवर्तनों की भूमिका (v) वैश्विक अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप (vi) 21वीं शताब्दी की वैश्विक अर्थव्यवस्था।

13.6 शब्दावली (Key Words)

1. **अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण (International Economic Environment):** यह वह आर्थिक वातावरण है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त है तथा जो हमारे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक कार्यो व व्यवहारों को प्रभावित करता है। इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय को प्रभावित करने वाले आर्थिक घटक सम्मिलित होते हैं।

2. **सीमा पार व्यापार एवं निवेश बाधाएं (Cross-Border Trade & Investment Barriers)** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं निवेश पर लगे प्रतिबंध इस श्रेणी में आते है। ये बाधाएं प्रशुल्कीय तथा गैर-प्रशुल्कीय होती हैं।

3. **बाजारों का वैश्वीकरण (Globalisation of Market):** पृथक-पृथक राष्ट्रों के बाजारों का विश्व बाजार में विलय अथवा एक हो जाना बाजारों का वैश्वीकरण कहलाता है।

4. **उत्पादन का वैश्वीकरण (Globalisation of Production):** उत्पादों की लागत व गुणवत्ता में अन्तरों से लाभ कमाने हेतु उत्पादों का निर्माण स्थल विश्व का कोई भी देश अथवा क्षेत्र हो सकता है। इसे उत्पादक गतिविधियों का वैश्विक फैलाव कहा जाता है। इसे आउटसोर्सिंग भी कहा जाता है।

5. **वैश्विक उपस्थिति (Global Presence):** जब कोई व्यावसायिक उपक्रम वैश्विक प्रतिस्पर्धा का भागीदार होता है, तो उसकी उपस्थिति वैश्विक मानी जाती है।

6. **इलेक्ट्रोनिक वैश्विक बाजार (Electronic Global Market):** सूचना तंत्र से जुडे हुए बाजार इलेक्ट्रोनिक वैश्विक बाजार कहलाते हैं। इनमें समस्त सौदे सूचना तंत्र के माध्यम से ही होते हैं। इन्टरनेट तथा वेब से सम्पन्न होने वाले सौदे इस श्रेणी में आते हैं।

7. **विश्व ब्राण्ड (Global Brand):** किसी उत्पाद का ऐसा ब्राण्ड जो विश्व स्तर पर चलता व बिकता हों। उदाहरण के लिए मेकडोनाल्ड के बर्जरस् तथा लेवीस् जीन्स।

8. **विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment):** यह किसी उपक्रम की अंश पूंजी में विदेशी संस्थाओं द्वारा किया गया विनियोग होता है।

9. **बहुराष्ट्रीय उपक्रम (Multinational Enterprises):** ये वे उपक्रम होते हैं जिनकी उत्पादन गतिविधियां दो या अधिक राष्ट्रों में होती हैं।

13.7 स्व-परख प्रश्न (Self Exercises)

लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Questions)

1. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण को परिभाषित कीजिए।
2. बाजारों के वैश्वीकरण का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. उत्पादन के वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं?
4. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के बदलते आयामों के बिन्दु लिखिए।
5. 21वी शताब्दी की वैश्विक अर्थव्यवस्था पर अपने विचार संक्षेप में लिखिए।

निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions) :

1. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण पर एक विवेचनात्मक लेख लिखिए।

2. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके बदलते आयामों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

13.8 संदर्भ ग्रंथ/उपयोगी पुस्तकें

1. International Business: Czinkota, Ronkainen and Moffett, Thomson, South - Western.
2. Economic Environment of Business: M.Adhikary, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
3. International Business Environment: Francis Cherunilam, Himalaya Publishing House, Mumbai.
4. International Business: Charles WL Hill and Arun Kumar Jain, Tata McGraw-Hill Publishing Company Ltd., New Delhi.

इकाई-14

वैश्वीकरण : अवधारणा एवं इसका महत्व

(Globalisation: Concept and its Significance)

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 वैश्वीकरण की अवधारणा का अर्थ एवं परिभाषा

14.4 वैश्वीकरण की विशेषताएँ

14.5 वैश्वीकरण की अवधारणा का महत्व

14.6 वैश्वीकरण के दुष्प्रभाव

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 स्व-परख प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- वैश्वीकरण की अवधारणा का अभिप्राय समझ सकेंगे।
- वैश्वीकरण की अवधारणा के महत्त्व के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों को जान सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में वैश्वीकरण सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गया। विश्व का शायद ही कोई राष्ट्र इसके प्रभावों से अछूता रहा होगा। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। वैश्वीकरण के इस दौर में विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं में विस्मयकारी परिवर्तन हुए हैं। आज विश्व के प्राय: सभी देश उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की नीति (Policy of Liberalisation, Privatisation and Globalisation-LPG) को सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में अपनायें हुए हैं। ऐसी स्थिति में वैश्वीकरण की अवधारणा को इसके सम्पूर्ण रूप में ठीक से समझना आवश्यक है। इस इकाई में हम वैश्वीकरण की अवधारणा के अर्थ, उसके महत्व तथा दुष्प्रभावों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेगें।

14.3 वैश्वीकरण की अवधारणा का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of the Concept of Globalisation)

सामान्यत: वैश्वीकरण किसी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत (Integrate) करने के अर्थ में प्रयुक्त होता हैं। वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विश्व की अनेक देशों की अर्थव्यवस्था को एक दूसरे से जोड़ा जाता है ताकि व्यावसायिक क्रियाओं का विश्व स्तर पर विस्तार हो सके और उनकी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति का विकास हों सके। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत विश्व के विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं को इस प्रकार समन्वित एवं संग्रहित किया जाता है जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं, प्रोद्योगिकी, पूँजी और श्रम का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निर्बाध प्रवाह हो सके अर्थात् इन सबका आवागमन बेरोकटोक हो सके। इस दृष्टि से अर्थशास्त्रियों के अनुसार वैश्वीकरण के निम्नांकित चार अंग हैं :

1. व्यापारिक अवरोधों (Trade barriers) को कम करना ताकि विश्व स्तर पर वस्तुओं एवं सेवाओं की बेरोकटोक आवाज ही (Free flow of goods and services) हो सकें,
2. ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना जिससे विभिन्न देशों के बीच पूँजी का स्वतंत्र प्रवाह (Free flow of capital) हो सकें
3. ऐसा वातावरण निर्मित करना कि प्रौद्योगिकी का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निर्बाध प्रवाह (Uninterrupted flow of technology) हो सके तथा
4. ऐसा वातावरण तैयार करना जिससे विश्व के विभिन्न देशों के बीच श्रम का निर्बाध प्रवाह (Free movement of labour) हो सके।

वैश्वीकरण के समर्थक विकसित देश वैश्वीकरण की परिभाषा को इसके प्रथम तीन अंगों तक ही सीमित कर देते हैं जबकि वैश्वीकरण के समर्थक विकासशील देश वैश्वीकरण की परिभाषा में इसके उपर्युक्त वर्णित चारों अंगों को सम्मिलित करते हैं। वास्तव में देखा जाए तो वैश्वीकरण का अन्तिम लक्ष्य समस्त विश्व को एक **'वैश्विक ग्राम' (Global village)** के रूप में परिकल्पित करना हैं-एक ऐसा गाँव जहाँ किसी प्रकार के कोई प्रतिबन्ध न हों। वैश्वीकरण के इस चौथे अंग को ध्यान में रख कर हाल ही में, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ द्वारा स्थापित वैश्वीकरण के सामाजिक आयाम (Social dimensions of globalisation)पर विश्व आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे मानवीय पूँजी (श्रम) के प्रवाहों के प्रश्न पर ध्यान दिया हैं और इसके फलस्वरूप विकासशील देशों की सहायता के लिए इसके कार्य भाग पर विचार किया गया हैं।

1995 में विश्व व्यापार संगठन (W.T.O) की स्थापना से वैश्वीकरण की अवधारणा की व्याप्ति को काफी बल मिला हैं। यदि हम वैश्वीकरण की अवधारणा का थोड़ा गहराई से अध्ययन करें तो यह अवधारणा प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित 'तुलनात्मक लागत-लाभ सिद्धान्त' (Comparative cost advantage doctrine) पर आधारित आधुनिक विवरण/रूप (Modern version) हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त के आधार पर यह तर्क दिया था कि

अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण से व्यापार करने वाले दोनों देशों को लाभ होगा। अब बदले परिवेश में वैश्वीकरण के समर्थक यही तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहभागी सभी राष्ट्रों को लाभ होगा। वैश्वीकरण के समर्थक विकास हेतु 'आयात प्रतिस्थापना विकास व्यूहरचना' की अपेक्षा निर्यात प्रेरित विकास व्यूहरचना' को अधिक प्राथमिकता एवं महत्व (Attaches more importance to 'Exports-induced developments strategy' in comparison to 'Import substitution development strategy') देते हैं।

वैश्वीकरण की अवधारणाओं के बारे मे यह कहा जाता हैं कि सामाजिक विज्ञान के जितने विषय (Disciplines) हैं, उतनी ही वैश्वीकरण की अवधारणाएँ हैं। कुछ विशेषज्ञ वैश्वीकरण को देशों के बीच होने वाले व्यापार में सीमाओं और बाधाओं की अनुपस्थिति (Absence of borders and barriers to trade between nations-ohmae) मानते हैं। लेकिन कुछ अन्य विशेषज्ञ इसे अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादन, निवेश व व्यापार के पारम्परिक स्वरूप (Traditional pattern of trade-Dicken) के रूप में परिभाषित करते हैं। वैश्वीकरण की एक अन्य प्रचलित अवधारणा यह है कि यह एक व्यावसायिक व्यूहरचना है जिसका अर्थ सभी स्थानों पर एक समान काम करना है (Doing every thing the same every where-Kanter and Dretler)। इससे एक भिन्न अवधारणा यह है कि वैश्वीकरण व्यवसाय और समाज के एक दूसरे पर पड़े हितों के बीच अन्तर्सम्बन्ध है (Interconnection between overlapping interests of business and society-Brown)।

वैश्वीकरण की उपर्युक्त अवधारणाएँ आपस में एक दूसरे से अति महत्वपूर्ण रूप में भिन्न हैं क्योंकि इन सबके दृष्टिकोणों तथा विवरण में भारी अन्तर हैं। इन अवधारणाओ को ध्यान में रखते हुए विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपनेअपने तरीके से वैश्वीकरण को परिभाषित किया हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा वैश्वीकरण की जो परिभाषाएँ दी गयी हैं, उनको यहाँ नीचे प्रस्तुत किया जा रहा हैं :

स्टिगलिट्ज (Stiglitz) : के अनुसार, "वैश्वीकरण विश्व के विभिन्न देशों और लोगों का घनिष्ठ समन्वय है जो परिवहन एवं संचार लागतों में हुई भारी कमी के परिणामस्वरूप हो गया है और इसके फलस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाहों में कृत्रिम रूकावटें समाप्त की गयी (एक सीमा तक) हैं और अपनी सीमा के पार लोगों का आना-जाना बढ़ा हैं।

जगदीश भगवती (Jagdish Bhagwati) : के अनुसार, आर्थिक वैश्वीकरण में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में जोड़ने की प्रक्रिया समाविष्ट है और यह व्यापार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (निगमों या बहुराष्ट्रीय उद्यमों) अल्पकालीन पूँजी प्रवाहों, श्रम तथा सामान्यत: मानव जाति के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह और प्रौद्योगिकी के प्रवाह द्वारा सम्पन्न किया जाता हैं।"

इयान क्लार्क (Ian Clark) : के शब्दों में, वैश्वीकरण अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्व्यवहारो की तीव्रता एवं विस्तार दोनों को दर्शाता हैं। पहले अर्थ में, वैश्वीकरण एकीकरण, अन्तर्निभरता, बहुपक्षवाद खुलेपन तथा अन्तर्व्यापता जैसे सम्बन्धित विचारों से एक अंश तक परस्पर मिला

(overlap) हुआ हैं : बाद के अर्थ में, यह इन प्रवृत्तियों के भौगोलिक प्रसार को इंगित करता हैं एवं भूमण्डलवाद, स्थानिक संकुचन, सार्वभौमिकता, एवं सजातीयता से सम्बन्ध रखता हैं"
("Globalization denotes movements in both the intensity and extent of international interaction : in the former sense, globalization overlaps to some degree with related ideas of integration, interdependence, multilateralism, openness and interpenetration, in the later, it points to geographical spread of these tendencies and is cograte with globalism, spatial compression, universalisation and homogeneity")

थामस मैथ्यू (Thomas Mathew) : के शब्दों में, "वैश्वीकरण परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जो सीमा-पार क्रियाओं की वृद्धि तथा सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार के संयोग से फलित होती है तथा जो विश्वव्यापी वास्तविक समय सम्प्रेषण को सुगम बनाती हैं।" ("Globalisation is a process of change Resulting from a combination of increasing cross-border activity and spread of information technology, facilitating real-time communication world-wide.")

एन० वाघुल (N. Vaghul) : के अनुसार, "वैश्वीकरण शब्द बाजार क्षेत्र के तीव्र गति से विस्तार को प्रकट करता हैं, जो विश्वव्यापी पहुँच रखता हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं का विवेचन करने के पश्चात् हम मौटेतौर पर यह कह सकते हैं कि वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक देश की अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया जाता है ताकि सम्पूर्ण विश्व एक अर्थव्यवस्था और एक बाजार का स्वरूप ग्रहण कर सके अर्थात् सम्पूर्ण विश्व में वस्तुओं व सेवाओं, पूँजी, प्रौद्योगिक और श्रम का निर्बाध प्रवाह हो सके। वैश्वीकरण को सार्वभौमीकरण (universalisation), भूमण्डलीकरण (Mandalisation) के नाम से भी पुकारा जाता है। वैश्वीकरण को कुछ लोग 'अन्तर्राष्ट्रीयकरण (Internationalisation) के अर्थ में भी प्रयोग करते हैं, जो उचित नहीं हैं। अन्तर्राष्ट्रीयकरण राष्ट्रों के बीच सम्मुखीकरण वृद्धि (Expanding interfaces) है जो कभी-कभी राजनैतिक आक्रमण या आधिपत्य के रूप में भी प्रयुक्त होता हैं। वास्तव में, व्यवसाय का अन्तर्राष्ट्रीयकरण तो एक कृत्य/कार्य की ऐसी अवधारणा है जिसमें लोगों की चेतना में प्रगाढ़ राष्ट्रीयता होती है अर्थात् व्यवसाय, वस्तुओं, पूँजी का प्रवाह एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में होता हैं। इसके विपरीत वैश्वीकरण सम्पूर्ण विश्व को राष्ट्रहित तथा सीमारहित मानता है जिसके अन्तर्गत वस्तुएँ, पूँजी तथा लोगों का स्वतंत्र प्रवाह होता हैं। ("Internationalisation cannotes expanding interfaces between nations sometimes implying political invasion or domination. Internalisation of business, therefore, is a concept of an action in which nationality is strongly in people's consciousness. It means the flow of business, goods or capital from one country to another. Globalisation, by contrast, by contrast, looks at the whole world as being

nationless and borderless and borderless, Goods, capital and people have to be moving freely."-Koh Sera)

14.4 वैश्वीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Globalisation)

वैश्वीकरण की निम्नांकित चार विशेषताएँ है :

1. **विश्वव्यापी अन्तर्सम्बन्धों में वृद्धि (Growing world-wide interconnections) :** वैश्वीकरण की प्रथम विशेषता विश्वव्यापी अन्तर्सश्वश्वों में निरन्तर वृद्धि होना हैं, किन्तु ये अन्तर्सम्बन्ध सदैव स्पष्ट और स्थिर (Clear and steady) नहीं होते हैं। इनमें से कुछ की भविष्यवाणी की जा सकती हैं, जबकि अन्य की नहीं। गतिशील बाजारों से समीपता, परिवहन अवस्थापना तथा भरपूर प्राकृतिक संसाधन जैसे अनेक तत्व व्यक्तियों तथा राष्ट्रों को वैश्विक व्यापार तथा अन्य वैश्विक गतिविधियों की ओर आकृष्ट करते हैं। किसी देश की खराब अवस्थापना एवं खराब भूगोल (Poor infrastructure and poor geography) उसे वैश्विक अर्थव्यवस्था से पूरी तरह एकीकृत नही होने देते: जैसे चाड (Chad) तथा माली Mali)। खराब अवस्थापना और भूगोल के अतिरिक्त, राजनैतिक भ्रष्टाचार, शैक्षिक बाधाएँ, प्राकृतिक आपदाएँ, सीमित साधन, वैश्विक होने में अभिरूचि इत्यादि अनेक कारण यह स्पष्ट करते हैं कि देश/व्यक्ति वैश्विक अन्तर्सम्बन्धों की दृष्टि से कम या अधिक क्यों जुड़े हुए हैं?

वस्तुत: वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा वास्तव में प्रत्येक क्षेत्र की गतिविधि में अन्तर्सम्बन्ध बढ़ रहे हैं। इन में से कुछ सम्बन्ध विश्वव्यापी एकीकरण को प्रोत्साहित करते हैं जिनका सामूहिक प्रभाव संगठनों, राष्ट्रों तथा वैश्विक हितों के भीतर की तथा उनके बीच की सीमाओं को समाप्त कर देते हैं। विश्वव्यापी सम्बन्ध, जो एक क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं, उनके वैश्विक अर्थव्यवस्था से निकटतम सम्बन्ध होते हैं। ये प्रभाव विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूँजी तथा श्रम के बीच सम्बन्धों के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं, किन्तु वैश्वीकरण प्रत्यक्ष तथा खण्डित सम्बन्धों (Direct and discrete linkages) से कहीं अधिक हैं। बहु सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के वातावरणों को आपस में जोड़ते हैं अर्थात् जब एक क्षेत्र में गतिविधियाँ होती हैं, तो दूसरे क्षेत्र की गतिविधियों से जुड जाती हैं। उदाहरण के लिए, मध्यवर्गीय वैश्विक किशोर (Global teen of middle class,) जिनकी फैशन तथा संगीत की अभिरूचियाँ वैश्विक स्तर पर कमोबेश रूप में समान हैं। वैश्विक किशोरों का अभ्युदय एक सांस्कृतिक घटना हैं, किन्तु इससे जो सामान्य हित उत्पन्न हुए हैं, उनका वैश्विक दूरसंचार व्यवस्था के कारण विश्वव्यापी फैलाव हुआ हैं। इसके फलस्वरूप व्यवसाय व उद्योग किशोरों के लिए अपने उत्पादों के वैश्विक ब्राण्ड्स (Global brands) बनाने में लग गये इस प्रकार अकेले वैश्विक क्षेत्र में जो एक अलग-थलग (Isolated) गतिविधि है वह **'प्रथम क्रम प्रभाव (First order effect)** उत्पन्न करती है और वह बाद में चलकर द्वितीय, तृतीय तथा आगे के क्रम प्रभावों में प्रवाहित (Spillover) हो जाता है क्योंकि ये एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। सैटेलाइट प्रौद्योगिकी (Satellite technology) स्पिल ओवर प्रभाव (Spill-over effect) का सुन्दर उदाहरण हैं। इसका प्रथम क्रम प्रभाव

विश्वव्यापी दूरदर्शन ब्रोडकास्ट का है तथा द्वितीय क्रम प्रभाव लोगों द्वारा अधिक समय तक दूरदर्शन देखना तथा स्थानीय समुदाय के लोगों के साथ कम संवाद तथा कम होते सम्बन्धों के रूप में होता है। दूरदर्शन और उसके कारण बदलता सोच-विचार राष्ट्रीय और वैश्विक हितों में उभरती समरूपता का कारण बनता है। ये नये अन्तर्सम्बन्ध सांस्कृतिक सहभागिता (Cultural sharing) उत्पन्न करते हैं क्योंकि लोग परस्पर एक दूसरे से सीखते हैं। यह सांस्कृतिक सहभागिता तीसरा क्रम प्रभाव हैं। दूरदर्शन द्वारा प्रसारित विज्ञापनों द्वारा व्यक्तियों को नये उत्पादों व सेवाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती हैं, जिसके कारण नयी आवश्यकताएँ उत्पन्न होने लगती हैं। यह सैटेलाइट प्रौद्योगिकी का चतुर्थ क्रम प्रभाव हैं। इस परिवर्तन के अनेक प्रभाव पड़ते हैं : व्यावसायिक तथा अन्य संगठनों के लिए वैश्विक अवसर उत्पन्न होते हैं। सीमा पार व्यवस्था के नियमन के लिए सरकारों को नई चुनौतियों का सामना करना पडता है तथा बढ़ते हुए व्यापार से स्थानीय व विश्व अर्थव्यवस्था को स्फूर्ति मिलती है।

उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि किसी गतिविधि का वैश्विक प्रथम क्रम प्रभाव अन्तर्सम्बन्धों की स्थापना और उसमें वृद्धि का होता हैं जो वैश्विक गतिविधि के अन्य क्षेत्रों में क्रमश: अन्य क्रमिक प्रभाव उत्पन्न करता हैं।

2. **त्वरित एवं असतत् परिवर्तन (Rapid and discontinuous change) :** वैश्वीकरण की दूसरी विशेषता यह है कि इसकी प्रक्रिया त्वरित तो होती हैं, किन्तु सतत एवं स्थिर (Continuous and steady) नहीं होती हैं। वैश्विक अन्तर्सम्बन्ध प्रकृति से असत्त होते हैं, फलस्वरूप उनमें भारी उच्चावन होते हैं। उदाहरण के लिए, 1997 में एशिया के आर्थिक संकट के पश्चात् वैश्विक अन्र्सम्बन्ध धीमें हो गये, फिर तेज हुए और फिर पुन: कम हो गये। परिवर्तनों की गति में अनिरन्तरता व्यक्तियों व संगठनों के लिए अनुमान लगाने, निर्वचन करने तथा भविष्य के लिए योजना बनाने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं। परिवर्तनों की असत्ता का एक स्रोत वह घटना होती है जिसका वैश्विक महत्त्व होता हैं, किन्तु जो सम्पूर्ण विश्व में अलग-अलग गति एवं प्रभावों के साथ फैलती हैं। तदनुरूप अन्र्सम्बन्ध राष्ट्रों, उद्योगों, व्यवसायों तथा व्यक्तियों को अलग-अलग समयों में अलग-अलग तरीके से प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में एक वैश्विक घटना का प्रभाव भिन्न-भिन्न स्थानों व समयों में भिन्न-भिन्न होता हैं। 1997 का एशिया का आर्थिक संकट इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण अव्यवस्थित एवं असंगत (Disorganised and incoherent) होता है।

3. **सहभागियों की संख्या और विविधता में होती वृद्धि (Increased number and diversity of participants) :** वैश्वीकरण की तीसरी विशेषता यह है कि वैश्विक गतिविधियों से जुड़े खिलाडियों/सहभागियों (Actors) की संख्या और विविधता में होती निरन्तर वृद्धि हैं। उदाहरणार्थ, अब वैश्विक गतिविधियों में अनेक लघु एवं मध्यम उपक्रम (SAMEs) भी बड़े उपक्रमों के साथ साथ भाग लेने लगे हैं। इसके अलावा, लघु एवं विकासमान अर्थव्यवस्थाओं की कम्पनियाँ भी अब वैश्विक गतिविधियों में भाग लेने लगी हैं और इसी प्रकार निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ भी वैश्विक व्यावसायिक गतिविधियों में भाग लेने लगी हैं। वैश्वीकरण से पूर्व जो व्यावसायिक प्रतिबन्ध थे, अब उन सबकी दीवारें ढह गयी हैं इसके कारण सहभागियों की संख्या के साथ-साथ विविधता भी बढ़ गयी हैं। वैश्विक बाजार में अब अनेक

प्रतिस्पर्धी (Multiple competitors) आ गये हैं, जिनके आकार आकृति, उद्देश्य एवं व्यवहार में अन्तर है। इसके फलस्वरूप वैश्विक प्रबन्ध अपेक्षाकृत कम निश्चित, किन्तु जटिल हो गया हैं।

4. **बढ़ती जटिलता (Growing complexity) :** वैश्वीकरण की चौथी विशेषता 'एक विश्व (One world) की हैं, जो हमें अनेक प्रकार के व्यक्तियों और विचारों से साक्षात् करवाती है जिनके वैश्वीकरण के भविष्य के बारे में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं।

14.5 वैश्वीकरण की अवधारणा का महत्त्व (Importance of the concept of Globalisation)

वैश्वीकरण की अवधारणा का महत्व इससे प्राप्त होने वाले लाभों के द्वारा समझा जा सकता हैं। इसे वैश्वीकरण का सकारात्मक पक्ष भी कहा जाता है। वैश्वीकरण के समर्थक वैश्वीकरण के समर्थन में निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करते हैं :

1. **विदेशी निवेश को प्रोत्साहन (Promotion to foreign investment) :** वैश्वीकरण से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign direct investment) तथा पोर्टफोलियों निवेश (Portfolio investment) दोनों को प्रोत्साहन मिला हैं। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश होने से एक देश बिना अन्तर्राष्ट्रीय ऋणग्रस्तता के विकास हेतु संसाधन प्राप्त कर सकता हैं इसके अलावा, वैश्वीकरण की नीति से देश अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी बाजार से सस्ती दरों पर पूँजी एकत्र कर सकता हैं।

2. **प्रौद्योगिकी उपलब्धता (Availability of technology) :** वैश्वीकरण के कारण एकत्र उन्नत देशों द्वारा विकसित एवं प्रयुक्त अद्यतन प्रौद्योगिकी विकासशील राष्ट्रों को सुलभ होने लगती हैं। वैश्वीकरण प्रतिस्पर्धा को जन्म देता है, जिसके परिणामस्वरूप शोध एवं अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलता हैं। इससे उत्पादन की नवीन तकनीकों का विकास होता हैं।

3. **बाजार पहुँच विस्तार (Expansion of market access):** वैश्वीकरण के कारण विकासशील देशों को विकसित देशों में अपनी वस्तुओं व सेवाओं का निर्यात करने का अवसर मिलता हे जिसके कारण उनके निर्यातों में वृद्धि होती हैं। वैश्वीकरण के कारण प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क बाधाएँ कम होने लगती हैं, जिससे सभी राष्ट्रों की बाजार पहुँच विश्वव्यापी हो जाती हैं।

4. **ज्ञान का प्रसार (Dissemination of Knowledge) :** वैश्वीकरण से विश्व के सभी राष्ट्रों में ज्ञान का प्रसार बहुत तेजी के साथ होने लगता हैं, जिसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर (विशेषकर विकासशील देशों में) उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों बढ़ते हैं।

5. **लागतों में कमी (Reduction in costs) :** वैश्वीकरण प्रतिस्पर्धा के माध्यम से उत्पादन कुशलता को जन्म देता हैं, जिससे उत्पादन एवं अन्य प्रकार की लागतों में कमी आती हैं। उदाहरण के लिए, वैश्वीकरण के कारण परिवहन एवं संचार लागतों में विश्व-स्तर पर काफी कमी आई हैं। इससे वस्तुओं की कीमतों में कमी होती हैं, जो उपभोक्ताओं के लिए लाभप्रद हैं।

6. **संसाधनों का स्वतंत्र प्रवाह (Free flow of Resources) :** वैश्वीकरण से विश्व के विभिन्न देशों में श्रम, पूँजी, प्रौद्योगिकी, सूचना व वस्तुओं और सेवाओं का स्वतंत्र प्रवाह होने लगता है, फलस्वरूप संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग होने लगता हैं।

7. **विशाल आकार की मितव्ययताएँ (Economies of size) :** वैश्वीकरण के कारण व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का आकार बहुत बडा हो जाता है क्योंकि ये प्रतिष्ठान स्वतंत्रतापूर्वक किसी भी देश में व्यवसाय कर सकते हैं। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के विशाल आकार के कारण उन्हें पैमाने की आन्तरिक एवं बाह्य बचतें (Internal and External Economics of Scales) प्राप्त होती हैं। बहु-उत्पाद फर्मों (Multi-Product farms) को पैमाने की बचतों के अलावा क्षेत्र की बचतें (Economics of scope) मिलती हैं। बहुराष्ट्रीय निगम इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

8. **प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति का विकास (Development of competitive strength) :** वैश्वीकरण से स्वतंत्र व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है, फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लेती हैं। प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए व्यावसायिक निकायों/फर्मों को नवीनतम तकनीक तथा साधनों का अनुकूलतम उपयोग करने की विवशता होती हैं। फर्में अपने प्रबन्ध कौशल में भी सुधार करती हैं। इन सबके परिणामस्वरूप फर्मों द्वारा राष्ट्रों की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति का विकास होता हैं।

9. **जीवन स्तर में सुधार (Improvement in standard of living) :** वैश्वीकरण के कारण सभी लोगों को श्रेष्ठ व सस्ती वस्तुएँ तथा सेवाएँ सुलभ होने लगती हैं, इससे उनके जीवन स्तर में सुधार होता हैं।

10. **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि (Increase in internal co-corporation) :** वैश्वीकरण ने विश्व के राष्ट्रों को निकटतम सहयोग कर पारस्परिक लाभ वृद्धि का अवसर प्रदान किया हैं। इससे राष्ट्रों के बीच न केवल आर्थिक रिश्ते प्रगाढ़ बने हैं, वरन् उनके बीच सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्ध भी स्थापित हुए हैं। इन सबका कुल परिणाम विश्वबन्धुत्व की भावना में वृद्धि और आपसी सम्बन्धों के सौहार्दपूर्ण होने में देखा जा सकता हैं।

11. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं आर्थिक संवृद्धि में वृद्धि (Increase in international trade & Economic growth) :** वैश्वीकरण के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं आर्थिक संवृद्धि में वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप विश्व में गरीबी में कमी आई है और रोजगार के अवसर बढ़े हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था इसका जीवन्त उदाहरण हैं।

14.6 वैश्वीकरण के दुष्प्रभाव (Bad effects of globalisation)

वस्तुत: वैश्वीकरण एक मिश्रित वरदान हैं। जहाँ एक तरफ इसके लाभ हैं, दूसरी तरफ नकारात्मक प्रभाव भी हैं। वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों के कारण ही इसका विरोध होता हैं और आलोचकों द्वारा आलोचना की जाती हैं। वैश्वीकरण के दुष्प्रभावों को यहाँ बिन्दु बद्ध कर उनका विवरण दिया जा रहा हैं :

1. **गला काट प्रतिस्पर्धा (Cut throat competition) :** वैश्वीकरण ने विश्वव्यापी खुली प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है जिसके कारण अनेक व्यावसायिक संस्थाएं या तो रूग्ण हो गयीं अथवा समाप्त हो गयी।

2. **बहुराष्ट्रीय निगमों का बढ़ता दबदबा (Increasing influence of MNCs) :** वैश्वीकरण के कारण विदेशी निवेश की छूट से वैश्विक अर्थव्यवस्था मे बहुराष्ट्रीय निगमों का दबदबा बढ़ता चला जा रहा हैं। ये निगम अपनी आर्थिक-व्यावसायिक ताकत के बल पर छोटे

व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का अधिग्रहण (Take-over) करने लगे हैं या उनका संविलयन (Merger) करने लगे हैं।

3. **एकाधिकारात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन (Encouragement to monopolistic tendencies) :** अधिग्रहण एवं संविलयन की बढ़ती विश्वव्यापी प्रवृत्ति तथा व्यावसायिक संयोजनों (Business combinations) के प्रति रूझान ने व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा को कम कर दिया हैं। इसके परिणामस्वरूप एकाधिकारात्मक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होने लगी हैं। ये प्रवृत्तियाँ उपभोक्ताओं के हितों के विरूद्ध कार्य करती हैं।

4. **लघु एवं कुटीर उद्योगों को खतरा (Danger to small and cottage industries) :** भीमकाय उद्योगों की विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धा में लघु एवं कुटीर उद्योगों के न टिक पाने के कारण इनके अस्तित्व को बचाने का खतरा उत्पन्न हो गया हैं। इन उद्योगों का या तो बड़े उद्योगों के साथ विलय करना होगा अथवा उनके साथ संयोजन करना पडेगा।

5. **आर्थिक असमानताओं में वृद्धि (Increase in economic disparities) :** वैश्वीकरण ने विभिन्न राष्ट्रों के बीच आर्थिक असमानताओं को बढ़ाया है। वैश्वीकरण से पिछड़े व विकासशील राष्ट्रों का विकसित राष्ट्रों की तुलना में कम फायदा हुआ है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द एवं शान्ति को खतरा उत्पन्न हो सकता हैं।

6. **बाजारीकरण को प्रोत्साहन (Encouragement to marketisation) :** वैश्वीकरण सम्पूर्ण विश्व को एक बाजार के रूप में देखता हैं। इसके कारण बाजारवाद को प्रोत्साहन मिला हैं। बाजारवाद के कारण समाज के नैतिक मूल्यों का हास हुआ हैं और आपाधापी बढ़ने से लोगों में तनाव बढ़ गया हैं।

7. **राष्ट्र की स्वतंत्र अस्मिता पर प्रहार (Attack on national identity) :** वैश्वीकरण ने 'वैश्विक ग्राम' की परिकल्पना को मूर्तरूप प्रदान करने का काम किया हैं। अब ये स्वतंत्र राष्ट्र के स्थान पर विश्व बाजार के एक भाग हैं, फलस्वरूप इनकी स्वतंत्र अस्मिता संकट में हैं। विदेशी पूँजी की बढ़ती भूमिका ने इस संकट को और गहरा दिया हैं।

8. **विदेशी पूँजी और विदेशी प्रभाव का खतरा (Danger of foreign capital and foreign influence):** वैश्वीकरण ने विदेशी पूँजी निवेश को प्रोत्साहित तो किया हैं, किन्तु इसके कारण देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी प्रभाव का खतरा बढ़ गया हैं, जिसे कुछ लोग **ईस्ट इण्डिया कम्पनी सिन्ड्रोम** (East India company syndrome) कहते हैं। विदेशी पूँजी के बढ़ते प्रभाव के कारण देश का खुदरा व्यापार आसन्न खतरे से त्रस्त हैं।

वैश्वीकरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का विस्तृत विवेचन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण रामबाण औषधि (grand panacea) अथवा सर्वरोगनाशक औषधि नहीं हैं। यह तभी अधिक उपयोगी है जब इसके दुष्प्रभावों से बचने के लिए निरोधात्मक उपाय अपनायें जाये।

14.7 सारांश (Summary)

वैश्वीकरण विश्वव्यापी घटक बन चुका हैं। वैश्वीकरण किसी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने की प्रक्रिया हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रक्रिया के

चार अंग हैं: (1) वस्तुओं और सेवाओं का निर्बाध प्रवाह (2) पूँजी का स्वतंत्र प्रवाह : (3) प्रौद्योगिकी का निर्बाध प्रवाह :तथा (4) श्रम का निर्बाध प्रवाह। वैश्वीकरण के समर्थक विकसित देश वैश्वीकरण की परिभाषा को इसके प्रथम तीन अंगों तक ही सीमित रखते हैं जबकि विकासशील देश इसके अन्तर्गत चारों अंगों को सम्मिलित करते हैं। वैश्वीकरण का अन्तिम लक्ष्य वैश्विक ग्राम की परिकल्पना को साकार करना हैं, जहाँ किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध न हों। 1995 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से वैश्वीकरण के फैलाव का मार्ग प्रशस्त हुआ हैं। वैश्वीकरण प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित 'तुलनात्मक लागत-लाभ सिद्धान्त' पर आधारित आधुनिक रूप हैं। वैश्वीकरण के समर्थक विकास के लिए 'आयात प्रतिस्थापन विकास व्यूहरचना' के स्थान पर 'निर्यात प्रेरित विकास व्यूहरचना' को अधिक महत्व देते हैं। वैश्वीकरण की चार प्रमुख विशेषताएँ हैं (1) विश्वव्यापी अन्तर्सम्बन्धों में वृद्धि (2) त्वरित एवं असतत् परिवर्तन (3) सहभागियों की संख्या और विविधता में वृद्धि तथा (4) बढती जटिलता। वैश्वीकरण की अवधारणा के महत्व के निम्नांकित बिन्दु हैं (1) विदेशी निवेश को प्रोत्साहन (2) प्रौद्योगिकी उपलब्धता (3) बाजार पहुँच विस्तार (4) ज्ञान का प्रसार (5) लागतों में कमी (6) संसाधनों का स्वतंत्र प्रवाह (7) विशाल आकार की मितव्ययताएँ (8) प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति का विकास (9) जीवन-स्तर में सुधार (10) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि तथा (11) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं आर्थिक संवृद्धि में वृद्धि।

वैश्वीकरण के दुष्प्रभाव अग्रलिखित हैं (1) गलाकट प्रतिस्पर्धा (2) बहुराष्ट्रीय निगमों का बढ़ता दबदबा (3) एकाधिकारात्मक प्रवृत्तियों को बल (4) लघु एवं कुटीर उद्योगों के अस्तित्व को खतरा (5) आर्थिक असमानताओं में वृद्धि (6) बाजारीकरण को प्रोत्साहन (7) राष्ट्र की स्वतंत्र अस्मिता पर प्रहार तथा (8) विदेशी पूँजी तथा विदेशी प्रभाव का खतरा। वैश्वीकरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों के आधार पर यह कहा जा सकता हैं कि वैश्वीकरण एक मिश्रित वरदान हैं।

14.8 शब्दावली (Key words)

1. **वैश्वीकरण (Globalisation) :** यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक देश की अर्थव्यवस्था को शेष विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया जाता है ताकि व्यापार और बाजार का विस्तार हो सके तथा वस्तुओं व सेवाओं पूँजी, श्रम व प्रौद्योगिकी का निर्बाध प्रवाह हो सकें।

2. **उदारीकरण (Liberalisation) :** इसके अन्तर्गत किसी अर्थव्यवस्था में लगे आर्थिक प्रतिबन्धों को या तो कम किया जाता हैं अथवा पूरी तरह समाप्त किया जाता हैं।

3. **निजीकरण (Privatisation) :** निजीकरण का आशय देश के आर्थिक जीवन में सरकार की भूमिका को कम करके निजी क्षेत्र की सहभागिता और भूमिका को प्रोत्साहित करने से हैं।

4. **व्यापारिक अवरोध (Trade Barriers) :** स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में रूकावट पैदा करने वाले समस्त घटक व्यापारिक अवरोधों की श्रेणी में आते हैं। इनके अन्तर्गत प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क दोनों प्रकार के अवरोध सम्मिलित हैं।

5. **तुलनात्मक लागत-लाभ सिद्धान्त (Comparative cost advantage doctrine) :** इस सिद्धान्त के अनुसार एक देश को उन वस्तुओं का उत्पादन व निर्यात करना चाहिए जिनमें उसका तुलनात्मक लागत-लाभ सर्वाधिक हो अथवा तुलनात्मक लागत-हानि न्यूनतम हो।

6. **आयात प्रतिस्थापन विकास व्यूहरचना (Import induced development strategy) :** इस व्यूहरचना के अन्तर्गत आयात की जाने वाली वस्तुओं को देश के भीतर उत्पादन किया जाता हैं, ताकि बाद मे उनका आयात करने की आवश्यकता न रहे।

7. **निर्यात प्रेरित विकास व्यूहरचना (Export induced development strategy) :** इस व्यूहरचना के अन्तर्गत देश अपने निर्यातों को बढ़ाने का हरसंभव प्रयास करता हैं ताकि देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में निर्यातों का हिस्सा पर्याप्त रूप से बढ़ सके।

8. **अन्तर्राष्ट्रीयकरण (Internationalisation) :** इसके अन्तर्गत वस्तुओं व सेवाओं तथा पूँजी का प्रवाह एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में होता हैं। यह एक ऐसी अवधारणा है जिसमें लोगों की चेतना में प्रगाढ़ राष्ट्रीयता घुसी रहती हैं।

14.9 स्व-परख प्रश्न (Self Exercises)

लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Short-Answer Questions)

1. वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं?
2. वैश्वीकरण की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
3. वैश्वीकरण की अवधारणा के चार प्रमुख महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
4. वैश्वीकरण के प्रमुख दुष्प्रभाव स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. वैश्वीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. "वैश्वीकरण एक मिश्रित वरदान हैं। "इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. वैश्वीकरण अन्तर्राष्ट्रीयकरण से कैसे भिन्न हैं? वैश्वीकरण के दुष्प्रभावों का वर्णन कीजिए।
4. वैश्वीकरण पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

इकाई-15

निजीकरण एवं विनिवेश

(Privatisation and Disinvestment)

इकाई की रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 निजीकरण का अर्थ एवं विशेषताएँ

15.4 निजीकरण के उद्देश्य

15.5 निजीकरण के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क

15.6 भारत में निजीकरण

15.7 भारत में विनिवेश

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 स्व-परख प्रश्न,

15.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- निजीकरण का अर्थ, उद्देश्य और इसके औचित्य के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- भारत में निजीकरण की वर्तमान स्थिति के बारे में जान सकेंगे।
- विनिवेश का अर्थ और भारत में विनिवेश सम्बन्धी नीति एवं वर्तमान स्थिति के बारे में जान सकेगें।

15.2 प्रस्तावना

वर्तमान विश्व में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की बयार बह रहीं है। इसके फलस्वरूप सरकार आर्थिक क्षेत्र में अपनी भूमिका निरन्तर कम करती जा रहीं है। निजीकरण एवं विनिवेश इन्ही नीतियों की उपज हैं। निजीकरण एवं विनिवेश के माध्यम से सरकार देश की अर्थव्यवस्था में न केवल सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को सीमित करने का प्रयत्न कर रहीं हैं, वरन निजीकरण को भी प्रोत्साहन दे रहीं हैं। हम इस इकाई में भारत के विशेष सन्दर्भ में निजीकरण एवं विनिवेश की नीति और स्थिति का विस्तृत अध्ययन करेंगें।

15.3 निजीकरण का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Privatisation)

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की नीतियों के कारण देश में सार्वजनिक उपक्रमों (Public Enterprises) के निजीकरण की प्रक्रिया अपनायी गयी। सरकार के पास संसाधनों का अभाव,

सार्वजनिक उपक्रमों की अकार्यकुशलता एवं निरन्तर होने वाला घाटा, पेशेवर प्रबन्ध का अभाव आदि अनेक कारणों ने सरकार को निजीकरण एवं विनिवेश सम्बन्धी कठोर कदम उठाने के लिए विवश कर दिया। सामान्य अर्थ में, निजीकरण किसी सम्पति/संस्था या सेवा कार्य को सार्वजनिक क्षेत्र के स्वामित्व एवं नियंत्रण से हटाकर निजी क्षेत्र के स्वामित्व एवं नियंत्रण में देने की क्रिया से लिया जाता है, किन्तु निजीकरण के परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र को उन क्षेत्रों में भी प्रवेश का अवसर मिल जाता हैं, जो अब तक उसके लिए प्रतिबंधित थे।

संकुचित अर्थ,में, निजीकरण से आशय उस प्रक्रिया से लिया जाता है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के स्वामित्व को निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित किया जाता है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रमों की आशिक अथवा समस्त अंश पूँजी निजी उद्यमियों को बेच दी जाती हैं। वस्तुत: यह प्रक्रिया विराष्ट्रीयकरण **(Denationalisation)** की है। विस्तृत अर्थ में, निजीकरण के अन्तर्गत न केवल सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत न केवल सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के स्वामित्व एवं नियंत्रण को ही निजी क्षेत्र को सौंपा जाता हैं, वरन, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्रों/क्रियाओं (Reserved areas/activities) को भी निजी क्षेत्र को सौंप दिया जाता है और इस प्रकार निजी क्षेत्र के कार्यकलापों का क्षेत्र विस्तृत कर दिया जाता है। इसके अलावा निजी क्षेत्र को, नीतिगत परिवर्तनों के द्वारा, सरकार के कठोर नियंत्रण से मुक्त किया जाता है और उसे अब तक प्रतिबन्धित क्षेत्रों में भी उद्योग-धन्धें खोलने की छूट दी जाती है। संक्षेप में, निजीकरण के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को घटाया जाता है और निजी क्षेत्र की भूमिका को प्रोत्साहित किया जाता है।

जिबान के० मुखोपाध्याय के शब्दों में, "निजीकरण वह प्रक्रिया है जो किसी राष्ट्र के आर्थिक कार्यकलापों में सरकारी प्रभुत्व को कम करती है।" एक प्रमुख अमरीकी समाजशास्त्री ने भी निजीकरण की इसी प्रकार की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "निजीकरण वह कार्य है जिसके द्वारा किसी कार्य-कलाप में या सम्पतियों के स्वामित्व में सरकारी भूमिका का घटाया जाता है अथवा निजी क्षेत्र की भूमिका को बढ़ाया जाता है।"

सुसान के० जोन्स (Susan K.Jones) के अनुसार, ' 'निजीकरण से तात्पर्य किसी भी कार्यकलाप को सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित करना है। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र के कार्य-कलापों में केवल पूँजी अथवा प्रबन्ध विशेषज्ञों का प्रवेश भी हो सकता हैं, किन्तु अधिकांश मामलों, में इसमें सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का निजी क्षेत्र में हस्तान्तरण होता है।"

विस्तृत अर्थ में निजीकरण का अर्थ **'आर्थिक प्रजातंत्र' (Economic Democracy)** से लिया जाता है। वीरेन जे. शाह के शब्दों में, "निजीकरण का अर्थ आर्थिक प्रजातंत्र हैं।"

निजीकरण की उपर्युक्त परिभाषाओं का निष्कर्ष यह है कि निजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के स्वामित्व एवं प्रबन्ध में या तो निजी क्षेत्र को सहभागी बनाया जाता है अथवा उनका स्वामित्व एवं प्रबन्ध निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित किया जाता है। वस्तुत: निजीकरण देश के आर्थिक जीवन में सरकारी प्रभुत्व एवं नियंत्रण को कम करके आर्थिक प्रजातंत्र स्थापित करने की प्रक्रिया है।

निजीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Privatisation) : निजीकरण की प्रमुख विशेषताएँ अग्रांकित हैं :

1. यह एक नवीन अवधारणा है, जो पिछले दो दशकों में अधिक विकसित हुई हैं।
2. यह एक. सर्वव्यापी अवधारणा है जिसे अनेक देश अपना रहें हैं। भारत के अलावा इसे अमरीका, ब्रिटेन, जापान एवं बांग्लादेश तक अपना रहा हैं।
3. व्यवहार में निजीकरण को विस्तृत अर्थ में ही प्रयुक्त किया जा रहा है अर्थात् इसे आर्थिक क्रियाओं में सरकारी प्रभुत्व को कम करने और निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देने के अर्थ में ही प्रयुक्त किया जा रहा है। इसलिए इसके अन्तर्गत विनियंत्रण विनियमन, आर्थिक उदारीकरण तथा विराष्ट्रीयकरण आदि आता है।
4. इसे देश में आर्थिक प्रजातंत्र स्थापित करने का साधन माना जाता हैं।
5. यह अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि निजी क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में प्रबन्ध एवं नियंत्रण की दृष्टि से अधिक कुशल है।
6. निजीकरण को आधुनिक प्रतिस्पर्धी युग की आर्थिक चुनौतियों का मुकाबला करने की नवीन व्यूह रचना (New Strategy) माना जाता है। इसे सामाजार्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया का एक प्रमुख अस्त्र माना जाता है।
7. यह निरन्तर रूप से चलने वाली एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है जिसके द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के स्थान पर निजी क्षेत्र अथवा जनता का क्षेत्र (People's Sector) विकसित किया जाता हैं।

15.4 निजीकरण के उद्देश्य (Objectives of Privatisation)

निजीकरण की नीति लागू करने के निम्नांकित उद्देश्य हैं :

1. सार्वजनिक उद्यम की अक्षमता को दूर करना तथा उनकी निष्पादन क्षमता में सुधार करना।
2. उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि करना।
3. सरकार के बजट घाटे की पूर्ति के लिए आवश्यक आर्थिक संसाधन जुटाना तथा सहायिकी (Subsidy) की लागत के बोझ को कम करना।
4. निर्यात प्रोत्साहन द्वारा अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जन करना।
5. देश में विदेशी पूँजी को आमंत्रित करना।
6. देश में उपलब्ध संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग करना।
7. देश में तीव्र औद्योगिक विकास हेतु उपयुक्त एवं अनुकूल वातावरण का निर्माण करना।
8. देश के उद्योगों को सार्वभौमिक (Universal)बनाना ताकि वे अपना अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप एवं पहचान कायम कर सकें।

निजीकरण के लिए अपनायी जाने वाली तकनीकें/क्रियाएँ/विधियाँ (Techniques/Activities/Methods of Privatisation) :

1. सार्वजनिक उपक्रमों की पूँजी विनिवेश (Disinvestment) करना अर्थात् उनकी अंश पूँजी को निजी क्षेत्र को बेच कर उसे सह-स्वामी या भागीदार बनाना।

2. सार्वजनिक उपक्रमों के संचालन को निजी क्षेत्र के उद्यमियों को पटे (Lease) पर देन।
3. सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबन्ध में निजी क्षेत्र के उद्यमियों को सहभागी बनाना।
4. सार्वजनिक उपक्रमों के कुछ कार्यो में निजी क्षेत्र को भागीदार बनाना। उदाहरण के लिए, रेलवे में भोजन एवं जलपान व्यवस्था निजी क्षेत्र को ठेके पर देना।
5. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोलना।
6. आधारभूत ढाँचे के विकास के लिए निजी क्षेत्र की अल्पकाल के लिए सेवाएँ लेना। उदाहरणार्थ, बन्दरगाहों, पुलों, सड़क मार्गों इत्यादि को BOT (Build, Operate and Transfer) आधार पर निजी क्षेत्र को देना।
7. राष्ट्रीयकृत उद्योगों का विराष्ट्रीयकरण (Denationalisation) करना।

15.5 निजीकरण के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क (Argument in favour and against Privatisation)

निजीकरण के एक तरफ अनेक लाभ हैं, तो दूसरी तरफ अनेक दोष भी हैं। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है:

निजीकरण के पक्ष मे तर्क (Argument in favour of Privatisation) :

1. निजीकरण सार्वजनिक उपक्रमों की अंश पूँजी के विनिवेश द्वारा सरकार को पर्याप्त वितीय संसाधन जुटाने में सहायक सिद्ध होता है। इससे राजकोष पर दबाव कम किया जा सकता है।
2. निजीकरण देश के संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करने में सहायक सिद्ध होता है। **हेमिंग तथा मन्सूर** के अनुसार, "निजीकरण आर्थिक कुशलता में वृद्धि करेगा।" इससे उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों में वृद्धि होगी।
3. निजीकरण सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार को समाप्त कर उसे अधिक प्रतिस्पर्धी बनाता है। सरकारी वित पोषण के अभाव में बाजारी शक्तियाँ सार्वजनिक क्षेत्र को कुशल बनने के लिए विवश करती हैं।
4. निजीकरण सार्वजनिक क्षेत्र की लाभ कमाने वाली इकाइयों के आधुनिकीकरण एवं विविधता के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होगा।
5. निजीकरण से राजनीतिक हस्तक्षेप, नौकरशाही एवं लालफीताशाही से मुक्ति मिलेगी जिसके कारण प्रबन्धकों की निर्णय लेने की क्षमता में सुधार होगा। इससे व्यक्तिगत प्रेरणा को प्रोत्साहन मिलेगा।
6. निजीकरण रूग्ण इकाइयों के पुनरूत्थान में सहायक होगा।
7. निजीकरण देश में उदार आर्थिक वातावरण के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा क्योंकि इसके अन्तर्गत सरकारी नियंत्रण एवं प्रतिबन्ध कम अथवा समाप्त हो जाते है। बिना निजीकरण के आर्थिक उदारीकरण संभव नहीं हैं। **रामचन्द्रन** के अनुसार, "उदारीकरण की प्रक्रिया में निजीकरण एक अनिवार्य कदम है।"

8. निजीकरण के कारण जनता पर कर-भार घटेगा क्योंकि सरकारी घाटे वाले उद्योग या तो बन्द कर दिये जाते हैं, या फिर पुनरूत्थान द्वारा उनकी कार्यकुशलता में सुधार कर उन्हें लाभ पर चलाया जाने लगता है।

निजीकरण के पक्ष में तर्क देते हुए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अधिकारी **मेक्फसन** ने कहा है कि "विकासशील देशों को अल्प विकास से मुक्ति दिलाने के लिए निजीकरण उपयुक्त कदम है।"

निजीकरण के विपक्ष में तर्क (Argument against Privatisation) : इन्टरनेशनल काँग्रेस ऑफ पब्लिक एण्टरप्राइजेज, नई दिल्ली में भारत के सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबन्धकों ने यह मत व्यक्त किया कि "दुनिया के विकसित राष्ट्र राष्ट्रीयकरण से निजीकरण की ओर जा रहे हैं। ऐसा इसलिए कि इन देशों में जनता के पास बहुत अधिक धन एवं सम्पत्ति हैं, उच्च किस्म के पूँजी बाजार हैं, तथा उच्च तकनीक व श्रेष्ठ विज्ञान का विकास हो रहा है। किन्तु विकासशील राष्ट्रों में, सार्वजनिक उपक्रम आज भी औद्योगिक विकास के आधारभूत साधन हैं तथा भविष्य में भी बने रहेंगे।" निजीकरण के अनेक दोष हैं, जो निम्नानुसार हैं:

1. सार्वजनिक उपक्रमों की अंश पूँजी के विनिवेश से केवल एक बार ही वितीय साधन प्राप्त होगें इसलिए सरकार की वितीय समस्या का स्थायी समाधान नहीं होगा।
2. निजीकरण से घाटे में चल रहे उद्योगों की लाभदेयता की कोई गारण्टी नहीं हैं। क्योंकि स्वयं निजी क्षेत्र के भी अनेक उपक्रम घाटे में चल रहे हैं।
3. निजीकरण से चन्द बडे औद्योगिक घरानों के हाथों आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण हो जाने का खतरा उत्पन्न हो जायेगा। जिससे आय व सम्पति के वितरण में विषमताएँ बढ़ेगी।
4. निजीकरण से असंतुलित क्षेत्रीय विकास होगा क्योंकि निजी क्षेत्र केवल वहीं पूँजी निवेश करेगा जहाँ उसे लाभ मिलेगा। पिछड़े क्षेत्रों मे लाभ की संभावना कम होने के कारण निजी क्षेत्र या तो वहाँ पूँजी निवेश ही नहीं करेगा अथवा कम करेगा।
5. निजीकरण से राष्ट्रीय प्राथमिकताओं एवं सामाजिक हितों की अनदेखी होगी क्योंकि निजी क्षेत्र सामाजिक लाभ और जन कल्याण के सिद्धान्तों पर नहीं चलता।
6. निजी क्षेत्र घाटे में चलने वाले रूग्ण सार्वजनिक उपक्रमों के अंश खरीदने में रूचि नहीं लेगा, परिणामस्वरूप उनकी अंश पूँजी का विनिवेश संभव नहीं हैं।
7. निजीकरण से देश की अर्थव्यवस्था बुरी तरह से निजी क्षेत्र पर निर्भर हो जायेगी। इतना ही नहीं, सार्वजनिक उपक्रमों की पूँजी विदेशी विनियोजकों द्वारा क्रय किये जाने के कारण विदेशी प्रभुत्व का खतरा उत्पन्न हो सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अर्थशास्त्री **जोसेफ स्टिगलिट्ज (joseph Stiglitiz)** ने अपनी पुस्तक **Globalisation and its Discontent'** में निजीकरण के कई खतरों की ओर ध्यान आकर्षित किया हैं। इनमें दो प्रमुख खतरे भ्रष्टाचार और श्रमिकों की छटनी है। स्टिगलिट्ज का मानना है कि कुछ प्रमुख निजी उद्यमी सरकारी अधिकारीयों की सहायता से लाभकारी सार्वजनिक उद्यमों को सस्ती कीमतों पर खरीदने में सफल हो जाते हैं। जहाँ सरकारी तंत्र भ्रष्ट हों, वहाँ निजीकरण की प्रक्रिया में भ्रष्टाचार होना तय हैं। निजीकरण के परिणामस्वरूप श्रमिकों की छटनी

होना भी लगभग निश्चित है। हालांकि भारत सरकार का दावा है कि भारत में निजीकरण के परिणामस्वरूप श्रमिकों की छटनी लगभग नाम मात्र के बराबर हुई हैं, तथापि निजी क्षेत्र सरकार पर यह दबाव निरन्तर बनाये हुए है कि श्रम कानूनों को लचीला बनाया जाए तथा उन्हें श्रमिकों को 'लगाने व हटाने (Hire and Fire) की छुट दी जाए। स्टिगलिट्ज का मानना है कि "सरकारी उद्यमों में कम-उत्पादकता वाली नौकरियों से हटाकर लोगों को बेरोजगारी की ओर धकेलने से देश की आय में वृद्धि नहीं होती है और निश्चय ही इससे श्रमिकों के कल्याण-स्तर में सुधार नहीं होता।"

निजीकरण के पक्ष एवं विपक्ष में दिये गये तर्को का अध्ययन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि निजीकरण एक दुधारी तलवार के समान है जिसका प्रयोग सोच-समझकर एक सीमा तक ही किया जाना चाहिए।

15.6 भारत में निजीकरण (Privatisation in India)

वास्तव में देखा जाए तो राजीव गांधी और वी. पी. सिंह ने सन 1985 में उदारीकरण की नीति की नींव रखी थी, किन्तु इसे मूर्त एवं मुखर रूप नरसिम्हा राव एवं मनमोहन सिंह ने 1991 में दिया, जब उन्होने आर्थिक **सुधारों की नीति (Policy of Economic Reforms)** की घोषणा की। जुलाई, 1991 की नई औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार के लिए जिन कदमों की घोषणा की गयी थी, उन्ही से देश में निजीकरण की नीति प्रारम्भ हुई।

भारत सरकार ने 1991 में और उसके पश्चात निजीकरण के लिए जो कदम उठाये है, उनका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार हैं:

1. **सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या में कमी (Reduction in number of industries reserved for public for sector) :** 1956 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 17 उद्योगों को आरक्षित रखा गया, किन्तु 1991 की औद्योगिक नीति में इनकी संख्या घटाकर 8 कर दी गयी। बाद में 5 और उद्योगों को आरक्षित सूची से हटा दिया गया। इस प्रकार अब केवल 3 उद्योग ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित सूची में रह गये हैं। ये उद्योग हैं : (i) परमाणु ऊर्जा (ii) परमाणु ऊर्जा (उत्पादन एवं उपयोग) सूची 1955 मे दर्ज खनिज, तथा (iii) रेल परिवहन। इससे यह स्पष्ट है कि उक्त तीन उद्योगों को छोडकर देश के सभी उद्योगों में अब निजी क्षेत्र प्रवेश कर सकता है।

2. **लाइसेंस की अनिवार्यता वाले उद्योगों की संख्या में कमी (Reduction in number of industries for which licence is compulsory) :** निजीकरण को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से सरकार ने विगत वर्षो में ऐसे उद्योगों की संख्या में कमी की है जिन्हें लाइसेंस लेने की अनिवार्यता थी। 1991 की औद्योगिक नीति में लाइसेंस लेने की अनिवार्यता वाले उद्योगों की संख्या 18 थी, जो वर्तमान में घटकर 5 रह गयी हैं। इनमें मुख्य रूप से आणविक ऊर्जा तथा सामरिक सुरक्षा से सम्बन्धित उद्योग हैं।

3. **सार्वजनिक उपक्रमों की अंश पूँजी का विनिवेश (Disinvestment of share capital of Public enterprises) :** भारत सरकार ने निजीकरण की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम

कुछ चुनिंदा सार्वजनिक उद्यमों की अंश पूँजी उद्यमों की अंश पूँजी को सामान्य जनता, श्रमिकों तथा निजी क्षेत्र को बेचने का उठाया है, जिसे विनिवेश कहते हैं। सर्वप्रथम, सरकार ने 1991-92 में 30 सार्वजनिक उपक्रमों की अंश पूँजी का विनिवेश किया, जिससे 3038 करोड़ रू० की प्राप्ति हुई। इसके पश्चात से विनिवेश की प्रक्रिया सत्त रूप से जारी है सरकार को 2003-04 वित्तीय वर्ष में विनिवेश से 15,547 करोड़ रू० तथा 2004-05 में 2,765 करोड रू० प्राप्त हुए। विनिवेश से 2004-05 तक कुल संचयी प्राप्ति (Accumulated receipts) 47,69० करोड रू० की हुई है जो लक्ष्य से काफी कम (लगभग 50%) हैं।

4. **राष्ट्रीयकृत बैंको की अंश पूँजी निजी क्षेत्र को बेचने की अनुमति (Permission to sell share capital of nationalized bank to private sector) :** सरकार ने राष्ट्रीयकृत बैंकों को अपनी 70% अंश पूँजी निजी क्षेत्र को बेचने की अनुमति प्रदान कर दी हैं। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा अनेक राष्ट्रीयकृत बैंकों ने सार्वजनिक निर्गमों के द्वारा जनता को अपनी अंश पूँजी में भागीदार बनाया हैं।

5. सरकार ने निजीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए निजी क्षेत्र मे बैंक स्थापित करने की अनुमति प्रदान कर दी हैं। इसके परिणामस्वरूप देश मे कई बैंक निजी क्षेत्र में स्थापित हो चुके हैं।

6. सरकार ने निजी क्षेत्र में पारस्परिक निधि (Mutual Funds) स्थापित करने की अनुमति प्रदान कर रखी है जिसके परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र में अनेक पारस्परिक निधियों की स्थापना हो चुकी है। उदाहरण के लिए, मोर्गन स्टेनले, एप्पल, ट्वन्टीयथ संचुरी आदि समूहों द्वारा पारस्परिक निधियों की स्थापना की जा चुकी हैं।

7. देश की प्रमुख विकास वित संस्थाओं (भारतीय औद्योगिक वित निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक इत्यादि) द्वारा अपनी अंश पूँजी आम जनता को निर्गमित की गयी हैं।

8. वायु परिवहन के क्षेत्र मे सरकार ने निजी क्षेत्र की कम्पनियों को लाइसेंस देना प्रारम्भ कर दिया हैं।

9. निजी क्षेत्र की कम्पनियों को बिजली व दूरसंचार के क्षेत्र में अनेक रियायतें प्रदान की गयी हैं।

10. बीमा क्षेत्र में निजी क्षेत्र को प्रवेश की अनुमति दी जा चुकी है। अब बीमा क्षेत्र में कई निजी कम्पनियाँ कार्यरत हैं।

11. **समझौता ज्ञापनों (Memorandum of understanding)** के द्वारा सार्वजनिक उद्यमों के निष्पादन में सुधार किया जा रहा है। अब तक 100 से अधिक सार्वजनिक उद्यमों के साथ समझौता ज्ञापन किये जा चुके हैं। समझौता ज्ञापनों के अन्तर्गत सरकार द्वारा सार्वजनिक उद्यमों को स्वायत्तता पैकेज (Autonomy Package) दिया जाता है जिससे उनकी वित्तीय एवं प्रबन्धकीय स्वयत्तता बढ़ती हैं, फलस्वरूप उनके निष्पादन में सुधार आता हैं। समझौता ज्ञापन की शुरूआत 1987-88 में 4 सार्वजनिक उद्यमों के साथ की गयी।

नवरत्नों की नीति (**Policy for Navaratnas**) : 1997-98 के केन्द्रीय बजट में 9 उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले सार्वजनिक उद्यमों को 'नवरत्नों' की संज्ञा दी गयी। सरकार ने इन

उद्यमों को सम्पूर्ण वितीय एवं प्रबन्धकीय स्वायत्तता प्रदान करने की घोषणा की ताकि ये विश्वस्तरीय उद्यम बन सकें। बाद में चल कर कुछ और लाभ कमाने वाले सार्वजनिक उद्यमों को **'मिनी रत्न' (Mini Ratnas)** की संज्ञा दी गयी। 3। मार्च 2005 तक मिनी रत्नों की संख्या 45 थी। मिनी रत्नों को नवरत्नों की तुलना में अपेक्षाकृत कम स्वायत्तता दी गयी है। सार्वजनिक उद्यमों के कुल लाभ में नवरत्नों का हिस्सा लगभग 50% है।

15.7 भारत में विनिवेश (Disinvestment in India)

जब सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम अपनी अंश पूँजी को सामान्य जनता अथवा निजी संस्थाओं को बेचते हैं, तो इस क्रिया को विनिवेश अथवा अपनिवेश कहा जाता है। विनिवेश को निजीकरण का सबसे प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण अस्त्र माना जाता है। भारत में विनिवेश का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय संसाधनों एवं परिसम्पत्तियों का अनुकूलन प्रयोग करना है। सरकार की विनिवेश नीति के उद्देश्य निम्नांकित हैं :

1. सार्वजनिक उपक्रमों का आधुनिकीकरण एवं उन्नयन करना, उनमें व्यापक सार्वजनिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना एवं बेहतर उत्तरदायित्व की भावना पैदा करना।
2. नई परिसम्पत्तियों का सृजन करना।
3. सरकारी ऋण को समाप्त करना।
4. रोजगार अवसरों का सृजन करना।
5. विनिवेश आय निधि स्थापित करना।
6. सरकारी बजट के लिए गैर-स्फीतिकारक वित्तीय संसाधन जुटाना। वर्ष 2000-01 में सरकार ने पहली बार विनिवेश नीति पर एक वक्तव्य दिया जिसमें यह कहा गया कि वह गैर-महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में अपनी हिस्सेदारी को 26 प्रतिशत अथवा आवश्यकता पड़ने पर इससे नीचे तक लाने को तैयार है, अनुकूल बिक्री पर निरन्तर जोर दिया जाएगा और विनिवेश से प्राप्त होने वाली समस्त आय को सामाजिक क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की पुर्नसंरचना तथा पुनरूद्धार एवं सेवा निवृति पर होने वाले सार्वजनिक ऋण, को चुकाने पर व्यय करेगी। सरकार ने अपने वक्तव्य में सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों के हितों की पूरी रक्षा करने की भी बात कही। विनिवेश पर सरकार के इस नीतिगत वक्तव्य से पूर्व विनिवेश एकपक्षीय एवं बजटीय कार्यक्रम ही बना रहा। इस नीतिगत वक्तव्य से पूर्व भारत सरकार ने 23 अगस्त, 1996 को **जी० वी० रामकृष्ण** की अध्यक्षता में **विनिवेश आयोग (Disinvestment Commission)** का गठन किया। आयोग की सिफारिशें बाध्यकारी न होकर मात्र सलाहकारी थी, जिसके कारण आयोग की वास्तविक उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह लग गया। 16 मार्च 1999 को सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का सामरिक एवं गैर-सामरिक क्षेत्र में वर्गीकरण किया और यह निर्णय लिया कि सामरिक क्षेत्र के उपक्रमों को छोडकर शेष सभी उपक्रम गैर-महत्त्वपूर्ण श्रेणी के होंगे। इस वर्गीकरण का उद्देश्य रणनीतिक (Strategic) सार्वजनिक उपक्रमों को सदृढ करना तथा गैर-रणनीतिक (Non-Strategic) सार्वजनिक उपक्रमों को सदृढ करना तथा गैर-रणनीतिक (Non-Strategic) सार्वजनिक उपक्रमों का

निजीकरण करना था। सार्वजनिक क्षेत्र के निम्नलिखित उद्यमों को सामरिक क्षेत्र में रखा गया :

1. हथियार व गोला बारूद तथा रक्षा उपकरण की सम्बद्ध मदें, रक्षा विमान तथा युद्धपोत।
2. परमाणु ऊर्जा (नाभिकीय विद्युत उत्पादन से सम्बन्धित तथा विकिरण का उपयोग और कृषि के लिए रेडियों आइसोटोप्स, औषधि तथा गैर-सामरिक उद्योगों को छोड़ कर)।
3. रेल यातायात।

विनिवेश आयोग अब तक 20 सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश अनुशंसा कर चुका है। आयोग की अनुशंसा के आधार पर सरकार ने सितम्बर, 1997 में सात सार्वजनिक उपक्रमों के अंशों की बिक्री की स्वीकृति प्रदान कर दी है। ये सात उपक्रम बालकों, कुद्रेमुख आयरन ओर, मॉडर्न फूड्स आई. टी. डी. सी. बोंगाई गाँव रिफाइनरी, इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्री तथा हिन्दुस्तान टेलीप्रिन्टर लि. हैं। आयोग ने अपनी 13वी रिर्पोट जनवरी, 2002 में प्रस्तुत की जिसमें चार उपक्रमों में विनिवेश की अनुशंसा की गयी है। ये हैं : (1) नेवेली लिग्नाइट कॉरपोरेशन (2) मैगनीज ओर (इण्डिया) लिमिटेड, (3) रेल इण्डिया टेक्नीकल एण्ड इकोनोमिक सर्विसेज लि. तथा (4) प्रोजेक्ट एण्ड इक्यूपमेंट कॉरपोरेशन लि.।

सरकार ने दिसम्बर 1999 में एक **स्वतंत्र विनिवेश विभाग (Disinvestment Department)** की स्थापना की। इस विभाग का काम विनिवेश आयोग की सिफारिशों का अध्ययन कर उनके क्रियान्वयन के लिए दिशा-निर्देश तय करना तथा भविष्य में विनिवेश की दिशा के बारे में सुझाव देना था।

विनिवेश से प्राप्ति (Receipts from Disinvestment) : भारत सरकार ने 1991-92 में पहली बार विनिवेश प्रक्रिया प्रारम्भ की। तब से लेकर अब तक विनिवेश के लक्ष्य, प्राप्ति व संचयी प्राप्ति को सारणी संख्या 15.1 में दर्शाया गया हैं :

सारणी संख्या 15.1

(राशि करोड़ रू० में)

वर्ष	लक्ष्य	प्राप्ति	संचयी प्राप्ति
1991-92	2,500	3,038	3,038
1992-93	2,500	1,913	4,951
1993-94	3,500	0	4,951
1994-95	4,000	4,843	9,794
1995-96	7,000	361	10,156
1996-97	5,000	380	10,536
1997-98	4,800	902	11,438
1998-99	5,000	5,371	16,809
1999-2000	10,000	1,860	18,638
2000-01	10,000	1,871	20,508
2001-02	12,000	5,632	26,111

2002-03	12,000	3,348	29,456
2003-04	14,500	15,547	40,006
2004-05	4,000	2,765	47,690

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि सरकार के विनिवेश लक्ष्य और वास्तविक प्राप्तियों में भारी अन्तर रहा है। तीन वर्षो (1991-92, 1994-95 तथा 1998-99) को छोडकर किसी भी वर्ष में विनिवेश लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सके। 1993-94 में तो वास्तविक प्राप्ति शून्य रहीं हैं। 1991-92 से लेकर 2004-05 तक की अवधि में कुल संचयी प्राप्ति 47,690 करोड रू० थी, जो 96,800 करोड रू० के लक्ष्य का लगभग 50 प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकार की विनिवेश नीति अपने उद्देश्य में सफल नहीं रही हैं।

केन्द्र सरकार की विनिवेश नीति विगत एक दशक मे उभर कर सामने आई हैं। सरकार द्वारा विनिवेश नीति प्राय: बजट के माध्यम से घोषित की जाती हैं। केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों का अंश पूँजी विनिवेश 1991-92 में प्रारम्भ हुआ। 1999-2000 तक विनिवेश छोटे समूहों में (in small lots) अल्प अंशो (Minority sale) की बिक्री द्वारा किया गया। अप्रैल, 1991 से मार्च 2006 तक विनिवेश से कुल प्राप्ति 49241.29 करोड रू० की हुई। वर्तमान में, विशाल और लाभदायक केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों को घरेलु स्कन्ध विपणी (Stock Exchange) में सूचीबद्ध करने की हैं।

विनिवेश की विधियाँ (Methods of Disinvestment)

सरकार ने विनिवेश की निम्नांकित दो विधियाँ का प्रयोग किया :-

1. विशिष्ट सार्वजनिक उद्यमों के अंशों की बिक्री, तथा
2. सार्वजनिक उपक्रमों की निजी क्षेत्र के उद्यमियों के हाथों में बिक्री - इसे **'रणनीतिक बिक्री (Strategic sale)** की संज्ञा दी गयी।

सरकार ने प्रारम्भ में अच्छे व बुरे प्रदर्शन करने वाले सार्वजनिक उपक्रमों के अंशों को एक साथ इकट्ठे **समूह (Bundle)** में बेचे, जिसे **'बन्डलिंग (Bundling)** की संज्ञा दी गयी। इससे सरकार को नुकसान हुआ क्योंकि इस नीति के कारण अच्छी कम्पनियों के अंश भी बहुत सस्ते में बिक गये और सरकार को काफी कम औसत कीमत प्राप्त हुई। इसलिए सरकार ने इस नीति को 1992-93 में छोड़ दिया और नीलामी द्वारा प्रत्येक कम्पनी के अंश अलग-अलग बेचने प्रारम्भ किये। 1994-95 में अनिवासी भारतीयों तथा अन्य लोगों को भी नीलामी में भाग लेने की अनुमति प्रदान की गयी। **1999-2000 से सरकार 'रणनीतिक बिक्री'** के माध्यम से विनिवेश कर रहीं हैं। विनिवेश विधि में इस परिवर्तन का यह औचित्य है कि पहली विधि में अंशों की बिक्री बाजार प्रत्याशाओं पर आधारित होती है, जबकि रणनीतिक बिक्री विधि कम्पनी की 'दीर्घकालीन मूल्य कीमत' को प्रतिलक्षित करती है इसलिए निजी क्रेता अंशों की अधिक कीमत देने को तैयार हो जाते हैं। सरकार ने जिन सार्वजनिक उद्यमों की रणनीतिक बिक्री की हैं, उनमें प्रमुख हैं : MFIL, VSNL, IPCL BALCO, CMC Ltd.& HCL.

विनिवेश नीति की आलोचना (Criticism of Disinvestment Policy) : भारत सरकार की विनिवेश नीति अनेक दोषों से ग्रसित रही हैं जिसके कारण इसकी कटु आलोचना की

जाती रही है। यह हमेशा विवाद का विषय रही हैं। आलोचकों द्वारा विनिवेश नीति की निम्नांकित आलोचना की जाती हैं :

1. सार्वजनिक उपक्रमों के अंशों को सस्ते दामों पर घाटे में बेचा गया। इन इकाइयों के अंशों को स्कन्ध विपणी (Stock Exchange) में सूचीबद्ध तक नहीं किया गया जिससे उनकी संभावित कीमतों के बारे में जानकारी नहीं मिल पायी। भारत के कम्पट्रोलर एण्ड आडिटर जनरल की रिपोर्ट के अनुसार विनिवेश के प्रथम दो दौर से कम कीमत के कारण होने वाला घाटा 127 से लेकर 616% तक था, जो औसतन 256% रहा।

2. **सरकार** द्वारा विनिवेश प्राप्तियों का प्रयोग राजस्व घाटे व राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए किया गया, जो अदूरदर्शिता पूर्ण नीति है क्योंकि ऐसा करके सरकार अपने उद्यमों से भविष्य मे होने वाले लाभ से हाथ धो बैठी है। यह तो वही बात हुई कि **'घर की सम्पत्ति को बावर्ची की तनख्वाह हेतु बेचना' (Selling Family silver to pay the butler)** यह निजीकरण के विरोध में ब्रिटेन में प्रचलित नारा रहा है। होना यह चाहिए था कि विनिवेश प्राप्ति का प्रयोग स्वयं सार्वजनिक उद्यमों के विकास के लिए होता।

3. निजीकरण अथवा विनिवेश करने से सार्वजनिक उपक्रमों के निष्पादन में अनिवार्य रूप से सुधार होगा-यह एक भ्रम है। **प्रणब बर्धन एवं जान ई० रोइमर** के अनुसार, "हमारा विश्वास है कि दक्ष व प्रभावी अर्थव्यवस्था के लिए प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों का होना आवश्यक हैं, परन्तु निजी स्वामित्व ही प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों को जन्म दे सकता है, यह सोचना गलत है। हमारे इस विश्वास को अभी तक न तो इतिहास ने और न ही आर्थिक सिद्धान्तों ने गलत सिद्ध किया है।" इसी प्रकार **फिशलों** के अध्ययन की बात करते हुए **बिमल जालान** ने लिखा है कि "सार्वजनिक उपक्रमों की बिक्री से तब तक कोई लाभ नहीं होगा जब तक कि समग्र आर्थिक वातावरण में सुधार न हों, और यदि आर्थिक नीति ठीक से चलाकर इस वातावरण में सुधार कर लिया जाता हैं, तो फिर बिक्री की जरूरत ही नहीं रह जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि दक्षता में सुधार स्वामित्व परिवर्तन के बजाय प्रतियोगी बाजार व्यवस्था के विकास पर अधिक निर्भर करता है। फिर निजी क्षेत्र में भी सरकारी क्षेत्र की तरह दक्ष व अदक्ष दोनों तरह के उपक्रम हैं।

4. सरकार की विनिवेश नीति में पारदर्शिता का अभाव रहा है। जिसके कारण कई सार्वजनिक उपक्रम कौड़ियों के दाम बेच दिये गये। इस सम्बन्ध में मुम्बई के सेन्टुर होटल की बिक्री एक जीता-जागता उदाहरण है। इस होटल को सरकार ने 83 करोड में बेचा जिसे क्रेता ने तीन माह पश्चात 35% लाभ कमाकर 115 करोड़ रू० में बेच दिया। **महबुब -उल-हक** के अनुसार "सार्वजनिक उद्यमों को स्वेच्छापूर्ण और अपारदर्शी कार्यविधि के अनुसार मत बेंचों क्योंकि ऐसा करना भ्रष्टाचार एवं पक्षपात के आरोपों को निमंत्रण देना हैं। विनिवेश कार्यविधि को लेकर सरकार भ्रष्टाचार एवं पक्षपात के आरोप लगते रहे हैं।

5. सरकार ने सोने के अण्डे देने वाली मुर्गियों अर्थात् लाभ कमाने वाले उपक्रमों के अंशों को भी बेच दिया, जो अनुचित, अविवेकपूर्ण एवं स्वेच्छाचारिता की नीति का प्रतीक है। यहाँ बुनियादी प्रश्न यह है कि नवरत्नों तथा मिनी रत्नों की अंश पूँजी का विनिवेश क्यों किया जा रहा हैं?

6. सरकार की विनिवेश नीति रीढ़हीन शरीर के समान रही है। दूसरों शब्दों, में यह सिद्धान्तहीन नीति रहीं है। **सी० एच० हनुमंत राव** का मानना है कि हम उदारीकरण के नाम पर बाजारीकरण की नीति पर चल रहे है। दुःख की बात यह है कि हमने निजीकरण को स्वयं एक ध्येय के रूप में स्वीकार कर लिया है।

15.8 सारांश (Summary)

1991 में प्रारम्भ किये गये नवीन एवं व्यापक आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की नीति अपनायी गयी। सरकार के पास साधनों की कमी, सार्वजनिक उपक्रमों की अकार्यकुशलता व घाटा तथा प्रबन्धकों में पेशेवर दृष्टिकोण का अभाव आदि अनेक कारणों ने सरकार को निजीकरण व विनिवेश नीति अपनाने के लिए विवश कर दिया। संकुचित अर्थ में, निजीकरण का आशय उप प्रक्रिया से लिया जाता है। जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक उद्यमों के स्वामित्व एवं नियंत्रण को निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित किया जाता है, किन्तु विस्तृत अर्थ में, निजीकरण का आशय सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्रों अथवा क्रियाओं को निजी क्षेत्र को सौंपने से हैं। इसके अतिरिक्त, निजीकरण के अन्तर्गत निजी क्षेत्र के कार्य-कलापों के क्षेत्र को विस्तृत करना भी सम्मिलित है। विस्तृत अर्थ में, निजीकरण का अर्थ 'आर्थिक प्रजातंत्र' से है जिसके अन्तर्गत निजी क्षेत्र को सह-स्वामी तथा सहभागी बनाया जाता है तथा देश के आर्थिक जीवन में सरकारी प्रभुत्व एवं नियंत्रण को कम किया जाता है। निजीकरण का प्रमुख उद्देश्य सार्वजनिक उपक्रमों की अक्षमता को दूर करना तथा उनकी निष्पादन क्षमता में सुधार कर उन्हें प्रतिस्पर्धी बनाना है। निजीकरण करने के लिए सरकार सार्वजनिक उपक्रमों की पूँजी विनिवेश की नीति अपनाती है, उन्हें निजी क्षेत्र को पट्टे पर दे सकती है तथा उनके प्रबन्ध में निजी क्षेत्र को सहभागी बना सकती हैं। इसके अलावा सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोल सकती है। अन्तिम अस्त्र के रूप में, सरकार सार्वजनिक उद्यमों का विराष्ट्रीयकरण तक कर सकती हैं। निजीकरण के पक्ष दिये जाने वाले तर्को में मुख्य रूप से सरकार के लिए वित्तीय साधन जुटाना, साधनों का कुशलतम उपयोग करना, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की कार्यकुशलता में सुधार कर उन्हें प्रतिस्पर्धी बनाना तथा रूग्ण इकाइयों का पुरूत्थान करना सम्मिलित हैं। निजीकरण के कारण आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण केवल कुछ हाथों तक सिमट कर रह जाता है और सरकार की वित्तीय समस्या का भी स्थायी समाधान नहीं होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि निजीकरण इस बात की कोई गारण्टी नहीं देता कि घाटे में चल रहे उद्योग अनिवार्य रूप से लाभप्रद स्थिति में आ जायेंगे। स्टिगलिट्ज ने भ्रष्टाचार एवं श्रमिकों की छंटनी को निजीकरण के दो प्रमुख खतरे बताये हैं।

भारत में निजीकरण नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या का 17 से घटाकर केवल 3 कर दिया है। इसी प्रकार सरकार ने लाइसेंस लेने की अनिवार्यता वाले उद्योगों की संख्या को 18 से घटाकर 5 कर दिया हैं। 1991 -92 से लेकर 2004-05 तक विनिवेश करने से सरकार को 47,690 करोड़ रू० की कुल संचयी प्राप्ति हुई है जो निर्धारित लक्ष्य की लगभग 50% है। इसके अलावा सरकार ने निजी क्षेत्र में बैंक व बीमा क्षेत्र की कम्पनियों को प्रवेश करने की अनुमति दे दी है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को स्वायत्तता पैकेज देकर उनके साथ समझौता ज्ञापन भी लागू किये हैं। उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले

सार्वजनिक उद्यमों को सरकार ने नवरत्न एवं मिनी रत्न घोषित किया है। विनिवेश के अन्तर्गत सार्वजनिक उद्यम अपनी अंश पूँजी को सामान्य जनता अथवा निजी क्षेत्र को बेचते है। विनिवेश निजीकरण का एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। सरकार की विनिवेश नीति का प्रमुख उद्देश्य सरकारी बजट के लिए गैर स्फीतिकारक वित्तीय साधन जुटाना, सार्वजनिक उपक्रमों का आधुनिकीकरण करना, उनमें व्यापक जन सहभागिता को प्रोत्साहित करना और प्रबन्धकों में बेहतर उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करना हैं। भारत सरकार 1996 में विनिवेश का आयोग. का पठन किया और 1999 में स्वतंत्र विनिवेश विभाग की स्थापना की। सामरिक क्षेत्र के उपक्रमों को छोड़ कर शेष सभी सार्वजनिक उपक्रमों में 74% तक विनिवेश किया जा सकता है। सरकार की अब तक की विनिवेश नीति अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल रही है। इस नीति ने अनेक विवादों को जन्म दिया है।

15.9 शब्दावली (Key words)

1. **निजीकरण (Privatisation) :** निजीकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित किया जाता है अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्र व क्रियाओं को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया जाता है। सार रूप में, इसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को कम और निजी क्षेत्र की भूमिका को प्रोत्साहित किया जाता है।
2. **विनिवेश (Disinvestment) :** सरकारी उद्यमों की अंश पूँजी को सामान्य जनता अथवा निजी क्षेत्र को बेचने की क्रिया विनिवेश कहलाती हैं।
3. **सार्वजनिक उपक्रम/उद्यम (Public Enterprises) :** ये वे उपक्रम होते हैं जिनकी न्यूनतम 51% अंश पूँजी सरकार के हाथों में होती है।
4. **विराष्ट्रीयकरण (Denationalisation) :** राष्ट्रीयकृत उद्योगों को पूरी तरह निजी क्षेत्र के स्वामित्व एवं नियंत्रण में देना विराष्ट्रीयकरण कहलाता है।
5. **आर्थिक प्रजातंत्र (Economic Democracy) :** यह अर्थव्यवस्था की वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत देश के उद्योगों में व्यापक जन सहभागिता होती है।
6. **समझौता ज्ञापन (Memorandum of Understanding) :** यह सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम के बीच सहमति-पत्र होता है जिसके अन्तर्गत निष्पादन सुधार हेतु स्वायत्तता पैकेज दिया जाता है।
7. **नवरत्न (Navaratnas) :** भारत सरकार द्वारा 9 उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले सार्वजनिक उद्यमों को 'नवरत्नों की संज्ञा दी गयी है। इस उद्यमों को सरकार ने पूर्ण वित्तीय एवं प्रबन्धकीय स्वायत्तता प्रदान कर रखी है।
8. **मिनी रत्न (Mini Ratnas) :** नवरत्नों से अपेक्षाकृत कम लाभ कमाने वाले सार्वजनिक उपक्रमों को मिनी रत्न की संज्ञा दी गयी है। इनकी संख्या 45 है और इन्हें अपेक्षाकृत कम स्वायत्तता प्रदान की गयी हैं।

15.10 स्व-परख प्रश्न (Self Exercises)

लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Questions) :

1. निजीकरण से आप क्या समझते हैं?
2. विनिवेश का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
3. निजीकरण के उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
4. निजीकरण के पक्ष में तर्क दीजिए।
5. निजीकरण के विपक्ष में तर्क दीजिए।
6. निजीकरण की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
7. निजीकरण की विधियों/क्रियाओं पर प्रकाश डालिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions) :

1. भारत में निजीकरण पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।
2. निजीकरण के पक्ष में विपक्ष में तर्क दीजिए।
3. क्या आप निजीकरण के पक्ष में हैं? यदि ही, तो क्यों? तर्क तथ्य सहित उत्तर दीजिए।
4. भारत में विनिवेश पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।
5. "देश की विनिवेश नीति अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल रही हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

इकाई-16

भारत का विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन

(Foreign Trade and Balance of Payment of India)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 विदेशी व्यापार का अर्थ

16.3 विदेशी व्यापार की आवश्यकता, महत्व एवं भूमिका

16.4 भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा

16.5 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना

16.6 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

16.7 भारत के विदेशी व्यापार की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

16.8 भुगतान संतुलन का अर्थ एवं परिभाषा

16.9 भुगतान संतुलन की विशेषताएँ

16.10 भुगतान संतुलन की मदें

16.11 भुगतान संतुलन का महत्त्व

16.12 भुगतान संतुलन में असाम्यता के कारण

16.13 भुगतान संतुलन की असाम्यता को सुधारने के उपाय

16.14 भारत में भुगतान संतुलन की स्थिति

16.15 सारांश

16.16 शब्दावली

16.17 स्वपरख प्रश्न उद्देश्य

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं : -

- विदेशी व्यापार का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व की जानकारी प्रदान करना।
- भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा एवं उसमें परिवर्तनों की जानकारी प्रदान करना।
- भारत के विदेशी व्यापार की संरचना एवं दिशा की जानकारी प्रदान करना।
- भारत के विदेशी व्यापार मे आने वाले नवीनतम परिवर्तनों से अवगत करवाना।
- भुगतान संतुलन की जानकारी प्रदान करना।
- भुगतान संतुलन की प्रमुख मदों एवं उसके महत्व की जानकारी करना।
- भुगतान संतुलन में असाम्यता के कारण एवं असाम्यता को दूर करने के उपाय सुझाना।
- भारत में भुगतान संतुलन की स्थिति से अवगत कराना।

16.1 प्रस्तावना

दो या दो से अधिक देशों के बीच होने वाले व्यापार को विदेशी व्यापार कहा जाता हैं। आधुनिक युग में विदेशी व्यापार का विशेष महत्व हैं, क्योंकि कोई भी देश पूर्णरूप से स्वावलम्बी नहीं हो सकता हैं। उसे कुछ वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए अन्य देशों पर निर्भर रहना होता हैं। अत: अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के मध्य आयात-निर्यात आवश्यक हो जाता हैं। आधुनिक वैश्वीकरण के युग में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का तुलनात्मक लागत सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी हो गया हैं। विदेशी व्यापार में आयात व निर्यात की मदों को शामिल किया जाता है। हमारे देश के विदेशी व्यापार की मात्रा निरन्तर बढ़ रहीं है किन्तु इसके साथ-साथ आयात की मात्रा निर्यातों की तुलना में अधिक बढ़ रही हैं। यही कारण है कि हमारा व्यापार घाटा भी निरन्तर बढ़ रहा है। व्यापार की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ आयात-निर्यात वस्तुओं एवं सेवाओं की संरचना में भी भारी परिवर्तन आ रहे हैं। इसके साथ ही हमारे व्यापारिक भागीदार देशों में भी भारी बदलाव आया हैं। इस प्रकार भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा, व्यापार घाटा, आयात-निर्यात मदों एवं व्यापारिक सहभागियों में विगत वर्षो में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखायी दिया हैं। विश्व व्यापार संगठन (WTO) के प्रावधान लागू होने के बाद तो व्यापार की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व ही एक बाजार होता दिखायी दे रहा हैं।

व्यापार संतुलन के साथ-साथ भुगतान संतुलन का भी विशेष महत्व हैं। भुगतान संतुलन में दृश्य एवं अदृश्य दोनों प्रकार की मदों को शामिल किया जाता है। भुगतान संतुलन एक देश के विश्व के अन्य देशों से शुद्ध प्राप्तियाँ तथा भुगतान की स्थिति को प्रकट करता हैं। सैद्धान्तिक रूप से भुगतान संतुलन सदैव सन्तुलित रहता है, क्योंकि असन्तुलित भुगतान संतुलन होने पर उसका विदेशी मुद्रा या स्वर्ण में भुगतान करना होता हैं। भारत का भुगतान संतुलन सदैव प्रतिकूल रहा है अर्थात् कुल निर्यातों के मूल्य की तुलना में कुल आयातों का मूल्य सदैव अधिक रहा हैं। इसका मुख्य कारण यह रहा है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तीव्र आर्थिक विकास एवं बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें अधिकाधिक वस्तुओं, सेवाओं एवं विदेशी ऋणों की आवश्यकता पड़ी है जबकि हमारे निर्यातों की मात्रा उस दर से नहीं बढ़ पायी हैं। परिणाम स्वरूप भारत को भुगतान असाम्यता की स्थिति का सामना करना पड़ा हैं। यद्यपि सरकार ने इस असाम्यता को कम करने के लिए निरन्तर प्रयास किये हैं। हमने सदैव निर्यात बढ़ाने पर बल दिया है किन्तु हम आयातों को कम करने में असफल रहे हैं। भारत में भुगतान संतुलन की असाम्यता के प्रमुख कारणों में तेल की कीमतों में वृद्धि रक्षा व्ययों में वृद्धि तथा विकास कार्यो के लिए अधिकाधिक खर्च आदि मुख्य हैं।

16.2 विदेशी व्यापार का अर्थ

जब व्यापार एक ही देश में विभिन्न क्षेत्रों के बीच होता है तो उसे स्वदेशी या आन्तरिक व्यापार कहते है। जब व्यापार दो देशों के बीच होता है तो उसे विदेशी व्यापार या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं। विदेशी व्यापार में दो या दो से अधिक देश शामिल होते हैं। अन्य शब्दों में यदि किसी देश विशेष का व्यापार किसी अन्य देश अथवा देशों के साथ होता है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता हैं। जैसे भारत व अमेरिका के बीच व्यापार। विदेशी व्यापार के भी तीन भाग

होते हैं - (i) आयात व्यापार, (ii) निर्यात व्यापार तथा (iii) पुन निर्यात व्यापार। विदेशी व्यापार की प्रमुख परिभाषायें निम्न हैं :-

पी. टी. एल्सवर्थ के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ऐसा व्यापार है जो राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर जाता हैं।"

प्रो. हैरोल्ड के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उस समय सम्भव होता है जबकि श्रम विभाजन राष्ट्रीय राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर किये जाते हैं।"

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार, "विभिन्न राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं एवं सेवाओं के साधारण विनिमय को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के रूप में परिभाषित किया जा सकता हैं।"

16.3 विदेशी व्यापार की आवश्यकता, महत्त्व एवं भूमिका

विभिन्न देशों में उपलब्ध साधनों के पूर्ण उपयोग का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब इन देशों का विदेशी व्यापार उन्नत हो। अत: विदेशी व्यापार को उत्पादन में दक्षता लाने के उपाय के साथ-साथ 'विकास का इंजन' भी मानते हैं। वास्तव में आज का औद्योगिक समाज एवं आर्थिक विकास विदेशी व्यापार की ही देन हैं। **प्रो. J.k एस. मिल** के अनुसार, "विदेशी व्यापार के फलस्वरूप ही विश्व की उत्पादन शक्तियों को अधिक कुशल रूप मे उपयोग में लाया जा सकता है।" विदेशी व्यापार के कारण ही देश की उत्पादन प्रक्रिया में सुधार होता है और बाजार का विस्तार होता हैं। अत: विदेशी व्यापार आर्थिक विकास को गति एवं शक्ति प्रदान करने वाला इंजन हैं।

किसी भी -देश के आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार के महत्व को बताते हुए जे. एम. मीअर (J.S.Meier) ने लिखा है कि "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने अनेक ऐसे देशों के विकास को आगे बढ़ाने का काम किया है जो आज विश्व के सबसे अधिक समृद्ध देश समझे जाते हैं। ब्रिटेन का आर्थिक विकास ऊनी तथा सूती कपड़ों के निर्यात के कारण हुआ हैं स्वीडन का लकडी के व्यापार के द्वारा, डेनमार्क का डेयरी उत्पाद के निर्यात के कारण, कनाडा का गेहूँ के निर्यात के कारण, स्विट्जरलैण्ड का फीता एवं घड़ी के निर्यात के कारण तथा जापान का रेशम के व्यापार करने के कारण हुआ हैं। सफल विकास के बहुत से ऐतिहासिक मामलों तथा न केवल औद्योगिक उत्पादों का निर्यात करने वाले देशों में ही अपितु प्रारम्भिक वस्तुओं (Primary Goods) का उत्पादन करने वाले देशों में भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्त्व साफ दृष्टिगोचर हुआ हैं।' उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस युग में तो विदेशी व्यापार का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि किसी भी देश के आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं।

विदेशी व्यापार के महत्व (भूमिका) को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता हैं-

1. **औद्योगिकरण को प्रोत्साहन (Promotion of Industrialization) -** एक विकासशील देश तीव्र औद्योगिकरण द्वारा आर्थिक विकास करना चाहता है किन्तु औद्योगिकरण के लिए भी उसे आयातों की आवश्यकता पड़ती हैं। सामान्य रूप से एक विकासशील अर्थव्यवस्था को औद्योगिक विकास के लिए निम्न तीन प्रकार के आयात करने पड़ते हैं :-

(अ) विकासात्मक आयात (Developmental Imports) : - विकासात्मक आयात वे होते हैं जो देश की उत्पादन क्षमता का विस्तार करने के लिए किये जाते हैं। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में इन देशों को अपनी उत्पादन क्षमता का विस्तार करना होता है। इसके लिए इन्हें मशीनरी व उपकरण, जैसे इस्पात संयन्त्र, इंजन बनाने के कारखाने, विद्युत परियोजनाएँ स्थापित करने के लिए मशीनों आदि का आयात करना पड़ता है। विकासात्मक आयात औद्योगिकरण एवं आर्थिक विकास के आधार का काम करता हैं।

(ब) परिपोषक आयात (Maintenance Imports) : - परिपोषक आयात वे आयात होते हैं जो देश में स्थापित उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करने के लिए किए जाते हैं। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में परिपोषक आयातों, जैसे कच्चा माल, अन्तर्वर्ती वस्तुएँ (Intermediate Goods) आदि का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इनके बिना स्थापित उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो सकता हैं। विकासशील देशों की अनेक औद्योगिक परियोजनाएँ परिपोषक आयातों के अभाव में रूक सकती हैं। अत: औद्योगीकरण एवं विकास के लिए परिपोषक आयात आवश्यक है जो विदेशी व्यापार से ही सम्भव हैं।

(स) अस्फीतिकारी आयात (Anti-Inflationary Imports) -ऐसे आयात, जो मुद्रा स्फीति अथवा कीमतों में वृद्धि को नियन्त्रित करने के लिए किये जाते हैं अस्फीतिकारी आयात कहलाते हैं। ये आयात आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की कमी को दूर करके मुद्रा प्रसार के प्रभावों को नियन्त्रित करते हैं। विकासशील देशों को विकास की प्रारम्भिक अवस्था में उपभोक्ता वस्तुओं के आयात की आवश्यकता होती है, क्योंकि एक ओर जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने से उपभोक्ता वस्तुओं की माँग बढ़ती है तो दूसरी तरफ पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन बढाने के लिए इन्हें उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन से साधनों को हटाना होता है। इससे माँग व पूर्ति मे भारी अन्तर आ जाता है जिसे दूर करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं का आयात करना होता हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विकासशील देशों को आर्थिक विकास करने के लिए आयात करने होते है जिनके लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता पड़ती हैं। यह विदेशी विनिमय निर्यात (विदेशी व्यापार) द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता हैं।

2. **राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि-** विदेशी व्यापार की मात्रा मे वृद्धि राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि कर आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करती हैं। यह देखा गया है कि राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय तथा विदेशी व्यापार में साथ-साथ वृद्धि होती है अर्थात विदेशी व्यापार बढ़ने से राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती हैं। जर्मनी, फ्रांस, जापान आदि विकसित देशों के उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि विदेशी व्यापार में वृद्धि का परिणाम होती हैं।

3. **निर्यात वृद्धि से आय व रोजगार में वृद्धि -**किसी देश के निर्यातों में निरन्तर वृद्धि उस देश के आर्थिक विकास का सूचक मानी जाती हैं। विश्व में राष्ट्रों के आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में निर्यात व्यापार को पर्याप्त महत्व दिया गया हैं। किसी देश के निर्यात व्यापार में वृद्धि को उस देश के आर्थिक विकास के रूप में देखा जा सकता है। एक देश के निर्यात अधिक तथा आयात कम होने पर व्यापार संतुलन अनुकूल माना जाता है। निर्यातों की अधिकता से देश की आय में वृद्धि होती हैं। यह आय विनियोग में वृद्धि के समान होती है, जिससे उद्योगों का और

विकास होता है। साथ ही साथ राष्ट्रीय उत्पादन तथा आय में वृद्धि होती हैं, परिणामस्वरूप इससे रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं।

4. **पूँजी निर्माण में सहायक-** विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण बचत बहुत कम होती हैं। इन देशों के नागरिकों का जीवन स्तर पहले से ही निम्न होता है। अत: यह सम्भव नहीं है कि ये अपना उपभोग स्तर और भी कम करके बचत कर सकें। वास्तव में यहाँ बचत की क्षमता बहुत कम हैं। इन देशों में निम्न उत्पादन स्तर व निम्न बचत स्तर के विषम चक्र को तोड़ने के लिए निर्यात वृद्धि ही एक मात्र उपाय है। निर्यात वृद्धि द्वारा विकासशील देश विदेशी मुद्रा प्राप्त करते हैं और उन वस्तुओं का आयात कर सकते हैं जो उत्पादन वृद्धि एवं आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार निर्यात वृद्धि से प्राप्त आय पूँजी का कार्य करती है। इस प्रकार, यह देश के आर्थिक विकास में सहायक होती हैं।

5. **प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि एवं बाजार का विस्तार -** विदेशी व्यापार के फलस्वरूप विकासशील देशों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की विदेशों में पहचान बनती हैं। इससे उनकी वस्तुओं का बाजार विस्तृत होता है तथा उनकी माँग बढती हैं। बाजार का विस्तार होने के कारण ये देश अपने प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करने लगते हैं। इससे इन देशों की आय बढ़ती है तथा जीवन स्तर उन्नत होता है। इस प्रकार विदेशी व्यापार से वस्तु के बाजार का विस्तार होता है, फलस्वरूप वस्तु की माँग बढ़ती है और इससे विकासशील देशों को अपने संसाधनों के उपयोग का अवसर मिलता हैं। इन सबके परिणाम स्वरूप विकासशील देशों का आर्थिक विकास होने लगता हैं। विदेशी प्रतिस्पर्द्धा में टिके रहने के लिए विकासशील देशों को लागत घटानी पड़ती हैं। इसके लिए उन्नत तकनीक, प्रबन्धकीय कुशलता, बड़े पैमाने पर उत्पादन, पूँजी प्रधान तकनीक आदि को अपनाना पड़ता है। इनसे आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता हैं।

6. **भुगतान संतुलन में असाम्यता का समाधान : -** भुगतान संतुलन की स्थिति आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व हैं। सामान्य रूप से विकासशील देशों का भुगतान शेष प्रतिकूल रहता है। भुगतान संतुलन की स्थिति उस देश के विदेशी व्यापार की स्थिति, देश का आकार, जीवन स्तर, आयातों एवं निर्यातों की माँग की लोच आदि पर निर्भर करती हैं। विकासशील देशों का व्यापार शेष भी प्रतिकूल रहता हैं व्यापार शेष भुगतान संतुलन का एक महत्वपूर्ण भाग हैं। यदि निर्यात बढ़ाकर व्यापार शेष को अनुकूल करना संभव है तो सामान्यत: भुगतान संतुलन की असाम्यता से भी मुक्ति मिल सकती है। अत: विकासशील देश विदेशी व्यापार की सहायता से निर्यात बढ़ाकर व्यापार शेष व भुगतान संतुलन को अनुकूल करने का प्रयास करते हैं।

7. **निर्यात सम्बन्धी उद्योगों का विकास -** विकासशील देशों का व्यापार शेष प्रतिकूल होता है। इसलिए इन्हें अपने निर्यात बढ़ाने होते है। निर्यात बढाने के लिए देश में निर्यात क्षमता एंव निर्यात प्रधान उद्योगों का विकास होना आवश्यक है ताकि ये निर्यात योग्य माल का अधिकाधिक उत्पादन कर सकें। अभी तक विकासशील देशों के निर्यात एक, दो या कुछ वस्तुओं तक सीमित रहे हैं, तथा इन्हीं से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है। दूसरी ओर, अन्य उद्योगों का विकास व विस्तार करने के लिए इन्हें पूँजीगत वस्तुओं का आयात करना पडता है जिसका भुगतान निर्यातों

से ही किया जाता है। इस प्रकार निर्यात प्रधान उद्योगों के विकास व विस्तार से अन्य उद्योगों के लिए पूँजीगत माल आयात करना सम्भव होता हैं। फलस्वरूप देश में उद्योग-धन्धों का विकास होने लगता है। इससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में गति आ जाती है तथा विकास का मार्ग प्रशस्त होने लगता है।

8. **शिक्षात्मक महत्व -** विदेशी व्यापार के माध्यम से विकासशील देशों के नागरिक विकसित देशों के नागरिकों के सम्पर्क में आते है। इससे विकासशील देशों के जीवन स्तर, शिक्षा, कुशलता, संगठन व्यवस्था रीति रिवाज आदि में सुधार होता हैं। विदेशी सम्पर्क के कारण विकासशील देशों में सामाजिक व मानवीय पूँजी का विकास हुआ है जो आर्थिक विकास के प्रमुख निर्धारक तत्व हैं। प्रो. मीअर के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जो मूल शिक्षाप्रद प्रभाव होते हैं वे सम्भवत: भौतिक पदार्थो के प्रत्यक्ष आयात से भी कहीं अधिक मूल्यवान होते हैं।" प्रो. अम्लान दत्त के अनुसार, "विदेशों के साथ व्यापार नई वस्तुओं और संसाधनों को ही नहीं बल्कि नये ज्ञान को, जो सम्भवत: और भी महत्त्वपूर्ण है और एक नये परिवेश को भी, जिसमें इस ज्ञान का उपयोग किया जा सकता है, देश के विस्तार क्षेत्र के अन्तर्गत ले आता है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विकास का अत्यधिक शक्तिशाली साधन बन जाता हैं।"

हैबरलर ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से विकासशील देशों को होने वाले लाभों को चार भागों में बाँटा हैं-

(1) पूँजीगत माल, मशीनरी तथा कच्चे माल एवं अर्द्धनिर्मित माल के रूप में विकास के भौतिक साधनों की उपलब्धि से लाभ,

(2) तकनीकी ज्ञान, प्रबन्धकीय कुशलता एवं नवप्रवर्तन आदि से लाभ,

(3) अन्तर्राष्ट्रीय विनियोग से पूँजी की प्राप्ति के लाभ, तथा

(4) वस्तुओं के निर्यात में प्रतियोगिता प्रोत्साहित करने से प्राप्त होने वाले लाभ।

इस प्रकार **हैबरलर** के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में श्रम विभाजन के कारण होने वाले स्थैतिक लाभों के अतिरिक्त उपर्युक्त चार प्रकार के लाभों द्वारा विकासशील देशों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

(9) **श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण -**विदेशी व्यापार श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण को सम्भव बनाता है। विश्व के सभी देश सभी वस्तुओं के उत्पादन में कुशल न होकर केवल कुछ वस्तुओं के उत्पादन में विशेष कुशल होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को प्राप्त करने के लिए किसी भी देश को केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए जिनके उत्पादन में वह सर्वाधिक कुशल हैं। एक या कुछ ही वस्तुओं का उत्पादन करने से बड़े पैमाने पर उत्पादन, श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण सम्भव होता हैं। इससे विकासशील देशों के आर्थिक विकास को गति मिलती हैं। श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण से प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति बढ़ती है और वे अधिक निर्यात कर विदेशी विनिमय अर्जित करते हैं।

(10) **साधनों का पूर्ण उपयोग -** विदेशी व्यापार से बाजार का विस्तार होता है। इससे विकासशील देश अपने प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग कर स्वदेशी माँग से भी अधिक उत्पादन करते हैं तथा अतिरिक्त उत्पादन का निर्यात कर देते हैं। तेल उत्पादक, अरब देश अपने यहाँ उत्पादित तेल को विदेशी व्यापार के कारण ही बेच कर सम्पन्न देश बन गये हैं। बेस्टेबल के

अनुसार, - "देश की उत्पादन शक्तियाँ देश के प्राकृतिक साधनों का स्वतंत्र उपयोग करती हैं जिसमें अधिकतम लाभ की सम्भावना रहती हैं तथा इस कारण उत्पादन इकाई की योग्यता बढ़ जाती हैं।

(11) **उद्योगों का आधुनिकीकरण -**विदेशी व्यापार के कारण विभिन्न उत्पादकों में प्रतिस्पर्द्धा होने लगती हैं। प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने के लिए प्रत्येक उत्पादक श्रेष्ठ किस्म की वस्तु न्यूनतम लागत पर उत्पादित करना चाहता है। इसके लिए उद्योगों का आधुनिकीकरण आवश्यक हैं। आधुनिक उच्च तकनीक पूँजी का अधिक विनियोग, प्रबन्धकीय कुशलता आदि द्वारा ही न्यूनतम लागत पर अच्छी किस्म का उत्पादन तैयार किया जा सकता है।

(12) **एकाधिकार पर नियन्त्रण -** विकासशील देशों में यह देखा गया है कि स्वदेशी उत्पादकों का कुछ वस्तुओं के उत्पादन पर एकाधिकार हो जाता है। वे परम्परागत तकनीक से वस्तुओं का उत्पादन कर उपभोक्ताओं को ऊँची कीमत पर माल बेचते हैं। यद्यपि विदेशों में वह माल बहुत सस्ता मिलता हैं, किन्तु स्वदेशी एकाधिकार के कारण उत्पादकों को लाभ मिलता रहता है और वे वस्तु के उत्पादन की किस्म व लागत में सुधार का प्रयास नहीं करते हैं। इसका सम्पूर्ण भार उपभोक्ताओं को वहन करना होता है। विदेशी व्यापार से ऐसी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण लगता हैं। स्वदेशी एकाधिकारी, विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के भय से अपने माल की किस्म व लागत में सुधार के लिए आधुनिक उत्पादन विधियाँ अपनाने के लिए मजबूर हो जाता हैं।

16.4 भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में योजनाबद्ध विकास के कारण विदेशी व्यापार की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई हैं। सन् 1950-51 में भारत का कुल विदेशी व्यापार 1,214 करोड़ रू.था जो बढ़कर 196-61 में 1,765 करोड़ रू. 1970-71 में 3,169 करोड रू. तथा 1980-81 में 19,260 करोड़ रू. हो गया। 2000-01 में भारत का कुल विदेशी व्यापार 4,34,444 करोड़ रू. था। 2001-02 में देश का कुल विदेशी व्यापार बढ़कर 4,54,217 करोड़ रू. हो गया। सन् 2002-03 में भारत का कुल विदेशी व्यापार 5,49,387 करोड़ रू. के बराबर था। 2003-04 में भारत का विदेशी व्यापार 6,52,475 करोड़ के बराबर था। वर्ष 2005-06 में कुल विदेशी व्यापार 11,16,827 करोड़ रू. रहा।

(अ) निर्यात व्यापार (Export Trade) -सन् 1950-51 में भारत के निर्यात 606 करोड़ रू. के थे, जो बढ़कर 1960-61 में 643 करोड़ रू. 1970-71 में 1,535 करोड़ रू. 1980-81 में 6,711 करोड़ रू. तथा 1984-85 में 11,744 करोड़ रू. के हो गये। 1985-86 में भारत के निर्यातों में गिरावट आयी तथा यह घटकर 10,895 करोड़ रू. के हो गये। लेकिन बाद के वर्षो में भारतीय निर्यातों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सन् 1990-91 में देश के निर्यातों का मूल्य 32,553 करोड़ रू. तथा 1999-2000 में 1,59,561 करोड़ रू. हो गया। वर्ष 2001-02 में 2,09,018 करोड़ रू. तथा 2002-03 में 2,93,367 करोड़ रू. मात्र मूल्य की वस्तुओं का निर्यात किया गया। 2005-06 में यहाँ से 4,56,418 करोड़ रू. मूल्य की वस्तुओं का निर्यात किया गया। 2006-07 में (दिसम्बर 2006 तक) 4,08,394 करोड़ रू. मूल्य की वस्तुओं का निर्यात किया गया।

भारत का विदेशी व्यापार

(Foreign Trade of India)

वर्ष	निर्यात (पुनर्निर्यात सहित)	आयात	कुल विदेशी व्यापार	व्यापार शेष (प्रतिकूल)
1950-51	606	608	1,214	-2
1960-61	643	1,122	1,765	-479
1970-71	1535	1,634	3,169	-99
1980-81	6711	12,549	19,260	-5,838
1990-91	32,553	43,193	75,746	-10,640
2000-01	20,3571	2,30,873	4,34,444	-27,302
2001-02	2,09,018	2,45,199	4,54,217	-36,181
2002-03	2,55,137	2,97,206	5,52,343	-42,069
2003-04	2,93,367	3,59,108	6,52,475	-65,741
2004-05	3,75,340	5,01,065	8,76,405	-1,25,725
2005-06	4,56,418	6,60,409	1,11,6827	-2,03,991

स्त्रोत: Economic Survey 2006-07,S-78

वर्ष 1984-85 में भारत के निर्यातों में 20.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई। लेकिन 1985-86 में निर्यातों में 7.2 प्रतिशत की दर से गिरावट आयी। 1986-87 में 14.3 प्रतिशत 1987-88 में 25.9 प्रतिशत, 1988-89 में 29.1 प्रतिशत तथा 1989-90 में 36.7 प्रतिशत की दर से निर्यातों में वृद्धि हुई। 1997-98 में निर्यात में वृद्धि की दर 9.5 प्रतिशत थी जो 1999-2000 में बढ़कर 14.2 प्रतिशत तथा 2000-01 में बढ़कर 27.6 प्रतिशत रही जो अपेक्षाकृत काफी नीची हैं। 2001-02 में निर्यात वृद्धि दर केवल 2.7 प्रतिशत रहीं। 2004-05 में इसके 27.9 प्रतिशत तथा 2005-06 में 21.6 प्रतिशत रही।

(ब) आयात व्यापार (Import Trade) - पंचवर्षीय योजनाकाल में भारत के आयातों में तीव्र गति से वृद्धि हुई क्योंकि विकास कार्यो को पूरा करने के लिए भारी यात्रा में मशीनरी, परिवहन उपकरण, उर्वरक तथा खाद्यान्न आदि वस्तुओं का आयात करना पड़ा। सन् 1950-51 में 608 करोड़ रू. की वस्तुओं का आयात किया गया जो 1990-91 में 43,193 करोड़ रू. हो गया। इस अवधि में भारत के आयात 71 गुना से भी अधिक हो गये। 1999-2000 में आयातों का मूल्य 2,15,236 करोड़ रू. था जो 2001-02 में 2,45,199 करोड़ रू. हो गया। वर्ष 2002-03 में 2,97,206 करोड़ रू. मूल्य का आयात किया गया। 2005-06 में यह बढ़कर 6,60,409 करोड़ रू. हो गया। 2006-07 में (दिसम्बर 2006 तक) आयातों का मूल्य 598287 करोड़ रू. रहा।

योजनाकाल में भारत मे आयातों में सर्वाधिक वृद्धि 1973-74 में हुई जो कि 58.3 प्रतिशत थी। आयातों में 1986-87 में 2.2 प्रतिशत, 1987-88 में 10.7 प्रतिशत 1988-89 में

26.9 प्रतिशत 1989-90 में 25.4 प्रतिशत 1990-91 में 22 प्रतिशत तथा 2001-02 में 6.2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई 2004-05 में आयात वृद्धि दर 39.5 प्रतिशत तथा 2005-06 में आयात वृद्धि दर 39.5 प्रतिशत तथा 2005-06 में 31.8 प्रतिशत रहीं।

(स) व्यापार संतुलन (Balance of Trade) :- स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत का व्यापार संतुलन 1972-73 व 1976-77 को छोडकर शेष सभी वर्षा में प्रतिकूल रहा हैं। सन् 1950-51 में व्यापारिक घाटा 2 करोड रू. का था जो 1960-61 में 479 करोड़ रू. का हो गया। वर्ष 1966-67 के पश्चात् व्यापारिक घाटे की मात्रा कम होना आरम्भ हो गई। वर्ष 1972-73 में ही भारत का व्यापार शेष 104 करोड़ से पक्ष में रहा। लेकिन इसके पश्चात् व्यापार शेष फिर विपक्ष में हो गया। सन् 1976-77 में भारत का विदेशी व्यापार पुन: 68 करोड़ रूपये से पक्ष में रहा। लेकिन 1977-78 में भारत का व्यापार संतुलन 612 करोड़ रू. प्रतिकूल रहा। व्यापार संतुलन की इस प्रतिकूलता की मात्रा में इसके बाद निरन्तर तीव्र गति से वृद्धि हो रही हैं। सन् 1979-80 में देश का व्यापारिक घाटा 2725 करोड़ रू. का था जो बढ़कर 1980-81 में 5,838 करोड़ रू. 1985-86 में 8,763 करोड़ रू. तथा 1990-91 में 10,645 करोड़ रू. हो गया। यद्यपि 1992-93 में व्यापार घाटा 3,810 करोड़ रू. ही रहा जो 1996-97 में 20,103 करोड़ रू. व 1997-98 में 24,075 करोड़ रू. हो गया। 1998-99 में 38,580 करोड़ रू. का व्यापारिक घाटा रहा जो 1999-2000 में 55,675 करोड़ रू. हो गया। 2001-02 में व्यापार घाटा 36,781 करोड़ रू. रहा तथा 2005-06 में यह 2,03,991 करोड़ रू. रहा। 2006-07 में (दिसम्बर, 2006 तक) व्यापार घाटा 1,89,893 करोड़ रू. रहने का अनुमान हैं।

व्यापार संतुलन की प्रतिकूलता के कारण : - केवल 1972-73 व 1976-77 को छोड़कर भारत का व्यापार शेष सदैव प्रतिकूल रहा हैं। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :-

(i) देश विभाजन के फलस्वरूप कपास, जूट एवं खाद्यान्नों का अत्यधिक आयात करना पड़ा।

(ii) देश के आर्थिक विकास हेतु अनेक प्रकार की विकास सामग्री जैसे मशीनरी, उपकरण, कच्चा माल का आयात करना पड़ा।

(iii) चीन तथा पाकिस्तान से युद्ध के कारण बड़ी मात्रा में युद्ध सामग्री का आयात करना पड़ा हैं।

(iv) वर्ष 1974 में पेट्रोल, खाद्यान्न, उर्वरक तथा लौह धातुओं के मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई।

(v) वर्ष 1990 में खाड़ी संकट (Gulf Crisis) के कारण भारत द्वारा आयातित पेट्रोल तथा पेट्रोलियम पदार्थो का मूल्य अत्यधिक बढ़ गया।

(vi) विदेशी प्रतिस्पर्धा के कारण भारत के निर्यातों में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पायी हैं।

(vii) हड़ताल तालाबन्दी अकाल एवं बाढ़ के कारण उत्पादन कम हो पाता हैं। फलस्वरूप अनेक वस्तुएँ विदेशों से आयात करनी पड़ती हैं।

(viii) भारत द्वारा परमाणु परीक्षण के कारण कुछ देशों द्वारा भारत पर प्रतिबन्ध लगाने से ही भारत का व्यापार घटा बढ़ा हैं।

16.5 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना(Composition of India's Foreign Trade)

विदेशी व्यापार की रचना का तात्पर्य है कि देश किन-किन वस्तुओं का आयात तथा किन किन वस्तुओं का निर्यात करता हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारत के विदेशी व्यापार की रचना में अत्यधिक परिवर्तन हुए हैं। जहाँ पहले भारत निर्मित माल का आयात तथा कच्चे माल का निर्यातक मात्र था और केवल 5 वस्तुओं तक ही व्यापार सीमित था, वहाँ अब विदेशी व्यापार में विविधता आयी है तथा लगभग 7500 वस्तुओं मे समावेश है। भारत के प्रमुख आयात तथा निर्यात निम्न प्रकार हैं -

(अ) आयातों की संरचना (Composition of Imports) : - स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में प्रमुखत: निर्मित उपभोक्ता वस्तुओं का आयात होता था। लेकिन पिछले तीन दशकों में भारत में आयात व्यापार की रचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आज भारत के आयातों में निर्मित उपभोक्ता वस्तुओं का भाग बहुत कम होता है। इसके स्थान पर कच्चे माल, पूँजीगत सामान, मध्यवर्ती माल तथा खनिज ईधन का आयात अधिक होता है। भारत के आयातों में लोहा एवं इस्पात, अलौह धातुओं, मशीनों, परिवहन उपकरण, उर्वरक, रसायन तथा खनिज तेल का प्रमुख स्थान हैं। जब जब देश में खाद्यान्न का उत्पादन कम हुआ तब तब खाद्यान्न भी अधिक मात्रा में आयात किये गये हैं।

भारत में विभिन्न वर्षो के दौरान किये गये आयातों की संरचना का अध्ययन निम्न तालिका से किया जा सकता है-

भारत की आयात संरचना (कुल आयातों के %मे)

	वस्तु समूह	2004-05	2005-06	2006-07 (अप्रैल-अक्टूबर)
1.	खाद्य एवं अन्य उत्पाद	3.5	2.5	2.3
2.	ईधन (कोयला व तेल)	29.6	32.1	36.2
3.	खाद	1.1	1.3	1.8
4.	पेपर बोर्ड उत्पाद व न्यूजप्रिन्ट	0.7	0.6	0.7
5.	पूँजीगत सामान	13.0	15.8	12.1
6.	अन्य वस्तुएँ	48.3	43.7	44.4
	कुल	100.0	100.0	100.0

Source: Economic Survey 2006-07, 83

छठी योजना की तुलना में सातवीं पंचवर्षीय योजना में आयातों की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। छठी योजना की तुलना में सातवीं योजना में पूँजीगत वस्तुओं, मोती तथा बहुमूल्य पत्थरों व रसायनों के प्रतिशत में वृद्धि हुई है जबकि कुल आयातों में खनिज तेल व चिकनाई पदार्थ, खाद्य तेल, उर्वरक तथा लोहा एवं इस्पात के प्रतिशत में कमी आयी हैं। दोनो योजनाओं में भारत के कुल आयात मूल्य के आधे से अधिक हिस्सा केवल पूँजीगत वस्तुओं तथा खनिज तेल व चिकनाई पदार्थो का ही था।

वर्तमान में भी भारत के आयातों मे उपर्युक्त चीजों का अधिक महत्व हैं। 2006-07 में भारत की आयात संरचना में पूँजीगत सामान, खनिज तेल व चिकनाई युक्त पदार्थो, मोती तथा बहुमूल्य पत्थर खाद्य तेल, उर्वरक तथा लोहा व इस्पात का महत्वपूर्ण स्थान बना हुआ है।

(ब) निर्यातों की संरचना (Composition of Exports) :- स्वतंत्रता के समय भारत के निर्यातों का बड़ा भाग कृषिजन्य कच्चे माल तथा अन्य प्राथमिक पदार्थो का होता था। लेकिन सात व सत्तर के दशक में औद्योगीकरण के फलस्वरूप भारत के निर्यातों में न केवल विविधता आई हैं बल्कि व्यापार में परम्परागत वस्तुओं का महत्त्व भी कम हुआ है। अब अनेक प्रकार की वस्तुओं को निर्यात किया जाने लगा है जैसे पूँजीगत माल व अन्य इंजीनियरिंग सामग्री, रसायन व रासायनिक उत्पाद, चमड़ा व चमड़े का सामान रेडीमेड कपड़े रेशमी, ऊनी व रेयन के वस्त्र, रत्न व आभूषण, हस्तशिल्प, तैयार भोजन व सामुद्रिक सामग्री आदि। परम्परागत निर्यात वस्तुओं में जैसे बागान-फसलो, कृषि सामग्री, खनिज पदार्थ, कपास तथा पटसन की वस्तुओं के निर्यात बढ़ाने पर भी जोर दिया जा रहा हैं।

भारत द्वारा विभिन्न वर्षो के दौरान किये गये निर्यातो की संरचना का अध्ययन निम्न तालिका से किया जा सकता है-

भारतीय निर्यातों की संरचना

(कुल निर्यात के प्रतिशत में)

	वस्तु समूह	2004-05	2005-06	2006-07 (अप्रेल-अक्टू.)
1.	कृषि एवं सम्बन्धित वस्तुएँ	10.5	10.2	9.9
2.	अयस्क और खनिज	5.5	5.2	4.0
3.	विनिर्मित वस्तुएँ	74.3	72.0	69.0
4.	कच्चा तेल व पेट्रोलियम उत्पादन	8.5	11.5	16.3
5.	अन्य वस्तुएँ	1.2	1.1	0.7
	कुल	100.0	100.0	100.0

Source: Economic Survey 2006-07, S-87

16.6 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

विदेशी व्यापार की दिशा का अर्थ यह है कि एक देश का विदेशी व्यापार किन-किन देशों से कितना-कितना होता हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के विदेशी व्यापार की दिशा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान में विश्व के सभी देशों के साथ चाहे वे विकासशील हों या विकसित, भारत के व्यापारिक सम्बन्ध हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत के विदेशी व्यापार में ब्रिटेन का सर्वोच्च स्थान था। यह स्थान अब उत्तरी अमेरिका के देशों ने ले लिया है। दूसरी तरफ जहाँ रूस एवं जापान का हमारे विदेशी व्यापार में नगण्य भाग था वह अब काफी बढ़ गया हैं।

वर्तमान में संयुक्ता राज्य अमेरिका, जापान, जर्मनी तथा तेल उत्पादक देश भारत के प्रमुख व्यापारिक साझेदार हैं। इन देशों के अतिरिक्त भारत के मुख्य व्यापारिक साझेदारों में

जर्मनी, ब्रिटेन, बेल्जियम, फ्रांस, इटली, सउदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत, हांगकांग, मलेशिया, सिगांपुर तथा आस्ट्रेलिया आदि देश सम्मिलित हैं।

भारत के निर्यातों की दिशा

(प्रतिशत भाग)

	देश/क्षेत्र	2004-05	2005-06	2006-07 (अप्रैल-सितम्बर)
1.	यूरोप	24	24.06	22.00
	(क) यूरोपीय संघ के देश	22	22.34	20.59
	(ख) पश्चिमी यूरोप का शेष भाग	2	1.57	1.23
	(ग) पूर्वी यूरोप	0	0.15	0.18
2.	सी. आई. एस. और बाल्टिक राज्य	1	1.20	1.13
3.	एशिया और आसियान	47	48.46	50.42
	(अ) दक्षिणी एशिया	32	5.35	5.41
	(ब) अन्य देश	15	43.11	45.02
4.	अफ्रीका	7	5.44	6.75
5.	अमरीका	21	20.61	19.56
	(क) उत्तरी अमरीका	18	17.73	16.27
	(ख) लेटिन अमरीकी देश	3	2.88	3.28
	कुल	100.0	100.0	100.0

Source : Economic Survey, 2006-07, S-90

तालिका से स्पष्ट है कि भारत का लगभग आधा निर्यात व्यापार एशिया और आसियान देशों के साथ है तथा विगत वर्षा में यह निरन्तर बढ़ रहा हैं। इसके बाद यूरोप (यूरोपीय संघ, पश्चिमी यूरोप के देश व पूर्वी यूरोप) के साथ लगभग 25 प्रतिशत निर्यात व्यापार हो रहा हैं। निर्यात व्यापार में अमेरिका का तीसरा स्थान है। स्पष्ट है हमारे निर्यातों में एशिया व आसियान देशों का हिस्सा बढ़ता जा रहा हैं।

भारत के आयातों की दिशा

(प्रतिशत भाग)

	देश/क्षेत्र 2004-05	2004-05	2005-06	2006-07 (अप्रैल-सितम्बर)
1.	यूरोप	22.60	21.17	19.50
2.	(क) यूरोपीय संघ के देश	16.86	16.04	14.49
	(ख) पश्चिमी यूरोप का शेष भाग	5.74	4.91	4.83
	(ग) पूर्वी यूरोप	0.18	0.22	0.18

3.	सी. आई. एस. और बाल्टिक राज्य (रूस, कजाकिस्तान,युक्रेन, उज्बेकिस्तान)	1.73	2.03	1.74
4.	एशिया और आसियान	35.40	35.22	62.17
	(क) दक्षिणी एशिया	26.69	0.98	0.88
	(ख) अन्य देश	8.71	34.24	61.30
5.	अफ्रीका	3.49	2.72	7.03
6.	अमरीका	8.36	7.78	9.18
	(क) उत्तरी अमरीका	6.57	6.09	6.41
	(ख) लेटिन अमरीकी देश	1.78	1.69	2.77
	कुल	100.0	100.0	100.0

Source: Economic Survey, 2006-07, S-88, 89

भारत के आयातों में विभिन्न देश/क्षेत्रों का भाग देखने से स्पष्ट हो जाता है कि आयातों में यूरोप व यूरोपीय संघ (EU) का भाग निरन्तर कम हो रहा है जबकि एशिया व आसियान देशों का भाग निरन्तर बढ़ रहा है। आयातों में अफ्रीकी देशों का भाग भी बढ़ने की संभावना हैं। अमेरिका के साथ आयातों का भाग लगभग स्थिर है अर्थात यह 8 से 9 प्रतिशत के बीच बना हुआ हैं। स्पष्ट है कि आयातों में भी एशिया एवं आसियान देशों का भाग निरन्तर बढ़ रहा हैं।

भारत के 11 प्रमुख व्यापारिक भागीदार देशों का देश के कुल विदेशी व्यापार में लगभग 50 प्रतिशत भाग हैं। 2000-01 के बाद इसमें विशेष परिवर्तन नहीं हुआ हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका भारत का सबसे बड़ा अकेला व्यापारिक साझीदार हैं। किन्तु इसमें कमी आ रही हैं। दूसरी ओर चीन का व्यापारिक भाग तीन गुना बढ़ गया हैं। इससे यह भारत का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार बन गया हैं। पेट्रोलियम पदार्थो के मूल्यों में वृद्धि तथा संयुक्त अरब अमीरात से कच्चे तेल का आयात करने के कारण यह भारत का तीसरा प्रमुख व्यापारिक साझेदार बन गया है। सिंगापुर के साथ व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता होने के बाद इसका भाग भी बढ़ा हैं।

भारत के प्रमुख व्यापारिक भागीदार

(कुल व्यापार में % भाग)

	देश	2000-01	2002-03	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07
1.	संयुक्त राज्य अमेरिका	13.0	13.4	11.6	10.7	10.6	9.7
2.	यू के.	5.7	4.6	4.4	3.7	3.6	3.1
3.	बेल्जियम	4.6	4.7	4.1	3.6	3.0	2.4
4.	जर्मनी	3.9	4.0	3.8	3.5	3.8	3.7
5.	जापान	3.8	3.2	3.1	2.8	2.6	2.3
6.	स्विटजरलैण्ड	3.8	2.4	2.6	3.3	2.8	3.2
7.	हॉगकाग	3.7	3.1	3.3	2.8	2.7	2.3

8.	संयुक्त अरब अमीरात	3.4	3.8	5.1	6.2	5.1	6.9
9.	चीन	2.5	4.2	4.9	6.5	7.0	7.7
10.	सिंगापुर	2.5	2.5	3.0	3.4	3.5	4.0
11.	मलेशिया	1.9	1.9	2.1	1.7	1.4	2.2
	कुल	48.6	47.9	48.1	48.2	46.1	47.5

स्त्रोत: आर्थिक समीक्षा 2006-07, पेज 120 टेबिल 6.10

विगत वर्षो में भारत ने सेवाओं के निर्यात में उल्लेखनीय वृद्धि की हैं। सेवा क्षेत्र का निर्यात विगत तीन वर्षो में 3 गुना बढ़ा हैं। 2005-06 में सेवाओं का निर्यात 42 प्रतिशत वृद्धि के साथ 61.4 बिलियन अमरीकी डालर तक पहुँच गया हैं।

16.7 भारत के विदेशी व्यापार की आधुनिक प्रवृत्तियाँ (Recent Trends in India's Foreign Trade)

भारत के विदेशी व्यापार की प्रमुख विशेषताएँ अथवा आधुनिक प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं:-

1. **विदेशी व्यापार की मात्रा में निरन्तर वृद्धि (Continuous Increase in the Volume of Foreign Trade) :-** भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही हैं। सन् 1950-51 में कुल विदेशी व्यापार 1,214 करोड रू. था जो बढ़कर 1999-2000 में 3,74,797 करोड़ रू. हो गया। वर्ष 1950-51 की तुलना में यह लगभग 300 गुना अधिक था। वर्ष 2004-05 में देश का कुल विदेशी व्यापार बढ़कर 8,76,405 करोड़ रू. का हो गया। वर्ष 2005-06 में यह 11,16,827 करोड़ रू. हो गया।

2. **आयातों में तीव्र वृद्धि (Rapid Increase in Imports) :** - भारत के निर्यातों में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। सन् 1950-51 में भारत के आयात 608 करोड़ रू. के थे जो बढ़कर 1996-97 में 1,38,920 करोड़ रू. के हो गये। 2005-06 में आयातों की राशि 6,60,409 करोड रू. थी।

3. **निर्यातों में धीमी वृद्धि (Slow Increase in Exports) : -** भारत के निर्यातों में निरन्तर वृद्धि हो रही है लेकिन आयातों की तुलना में निर्यातों में वृद्धि की दर काफी धीमी हैं। गत 56 वर्षो में भारत के निर्यात बढ़कर लगभग 234 गुना हो गये हैं जबकि आयतों में 290 गुना वृद्धि हुई हैं। 1999-2000 में निर्यातों की राशि 1,59,561 करोड रू. थी। 2005-06 में निर्यातों की राशि 4,56,418 करोड़ रू. रही।

4. **प्रतिकूल व्यापार संतुलन (Unfavourable Balance of Trade): -**भारत के विदेशी व्यापार की एक विशेषता यह है कि गत पचपन वर्षो मे केवल दो वर्षो (1972-73 व 1976-77) को छोड़कर शेष अवधि में व्यापार संतुलन प्रतिकूल रहा हैं। व्यापार संतुलन की आधुनिक प्रवृत्ति यह है कि यह है कि यह न केवल निरन्तर प्रतिकूल रहता है बल्कि प्रतिकूलता की मात्रा में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही हैं। सन् 1979-80 में देश का व्यापार संतुलन 2,725 करोड़ रू. से प्रतिकूल

था जबकि व्यापारिक घाटे की राशि बढ़कर 1980-81 में 5,838 करोड़ रू. 1985-86 में 8,763 करोड रू. रहा तथा 1990-91 में 10,640 करोड़ रू. हो गयी। 1995-96 में व्यापारिक घाटा 16,325 करोड रू. रहा जो 1996-97 में बढ़कर 20,103 करोड़ रू. हो गया 1997-98 एवं 1998-99 में व्यापार घाटा क्रमश: 24,075 एवं 38,580 करोड़ रू. रहा। 1999-2000 में यह बढ़कर 55,675 करोड़ रू. तक पहुँच गया हैं। 2001-02 में व्यापार घाटा 36,181 करोड़ रू. रहा। 2005-06 में व्यापार घाटा बढ़कर 2,03,991 करोड़ रू. हो गया।

5. **विश्वव्यापी एवं विविधतापूर्ण (Global and Diversified) :-** भारत के विदेशी व्यापार की एक प्रवृत्ति यह है कि गत कुछ वर्षो से हमारा व्यापार विश्वव्यापी हुआ है तथा वस्तुओं के प्रकार में विविधता आई है। अब भारत का व्यापार कुछ देशों तथा कुछ ही वस्तुओं तक सीमित नहीं हैं। आज हम लगभग 190 देशों को 7500 प्रकार की वस्तुओं का निर्यात करते हैं तथा 140 देशों से 6000 से अधिक प्रकार की वस्तुओं का आयात करते हैं।

6. **विदेशी व्यापार की रचना में परिवर्तन (Changes in Composition of Foreign Trade)-** भारत के विदेशी व्यापार की एक विशेषता यह है कि गत दो दशकों में व्यापार की संरचना में काफी परिवर्तन हुए हैं। स्वतन्त्रता के समय भारत के आयातों में 84% निर्मित माल तथा निर्यातों में 70% कच्चा माल एवं परम्परागत वस्तुएँ होती थी। आज निर्मित उपभोक्ता वस्तुओं का आयात बहुत कम होता है तथा कच्चे माल, पूँजीगत सामान, उर्वरक रसायन, मध्यवर्ती माल तथा खनिज ईंधन का आयात अधिक होता है। निर्यातों में परम्परागत वस्तुओं का भाग 70% से घटकर 20% रह गया हैं। भारत की निर्यात संरचना प्रौद्योगिक प्रधान उच्च मूल्य सम्बर्द्धन की ओर उन्मुख हुई है तथा परम्पागत, श्रम प्रधान व कच्चे माल के निर्यात में कमी आई हैं।

7. **विदेशी व्यापार की दिशा में परिवर्तन (Changes in Direction of Foreign Trade) :** स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के विदेशी व्यापार की दिशा में अत्यधिक परिवर्तन हुआ हैं। सन् 1951-52 में भारत अपनी कुल आवश्यकता का 17% ब्रिटेन से आयात करता था लेकिन अब ब्रिटेन पर यह निर्भरता कम हो रही हैं। सन् 2005-06 में भारत के कुल आयातों में एशिया व आसियान देशों का हिस्सा 35.22% था। इसी तरह भारत के निर्यात व्यापार में 1951-52 में ब्रिटेन का भाग 25.9% था जो 2002-03 में घटकर 4.7% रह गया। अत: भारत के विदेशी व्यापार में ब्रिटेन का महत्व घट रहा है तथा भारत का व्यापार संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस तथा एशिया व आसियान देशों के साथ बढ़ रहा हैं।

8. **विश्व व्यापार में घटता भाग (Decreasing Share in World Trade) :** -विश्व के कुल विदेशी व्यापार में भारत का प्रतिशत भाग लगातार घट रहा है। स्वतन्त्रता के समय विश्व के कुल निर्यातों में भारत का भाग 2.45% था। लेकिन भारत के निर्यातों में अपेक्षित वृद्धि नहीं होने के कारण विश्व के कुल निर्यातों में भारत का भाग 1980 के दशक में गिरकर 0.5% रह गया। वर्ष 2004 में यह बढ़कर 0.9% हो गया हैं।

9. **सरकारी क्षेत्र की बदलती हुई भूमिका (Changing Role of the Public Sector)** -भारत के विदेशी व्यापार में सरकारी क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका हैं। विदेशी व्यापार में राज्य

व्यापार निगम, खनिज एवं धातु व्यापार निगम, हस्तशिल्प एवं हाथकरघा निर्यात निगम आदि संस्थाएं लगी हुई हैं। इन व्यापारिक संस्थाओं के अतिरिक्त भारतीय इस्पात प्राधिकरण एच एम. टी. भारत हैवी इलैक्ट्रीकल्स आदि निर्माणकारी संस्थाएँ भी विदेशी व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। यद्यपि उदारीकरण की नीति के कारण देश के विदेशी व्यापार में सरकारी क्षेत्र के महत्व में कमी आयी हैं।

10. **कुछ देशों का बहुत अधिक महत्व (A Few Countries are more Important) :** -भारत के विदेशी व्यापार में कुछ देशों का महत्व बहुत अधिक हैं। उदाहरण के लिए भारत के आयात व्यापार में अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, रूस तथा जापान का सामूहिक भाग लगभग 50% हैं। इसी प्रकार भारत के निर्यातों का आधे से अधिक भाग अमेरिका, जापान, ब्रिटेन, जर्मनी तथा रूस को किया जाता हैं।

11. **कुछ वस्तुएँ महत्वपूर्ण (A Few Commodities are more Important) -**भारत के विदेशी व्यापार में कुछ वस्तुओं का बहुत अधिक महत्व हैं। भारत के निर्यात व्यापार में सूती वस्त्र, चमड़ा तथा चमड़े का सामान, रेडीमेड, वस्त्र, रत्न तथा आभूषण, इंजीनियरिंग सामान, खनिज लोहा, काजू तथा चाय का अधिक महत्व हैं। आयात व्यापार में पूँजीगत वस्तुओं, खनिज तेल, खाद्य तेल, उर्वरक, लोहा एवं इस्पात, रत्न तथा बहुमूल्य पत्थरों तथा रसायनों का अधिक महत्व हैं।

12. **विदेशी जहाजरानी पर निर्भरता (Dependence on Foreign Trade) :-** भारत का अधिकांश विदेशी व्यापार समुद्री मार्गों द्वारा होता हैं। भारतीय जलपरिवहन की भार क्षमता सीमित होने के कारण भारतीय आयात-निर्यात का अधिकांश भाग विदेशी जहाजों द्वारा ढोया जाता हैं। भारतीय व विदेशी जहाजों का विदेशी व्यापार में भाग क्रमश: 34% व 66% रहा हैं।

16.8 भुगतान संतुलन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Balance of Payments)

व्यापार संतुलन देश के अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों की एक अधूरी तस्वीर पेश करता है। अत: अन्तर्राष्ट्रीय लेनदेन की सम्पूर्ण तस्वीर को समझने के लिए भुगतान संतुलन को समझना आवश्यक है। भारत के भुगतान संतुलन की प्रवृत्तियों को देखने से पूर्व भुगतान संतुलन का अर्थ, विशेषतायें एवं भुगतान संतुलन की प्रमुख मदों का अध्ययन करना आवश्यक हैं।

भुगतान संतुलन का अर्थ (Meaning of Balance of Payments)

भुगतान संतुलन एक वर्ष में एक देश द्वारा विश्व के अन्य देशों को किये गये कुल भुगतानों एवं कुल प्राप्तियों का कारण हैं। इस प्रकार यह एक देश के लोगों के अन्य सभी देशों के लोगों के साथ निश्चित अवधि (एक वर्ष) में हुए सभी आर्थिक लेन देनों का लेखा-जोखा हैं। इसमें आयात-निर्यात की दृश्य एवं अदृश्य सभी मदों को शामिल किया जाता हैं। दृश्य मदें वे होती हैं जिनके आयात-निर्यात का लेखा बन्दरगाह पर रखे रजिस्टर में किया जाता हैं। अदृश्य मदें वे होती है जिनके आयात-निर्यात का लेखा बन्दरगाह पर रखे रजिस्टर में नही किया जाता हैं। अदृश्य मदों में मुख्य रूप से पूँजी का आदान-प्रदान, ब्याज की प्राप्ति एवं भुगतान, बैंक, बीमा एवं जहाजरानी सेवाएँ पर्यटक सेवाएँ तथा विशेषज्ञों की सेवाएँ आदि आती हैं। भुगतान संतुलन एक विवरण के रूप

में प्रस्तुत किया जाता हैं। इसमें प्राप्ति एवं भुगतान दो पक्ष होते है। इन दोनों पक्षों के मौद्रिक मूल्यों के अन्तर को ही भुगतान संतुलन कहते हैं। इसे खाते का संतुलन (Balance of Account) तथा 'अन्तर्राष्ट्रीय ऋण का संतुलन' (Balance of International Indebtedness)भी कहा जाता हैं।

भुगतान संतुलन प्रमुख की परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों ने भुगतान संतुलन को निम्नांकित रूप में परिभाषित किया हैं -

1. **प्रो. हैबरलर (Prof. Haberler)** के अनुसार, "भुगतान संतुलन शब्द का प्रयोग (विदेशी मुद्रा की) सम्पूर्ण माँग एवं पूर्ति सम्बन्धी परिस्थिति के अर्थ में किया जाता है और यही वह अर्थ है जिसमें भुगतान संतुलन का विचार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी विवेचनों में सबसे अधिक प्रयुक्त होता हैं।"

2. **चार्ल्स पी. किण्डलबर्गर (Charles P. Kindelberger)** के अनुसार "किसी देश का भुगतान संतुलन उन समस्त आर्थिक सौदों का क्रमबद्ध लेखा है जो सूचनादाता देश के नागरिकों एवं विदेशी नागरिकों के मध्य होते हैं।"

3. **व्हिटल्सी, फ्रीमैन, हरमैन (Whitlesey, Freeman, Hermann)** के शब्दों में, "भुगतान संतुलन किसी देश के अन्तर्राष्ट्रीय सौदों का एक दिये हुए समय (सामान्य रूप से एक वर्ष) का ग्राह्य सारांश हैं।"

4. **बेनहम (Benham)** के अनुसार, "एक देश का भुगतान संतुलन एक निश्चित अवधि के भीतर उसका बाकी विश्व के साथ मौद्रिक सौदों का लेखा होता हैं।"

5. **वाल्टर क्राँस (Walter Krause)** के अनुसार, "भुगतान संतुलन किसी देश के निवासियों एवं विश्व के निवासियों के बीच, किसी समय विशेष सामान्य रूप से एक वर्ष में सम्पन्न किये गये समस्त आर्थिक सौदों का एक व्यवस्थित लिपिबद्ध विवरण हैं।"

निष्कर्ष - भुगतान संतुलन एक विवरण है जो एक वर्ष की अवधि में एक देश के कुल (दृश्य एवं अदृश्य) आयातों एवं निर्यातों के मूल्यों को बताता हैं। यह किसी देश का विश्व के अन्य देशों मे होने वाले सम्पूर्ण लेन-देन का विस्तृत लेखा जोखा हैं। इसके दो पक्ष प्राप्तियॉ एवं भुगतान होते हैं। भुगतान संतुलन इन दोनों पक्षों के अन्तर को बताता हैं। वास्तव में भुगतान संतुलन सदैव सन्तुलित होता है क्योंकि अन्त में स्वर्ण के आयात-निर्यात द्वारा इसे सन्तुलित करना होता हैं।

16.9 भुगतान संतुलन की विशेषताएँ (Characteristics of Balance of Payments)

भुगतान संतुलन की निम्नांकित विशेषतायें हैं : -

1. **एक विवरण (A Statement): -** भुगतान संतुलन एक विवरण के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इसके दो पक्ष होते हैं।- एक पक्ष में विदेशों से होने वाली प्राप्तियाँ तथा दूसरे पक्ष मे विदेशों को किये जाने वाले भुगतानों को प्रदर्शित किया जाता है।

2. **समस्त आर्थिक सौदों का लेखा-जोखा (Record of all Economic Transactions) :-** भुगतान संतुलन के अन्तर्गत केवल मात्र आर्थिक सौदों का ही लेखा जोखा किया जाता हैं। इसमें केवल वे ही सौदे सम्मिलित किये जाते हैं जिनका मौद्रिक मूल्य होता हैं।

3. **प्राप्तियों तथा भुगतानों में सम्बन्ध (Relation between Receipts and Payments) :-** यह एक देश की कुल विदेशी विनिमय प्राप्तियों एवं उनके भुगतानों के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता हैं। यह सम्बन्ध अनुकूल व प्रतिकूल हो सकता है।

4. **दृश्य व अदृश्य दोनों मदें सम्मिलित (Visible and Invisible both Items are Included)**:- भुगतान संतुलन के अन्तर्गत दृश्य (जिनका बन्दरगाह पर लेखा रखा जाता है) तथा अदृश्य (जिनका बन्दरगाह पर लेखा नहीं होता हैं।) दोनों मदों के आयात-निर्यात को सम्मिलित किया जाता हैं। इनके आधार पर भुगतान संतुलन को ज्ञात किया जाता हैं।

5. **निश्चित समयावधि के लिए (For a Certain Period of Time): -** भुगतान संतुलन एक निश्चित समयावधि के लिए ज्ञात किया जाता है। यह समयावधि सामान्य रूप से एक वर्ष की होती हैं। इस प्रकार यह अलग-अलग वर्षो के लिये अलग-अलग ज्ञात किया जाता हैं।

16.10 भुगतान संतुलन की मदें (Items of Balance of Payments)

भुगतान संतुल्न में सभी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन सम्मिलित किये जाते हैं। यह स्थिति विवरण के समान होता है जिसके एक पक्ष में समस्त प्राप्तियाँ एवं दूसरे पक्ष में समस्त भुगतान दिखाये जाते हैं। भुगतान संतुलन की विभिन्न मदों को निम्नांकित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता हैं -

(अ) चालू खाते से सम्बन्धित मदें (Items Related with Current Account) : - इसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं-

(1) दृश्य आयात-निर्यात (Visible Imports and Exports), (2) विनियोगों पर प्रतिफल (Return on Investment), (3) पर्यटन एवं शिष्टमण्डलों के व्यय (Expenditure on Tourists and Delegations), (4) परिवहन के व्यय (Transportation Expenses), (5) व्यापारिक सेवाओं के व्यय (Expenses of Trade Services), (6) बिना प्रतिफल के भुगतान (Payment without Consideration)

(ब) पूँजी खाते से सम्बन्धित मदें (Items Related with Capital Account) : - इसमें निम्नलिखित मदें सम्मिलित हैं-

(1) दीर्घकालीन विनियोग (Long-Term Investment),

(2) अल्पकालीन विनियोग (Short-Terms Investment),

(3) स्वर्ण आवागमन (Gold Movements)

इनका विस्तृत निम्नांकित है

(अ) चालू खाते से सम्बन्धित मदें (Items Related with Current Account) : - इसमें सम्मिलित मदें भुगतान संतुलन की प्रमुख मदें हैं। इनसे देश की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की स्थिति का पता लगता हैं। इन मदों में आयात-निर्यात की दृश्य एवं अदृश्य दोनों मदों को शामिल

किया जाता है। इसके अतिरिक्त अमौद्रिक व्यवहारों (बिना प्रतिफल के आवागमन की राशि) को भी इसमें सम्मिलित किया जाता हैं। इन मदों में शामिल मदों का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार हैं -

(1) **वस्तुओं (दृश्य) का आयात-निर्यात (Visible Imports and Exports) -** यह भुगतान संतुलन की सबसे मुख्य मद हैं। इसमें दृश्य वस्तुओं एवं सेवाओं का आयात एवं निर्यात सम्मिलित हैं। दृश्य आयात-निर्यात में उन सभी आयात-निर्यातों को सम्मिलित किया जाता हैं जिनका लेखा-जोखा बन्दरगाहों पर रखा जाता हैं। भुगतान संतुलन में आयातों को देना (Payments) पक्ष में तथा निर्यातों को 'पावना' (Receipt) पक्ष में लिखा जाता हैं।

(2) **विनियोगों पर प्रतिफल (Return on Investment) :-** वर्तमान समय में विनियोगों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया हैं। विदेशों में विनियोग के कारण एक देश को दूसरे देश से ब्याज व लाभांश आदि के रूप में आय प्राप्त होती हैं। जब किसी देश को इस प्रकार के भुगतान प्राप्त होते हैं तो उन्हें 'पावना' पक्ष में दर्शाया जाता है तथा जब अन्य देशों को ऐसे भुगतान करने पड़ते हैं तो इन्हें 'देना' पक्ष में दर्शाया जाता हैं।

(3) **पर्यटन एवं शिष्टमण्डलों के व्यय (Expenditure on Tourists and Delegations) : -** जब किसी देश में विदेशी पर्यटक आते हैं तो वे अपने साथ विदेशी मुद्रा लाते है, जिस वे पर्यटन कार्यो पर व्यय करते हैं। इन पर्यटकों से जो राशि किसी राष्ट्र को मिलती है, वह राशि उस देश के भुगतान संतुलन में 'पावना' में दिखाई जाती है, जबकि इस तरह के पर्यटकों के मूल राष्ट्र में यह मद 'देना' में दिखाते हैं। विभिन्न शिष्टमण्डलों, अध्ययन दलों आदि के खर्चो के सन्दर्भ में भी ऐसी ही व्यवस्था होती है।

(4) **परिवहन के व्यय (Transportation Expenses) : -** विदेशों में माल एवं यात्रियों को लाने ले जाने में जहाजी कम्पनियों अथवा वायुयान कम्पनियों को जो विदेशी मुद्रा प्राप्त होती हैं, यह उन देशों के भुगतान-संतुलन में 'पावना' पक्ष में प्रदर्शित की जाती हैं। इसके विपरीत जिन देशों के द्वारा ऐसे भुगतान किये जाते हैं, उनके यहाँ यह राशि 'देना' पक्ष में दर्शायी जाती हैं। इस तरह के भुगतान अदृश्य मदों के अन्तर्गत आते हैं।

(5) **व्यापारिक सेवाओं के व्यय (Expenses of Trade Services) : -** व्यापार से सम्बन्धित सेवाओं में बीमा, बैंक आदि सेवा संस्थानों की सेवाएँ आती हैं। इन संस्थानों द्वारा जो सेवाएँ दी जाती हैं, उनके लिए ये कमीशन वसूल करती हैं। जिन देशों की बीमा कम्पनियों एवं बैंकों द्वारा राशि अर्जित की जाती हैं, वह उस देश के भुगतान संतुलन में 'प्राप्ति' पक्ष में लिखी जाती है तथा जिन देशों द्वारा ऐसे भुगतान किये जाते हैं, उन देशों के भुगतान संतुलन में यह राशि 'भुगतान' पक्ष में लिखी जाती हैं।

(6) **प्रतिफल रहित भुगतान (Payment without Consideration) :-** अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों के कुछ सौदे एक-पक्षीय होते हैं। कभी-कभी कुछ विशेष प्रकार के भुगतान होते हैं जिनमें भुगतान देने वाला किसी तरह का प्रतिफल वसूल नहीं करता हैं। जैसे किसी दूसरे देश में काम करने वाले व्यक्तियों द्वारा अपने मूल देश में रिश्तेदारों को अपनी बचत भेजी जाती हैं। यह प्रतिफल रहित भुगतान हैं। इसी तरह से किसी विदेशी मित्र द्वारा वस्तुएँ उपहार स्वरूप भेजी जाती हैं अथवा किसी विदेशी सरकार या संस्था द्वारा कुछ राशि या वस्तुएँ दान स्वरूप भेंट दी

जाती हैं। ये सभी बिना प्रतिफल के भुगतान कहलाते हैं। जिन राष्ट्रों को ये प्राप्त होते हैं वे इन्हें 'प्राप्ति' पक्ष में लिखते हैं जबकि देने वाले राष्ट्र इन्हें 'भुगतान' पक्ष में लिखते हैं।

(ब) पूंजी खाते से सम्बन्धित मदें (Items Related with Capital Account):- भुगतान संतुलन की मदों मे दूसरा शीर्षक पूँजी खातों होता हैं। इसमें विदेशों में विनियोजित तथा विदेशों की स्वयं के देश में विनियोजित पूँजी तथा ऋण के आदान-प्रदान की राशि को दिखाया जाता है। इसके अन्तर्गत पूँजी खाते के दीर्घकालीन व अल्पकालीन विनियोगों को अलग-अलग दिखाया जाता हैं। शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित मदें सम्मिलित होती हैं-

(1) **दीर्घकालीन. विनियोग (Long-Term Investment) :-**अब एक देश द्वारा किसी दूसरे देश में विनियोग करना सामान्य बात हो गई है। वह विनियोग दीर्घकाल की अवधि के लिए भी होता हैं। ये एक वर्ष से अधिक की अवधि के होते हैं। इनमें एक देश के निवासियों द्वारा विदेशों में खरीदी गई सम्पत्तियाँ एवं प्रतिभूतियाँ शामिल होती हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न विकास योजनाएँ पूरी करने के उद्देश्य से ये दीर्घकालीन ऋण प्रदान किये जाते हैं। ऐसी राशि को भुगतान संतुलन में 'पावना' (प्राप्तियाँ) पक्ष में लिखते हैं तथा जो राष्ट्र ऐसे विनियोगों में राशि लगाते हैं वे इस राशि को 'देना' (भुगतान) पक्ष में लिखते हैं।

(2) **अल्पकालीन विनियोग (Short-Terms Investment) : -** दीर्घकालीन विनियोग की तरह अल्पकालीन विनियोग भी विदेशों में किया जाता हैं। इस प्रकार के विनियोगों में 6 माह या इससे कम अवधि के लिए ही राशि दी जाती हैं। इसका लेखा-जोखा दीर्घकालीन विनियोग की तरह ही किया जाता है। यह विनियोग ज्यादातर बॉण्ड, सरकारी प्रतिभूतियों, ट्रेजरी बिल आदि अल्पकालीन प्रतिभूतियों में ही किया जाता हैं। ऐसे विनियोग की एक विशेष बात यह भी है कि जब चालू खाते की मदें तथा दीर्घकालीन पूँजी के विनियोग की मदें दोनों पक्षों में बराबर नहीं होती, तो उन्हें सन्तुलित करने के लिए अल्पकालीन विनियोग का ही सहारा लिया जाता हैं।

(3) **स्वर्ण आदान-प्रदान (Gold Movements) -** भुगतान संतुलन के चालू खाते से सम्बन्धित मदों तथा पूँजी खातों से सम्बन्धित मदों में यदि प्राप्तियाँ या 'पावना' व 'देना' या 'भुगतान' पक्ष में कोई अन्तर रहता है तो उसे स्वर्ण के आदान-प्रदान द्वारा समायोजित किया जाता हैं। जो देश स्वर्ण भेजता है वह स्वर्ण को भुगतान पक्ष में लिखता है तथा जो स्वर्ण को प्राप्त करता है, वह प्राप्ति पक्ष में लिखता हैं। वर्तमान समय में स्वर्ण का आदान-प्रदान बहुत कम हो गया है। इसकी जगह अल्पकालीन विनियोगों का सहारा लिया जाता हैं।

(4) **भूल चूक (Omission) -**उपर्युक्त मदों को व्यवस्थित करने के बाद भी यदि किन्हीं कारणों से संतुलन में अन्तर आता हैं तो दोनों ही मदों के अन्तर्गत 'भूल'-चूक' शीर्षक में अन्तर को प्रदर्शित कर देते हैं।

16.11 भुगतान संतुलन का महत्व (Importance of Balance of Payment)

भुगतान संतुलन व्यापार संतुलन की अपेक्षा एक व्यापक अवधारणा है। इसलिए व्यापार संतुलन की तुलना में इसका महत्व अधिक हैं। इसके महत्व को निम्नांकित बिन्दुओं में दर्शाया गया है -

(1) **देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञान (Knowledge of country' Economic Position) -** भुगतान संतुलन एक देश द्वारा एक वर्ष की अवधि में शेष विश्व के साथ किये गये समस्त आर्थिक लेनदेनों का सम्पूर्ण लेखा-जोखा प्रस्तुत करता हैं। इसलिए इसके विश्लेषण एवं अवलोकन से उस देश की आर्थिक स्थिति का पूर्ण एवं सही ज्ञान हो जाता हैं। यदि देश का भुगतान संतुलन अनुकूल है तो इसका तात्पर्य यह है कि उस देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हैं। इसके विपरीत यदि देश का भुगतान संतुलन प्रतिकूल है तो उस देश की आर्थिक स्थिति कमजोर मानी जायेगी। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड का भुगतान संतुलन अनुकूल है तो उस देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है। इसके विपरीत भारत का भुगतान संतुलन प्रतिकूल है तो भारत की आर्थिक स्थिति कमजोर हैं।

(2) **विदेशी विनिमय कोषों की स्थिति का ज्ञान (Knowledge of Foreign Exchange Reserves):-** किसी देश के भुगतान संतुलनों को देखकर यह ज्ञात किया जा सकता है कि उस देश के विदेशी विनिमय कोषों (Forex) की क्या स्थिति हैं? यदि किसी देश का भुगतान संतुलन अनुकूल है तो इसका आश्य यह है कि उसके विदेशी विनिमय कोषों की स्थिति सुदृढ़ है और उस देश की मुद्रा का बाह्य मूल्य अथवा विदेशी विनिमय दर ऊँची हैं। इसके विपरीत प्रतिकूल भुगतान संतुलन की स्थिति में उसकी विदेशी विनिमय कोषों की स्थिति ठीक नहीं है और उसकी विदेशी विनिमय दर भी नीची हैं। इसके अतिरिक्त भुगतान संतुलन की स्थिति द्वारा यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि किसी देश द्वारा अपनायी गयी मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों का उसके विदेशी विनिमय कोषो तथा विनिमय दर पर क्या प्रभाव पड़ा हैं।

(3) **राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान (Knowledge of the Impacts on National Income):-** भुगतान संतुलन विवरण की मदों की प्रकृति और आकार में होने वाले परिवर्तनों का राष्ट्रीय आय पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसलिये भुगतान संतुलन विवरण का प्रयोग राष्ट्रीय आय पर विदेशी व्यापार तथा अन्य आर्थिक व्यवहारों के पड़ने वाले प्रभावों को मापने (ज्ञात करने) के लिये किया जाता है।

(4) **अवमूल्यन के प्रभावों का ज्ञान (Knowledge of Effects of Devaluation): -** कोई भी देश भुगतान संतुलन में असाम्यता दूर करने के लिये निर्यातों में वृद्धि व आयातों में कमी करता हैं। भुगतान संतुलन विवरण की मदों द्वारा इस बात की जानकारी की जा सकती है कि किसी देश द्वारा मुद्रा का अवमूल्यन करने से उसके निर्यातों मे वृद्धि और आयातों को कम करने में कहीं तक सफलता प्राप्त हो सकेगी। इस प्रकार भुगतान संतुलन के विश्लेषण से किसी देश द्वारा अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करने से विदेशी व्यापार पर पड़ने वाले सम्भावित प्रभावों के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती हैं।

(5) **चालू खाते एवं पूँजी खाते का ज्ञान (Knowledge of Current and Capital Account): -** भुगतान संतुलन विवरण (खाते के रूप में) चालू खाते और पूँजी खाते के रूप में वर्गीकृत होता है। भुगतान संतुलन विवरण से किसी देश के चालू खाते और पूँजी खाते की स्थिति का यर्थाथ ज्ञान होता है। चालू खाते की प्रतिकूलता, भुगतान संतुलन में असाम्यता की द्योतक है जिसे पूँजी खाते की मदों से समायोजन करके दूर किया जाता हैं। इन दोनों खातों की मदों के ज्ञान से ही स्वायत्त सौदों और अनुग्राही सौदों का अन्तर ज्ञात होता हैं।

(6) **देश की अन्तर्राष्ट्रीय शोधन क्षमता का ज्ञान (Knowledge of International Solvency of Nation): -** यदि देश किसी देश का भुगतान संतुलन दीर्घकाल से प्रतिकूल चला आ रहा है तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह देश अपने अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों का समय पर भुगतान करने में सक्षम नहीं है। इसके विपरीत यदि देश में भुगतान संतुलन में अनुकूलता है, तो वह देश की अन्तर्राष्ट्रीय शोधन क्षमता की गारण्टी हैं। पिछड़े और गरीब राष्ट्रों के भुगतान संतुलन में निरन्तर प्रतिकूल असाम्यता कमजोर अन्तर्राष्ट्रीय शोधन का प्रतीक हैं।

(7) **आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान में सहायक (Helpful in Analysing Solving Economic Problems): -** भुगतान संतुलन के विश्लेषण से ही अर्थशास्त्री, नीति विश्लेषक और नीति निर्माता, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समस्याओं का वस्तुपरक अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं तथा समाधान के लिये सुझाव देते हैं। भुगतान संतुलन का अध्ययन न केवल अर्थशास्त्रियों के लिये उपयोगी है, वरन् राजनीतिज्ञों के लिये भी सहायक हैं।

(8) **उपयुक्त आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायक (Helpful in Formulating Appropriate Economic Policies):-** भुगतान संतुलन विवरण के विश्लेषण के आधार पर एक देश उपयुक्त आर्थिक नीतियों का निर्माण करता हैं। एक देश द्वारा अपनायी जाने वाली मोद्रिक राजकोषीय, औद्योगिक एवं आयात-निर्यात नीति का निर्माण भुगतान संतुलन की स्थिति के आंकलन के आधार पर ही किया जाता हैं।

उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी देश का भुगतान संतुलन उस देश की आर्थिक स्थिति का बैरोमीटर हैं। भुगतान संतुलन का महत्व स्पष्ट करते हुए प्रो जेवन्स ने लिखा है कि, "एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्री के लिये भुगतान संतुलन का वही महत्व है जो एक रसायन शास्त्री के लिये तत्वों की सर्वाधिक तालिका का है।"

भुगतान संतुलन में असाम्यता अथवा असंतुलन
(Disequilibrium in Balance of Payments)

यद्यपि यह कथन सही है कि भुगतान संतुलन सदैव सन्तुलित रहता है। किन्तु भुगतान संतुलन में असाम्यता की स्थिति भी व्यावहारिक एवं वास्तविक होती है। इसे समझने के लिए 'भुगतान मे संतुलन में साम्यता (Equilibrium in Balance of Payment) तथा 'भुगतान संतुलन मे सन्तुलन (Balance in Balance of Payment) को समझना अनावश्यक है क्योंकि ये दो एकदम भिन्न स्थितियाँ हैं। यह कहना सही है कि भुगतान संतुलन सदैव सन्तुलित रहता है अर्थात् इसका 'प्राप्ति पक्ष' सदैव इसके 'भुगतान' पक्ष के बराबर होता है। लेकिन भुगतान संतुलन का सदैव साम्यावस्था में रहना आवश्यक नहीं हैं। भुगतान संतुलन की स्थिति असाम्य अवस्था में हो सकती है अर्थात् यह अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो सकती हैं। अर्थात् स्वाभाविक रूप से भुगतान संतुलन अनुकूल या प्रतिकूल हो सकता हैं। इसे ही भुगतान संतुलन की असाम्यता कहते हैं।

भुगतान संतुलन के सौदों को दो भागों में बीटा गया हैं -

(अ) स्वायत्त सौदे (Autonomous Transactions): - ये सौदे वे होते हैं जो भुगतान संतुलन की अन्य मदों के आकार को ध्यान में रखे बिना होते हैं अर्थात् ये सौदे स्वतन्त्र रूप से होते हैं, किसी प्रकार की बाध्यता के कारण नहीं होते हैं। भुगतान संतुलन के चालू खाते

की सभी मदें तथा पूँजी खाते में दीर्घकालीन विनियोग एवं दीर्घकालीन ऋण स्वायत्त सौदों की श्रेणी में आते हैं।

(ब) अनुग्राही सौदे (Induced Transactions):- ये सौदे अन्त: प्रेरणा या लाभार्जन के लिए नहीं किये जाते हैं बल्कि परिस्थितियों की बाध्यता के कारण किये जाते हैं। ये सौदे स्वायत्त सौदों की असाम्यता को ठीक करने के लिए किए जाते हैं इसलिए इन्हें 'प्रेरित सौदे' निपटारा (Settlement), समायोजन (Accomodation), क्षतिपूरक (Compensatory) सौदे भी कहा जाता हैं। भुगतान संतुलन के पूँजी खाते में सम्मिलित अल्पकालीन विनियोग अथवा ऋण तथा मौद्रिक स्वर्ण प्रवाह अनुग्राही सौदों की श्रेणी में आते हैं।

अनुग्राही सौदे भुगतान संतुलन में साम्यावस्था लाने के उद्देश्यों से ही किये जाते हैं। जब भुगतान संतुलन विवरण के दोनों पक्ष बिना अनुग्राही सौदों के ही संतुलन में हों तो भुगतान संतुलन साम्यावस्था में होता है और जब भुगतान संतुलन को अनुग्राही सौदों की सहायता से सन्तुलित किया जाता है तो भुगतान संतुलन लेखे की दृष्टि से सन्तुलित होते हुए भी साम्यावस्था में नहीं होता हैं।

16.12 भुगतान संतुलन में असाम्यता के कारण (Causes of Disequilibrium of Balance of Payments)

भुगतान संतुलन की असाम्यता के निम्न कारण होते हैं -

(1) **बढ़ते हुए आयात (Increasing Imports): -** विकासशील देशों के तेजी से आर्थिक विकास करने के लिए अनेक आवश्यक वस्तुओं का आयात करना पड़ता है। विकासशील देशों को पूँजी, तकनीकी ज्ञान, कच्चा -माल, मशीनें आदि के अतिरिक्त खाद्य सामग्री का भी आयात करना होता हैं। बड़ी मात्रा में किए गए आयातों का भुगतान करने के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता पड़ती हैं। निर्यात अधिक न होने से विदेशी विनिमय का अभाव रहता है और भुगतान असन्तुलित हो जाते हैं। दूसरी ओर, विकास कार्यों को पूरा करने के लिए घाटे की वित व्यवस्था का सहारा लेना पड़ता है जिससे मुद्रा स्फीति पैदा हो जाती है तथा आयात और भी अधिक होने लगते हैं।

(2) **निर्यातों में धीमी वृद्धि (Slow Growth in Exports): -** एक विकासशील अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप यन्त्र, कच्चा माल, विशेषज्ञ व अन्य विदेशी वस्तुओं की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध निर्यात बढ़ाकर ही किया जाता है। परन्तु विकास की प्रारम्भिक अवस्था में अधिक निर्यात सम्भव नहीं हैं, क्योंकि (1) इसमें निर्यात उद्योगों का निर्माण करना होता है, (2) अधिकांश घरेलू उत्पादन देश में ही खप जाता हैं, (3) कृषि का पिछड़ापन व कृषि उपज के संचय व परिवहन में कठिनाई होती हैं, (4) वस्तुएं अपेक्षाकृत निकृष्ट किस्म की व महँगी होती हैं, (5) पूँजी की कमी के कारण वे विदेशों में विनियोग करने योग्य नहीं होती हैं, (6) विकसित देशों द्वारा कम विकसित देशों से आयात पर प्रतिबन्ध व अधिक कर लगाया जाता है, तथा (7) देश का स्तर इतना उन्नत नहीं होता कि सेवाएँ निर्यात की जा सकें। निर्यात नहीं बढ़ने से भुगतान असाम्यता में और भी अधिक वृद्धि हो जाती हैं।

(3) **जनसंख्या में वृद्धि (Increase in Population): -** विकासशील देशों की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन देशों में आयातों की आवश्यकता भी बढ़ गई हैं। दूसरी ओर विकसित देशों में जनसंख्या में अधिक वृद्धि न होने के कारण वहां अर्द्धविकसित देशों से होने वाले आयात की माँग कम हो गयी है। साथ ही भूतकाल में अधिकांश विदेशी गैर-सरकारी विनियोग विकासशील देशों में निर्यात उद्योगों में किए जाते थे। प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले देशों में निर्यात उद्योगों का प्रसार होने के कारण उनके निर्यात की कीमतें घट गई हैं। यही कारण है कि विकासशील देशों को प्रतिकूल भुगतान संतुलन का सामना करना पड़ता हैं।

(4) **विदेशी ऋणों का बढ़ता भार (Increasing Burden of Foreign Debts): -** अधिकांश विकासशील देश बड़ी मात्रा में विदेशी ऋण लेते हैं। इन विदेशी ऋणों और उनके ब्याज के भुगतान में काफी विदेशी विनिमय खर्च हो जाता है। उदाहरण के लिए आजकल विकासशील देशों के कुल निर्यात का लगभग 11 प्रतिशत तो ऋणों के ब्याज व मूलधन के भुगतान में ही चला जाता है। भारत अपने निर्यातों का 20 प्रतिशत, ऋण सेवाओं में खर्च कर देता हैं।

(5) **आयात नियन्त्रण या संरक्षणवाद (Import Restriction or Protectionism): -** औद्योगिक देशों में प्राय: घरेलू उद्योग की रक्षा के लिए कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। फलत: इन देशों में कृषि पदार्थो के निर्यात की माँग घटती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कुछ अन्य विकसित देशों में स्वयं के कृषि उद्योगों में व्याप्त बेरोजगारी को दूर करने के लिए न केवल कृषि सम्बन्धी आयातों पर प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं, बल्कि कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के निर्यात की सहायता करके अनुचित रूप से कम विकसित देशों के साथ प्रतियोगिता भी की जाती हैं। इससे विकासशील देशों के निर्यात विपरीत रूप से प्रभावित होते हैं।

(6) **निर्यातों की निम्न साख (Low Credit of Exports): -** विकासशील देशों द्वारा किये जाने वाले निर्यातों की औद्योगिक व विकसित देशों में अच्छी साख नहीं होने के कारण इनके द्वारा किये जाने वाले निर्यात नहीं बढ़ पाते हैं। विकासशील देशों में उत्पादन लागत में वृद्धि व वस्तुओं की निम्न किस्म भी निर्यात में वृद्धि को कम करती हैं।

(7) **कमजोर विक्रय शर्त (Weak Terms of Sales): -** विकासशील देशों द्वारा उत्पादित माल की किस्म अच्छी नहीं होती तथा साथ ही मूल्य भी अधिक होता है। अत: वे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा में नहीं टिक पाते हैं। अत: बाध्य होकर कमजोर विक्रय शर्तों पर माल का निर्यात करना पड़ता है। विकासशील देश साख सुविधाएँ माल की समय पर सुपुर्दगी तथा विक्रय के बाद की अन्य सुविधाएँ भी नहीं दे पाते हैं।

(8) **आन्तरिक मूल्य स्तर में वृद्धि (Increasing Internal Prices): -** विकासशील देश के हीनार्थ प्रबन्धन व बढ़ती हुई माँग के कारण सामान्य कीमत स्तर बढ़ता हैं। विकास व्ययों में वृद्धि से आय व कीमत प्रभाव, क्रियाशील हो उठते हैं। मुद्रा प्रसार के कारण कीमत स्तर बढ़ता है जिससे आयात अधिक व निर्यात कम होते हैं और भुगतान संतुलन में असाम्यता आ जाती हैं।

(9) **सुरक्षा व्यय में वृद्धि (Increasing Security Expenses):-** विकासशील देशों को अपनी सुरक्षा व युद्ध की तैयारी के लिए बड़ी मात्रा में विदेशों से अस्त्र-शस्त्रों का आयात करना

पड़ता हैं। कई देश अपने अधिकांश साधनों को युद्ध निर्माण सम्बन्धी उद्योगों में लगाने के लिए बाध्य हुए हैं। विकासशील देशों के सुरक्षा व्ययों में भारी वृद्धि हो रही है।

(10) **विशिष्टीकरण (Specialisation): -** विकासशील देशों ने मुख्य रूप से कृषि और खनिज पदार्थो के निर्यात में विशिष्टीकरण प्राप्त किया है जिनकी माँग की आय बहुत कम होती हैं। इसके विपरीत, विकसित देशों ने मुख्य रूप से पूँजीगत व औद्योगिक वस्तुओं के निर्यात में विशिष्टीकरण प्राप्त किया हैं। इन वस्तुओं के लिए माँग की आय-लोच अपेक्षाकृत ऊँची होती हैं। ज्यों ही एक देश की राष्ट्रीय आय बढ़ती है त्यों ही निर्मित वस्तुओं पर होने वाले खर्चे का अनुपात बढ़ जाता है, परन्तु खाद्यान्न आदि पर व्यय का अनुपात घट जाता है। इस प्रकार विश्व की आय बढ़ जाता है, खाद्यान्न आदि पर व्यय का अनुपात घट जाता हैं। इस प्रकार विश्व की आय में वृद्धि के साथ-साथ औद्योगिक देशों के निर्यातों की माँग बढ़ जाती है और प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले देशों की निर्यात माँग अधिक नहीं बढ़ पाती हैं।

(11) **प्रजातन्त्र का ऊँचा मूल्य (Higher Cost Democracy): -** अधिकांश विकासशील देशों ने प्रजातन्त्र को अपनाया है। इस व्यवस्था में देश के साधनों का दुरूपयोग होने की सम्भावना रहती हैं। विदेशों में राजदूतों पर भारी व्यय करना पड़ता हैं। इसके अतिरिक्त राजनेता व अधिकारी भी विभिन्न देशों का भ्रमण कर दुर्लभ मुद्रा का अपव्यय करते हैं।

(12) **मूल्यों में अस्थिरता (Lack of Price Stability):** - प्राथमिक वस्तुओं के मूल्यों में निर्मित वस्तुओं की अपेक्षा अस्थिरता पाई गई हैं। जब कभी प्राथमिक वस्तुओं के मूल्य कम हो, जाते हैं तो विकासशील देशों के भुगतान पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं।

(13) **विदेशी विनिमय कोषों के उचित उपयोग का अभाव (Lack of Proper use of Forex):-** विकासशील देश अपने यहाँ उपलब्ध विदेशी मुद्रा कोषों का उचित प्रयोग नहीं कर पाते है। वे कम महत्वपूर्ण कार्यो में इसे व्यय कर डालते हैं और फिर आवश्यक होने पर उन्हें विदेशों से ऋण लेने पड़ते है। इससे भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाता हैं।

(14) **आयात प्रतिस्थापन का अभाव (Lack of Import Substitution): -** विकासशील देश आयात-प्रतिस्थापन कार्यो को अधिक महत्व नहीं देते हैं तथा अपने आयातों में भी कमी नहीं कर पाते हैं। निम्न तकनीकी ज्ञान, पूँजी का अभाव, उच्च गुणवता, के उत्पादन का अभाव, निर्यात योग्य आधिक्य की कमी के कारण वे आयात प्रतिस्थापन करने में असफल रहते हैं। फलस्वरूप आयात अधिक होने से इनका भुगतान संतुलन प्रतिकूल रहता हैं।

(15) **विदेशी सहायता में कमी (Decreasing Foreign Aid): -** यह भी देखा गया है कि विकासशील देशों को मिलने वाली विदेशी सहायता धीरे-धीरे कम होती जा रहीं है। विकसित देश अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 0.50 प्रतिशत (आधा प्रतिशत) से भी कम सहायता दे रहे है। अधिकांश विदेशी सहायता बन्धी हुई होती है, जिसका स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग नहीं हो पाता हैं।

(16) **अन्य कारण (Other Cause): -** विकासशील देशों को तस्करी, सुरक्षा व्ययों में वृद्धि, आतंकवाद. साम्प्रदायिकता, सामाजिक सेवाओं पर व्ययों में वृद्धि, आदि के कारण भी भारी व्यय करने पड़ते हैं। इससे भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।

16.13 भुगतान संतुलन की असाम्यता को सुधारने के उपाय (Measures for Correcting Disequilibrium in Balance of Payment)

किसी देश के भुगतान संतुलन में निरन्तर प्रतिकूल असाम्यता की स्थिति उस देश की अर्थव्यवस्था के लिए उपयुक्त नहीं है। यह अर्थव्यवस्था के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए भी हानिकारक हैं। अत: प्रत्येक देश इसे यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र ठीक करने का प्रयास करता हैं। भुगतान संतुलन की असाम्यता को ठीक करने के लिए निम्नलिखित प्रयास किये जाने चाहिए -

(1) **निर्यात प्रोत्साहन (Export Promotion): -** भुगतान संतुलन में प्रतिकूल असाम्यता को दूर करने का सर्वाधिक प्रभावी उपाय निर्यात संवर्द्धन है। निर्यातों में वृद्धि से देश की विदेशी विनिमय प्राप्तियाँ बढ़ती हैं। निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जाते हैं - (1) उत्पादन लागतों में कमी करना (2) माल की गुणवता में सुधार करना (3) निर्यात करों में कमी करना (4) निर्यात उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करना। (5) विदेशों में माल के प्रचार-प्रसार के लिए विज्ञापन, मेले व प्रदर्शनियों का आयोजन करना तथा (6) निर्यात उद्योगों के लिए कच्चा माल व मशीनरी के आयात के लिए प्राथमिकता के आधार पर व्यवस्था करना।

(2) **आयात नियन्त्रण (Import Control):-** भुगतान संतुलन में प्रतिकूलता दूर करने का एक प्रभावशाली उपाय आयातों में कमी करना हैं। आयातों में कमी के परिणामस्वरूप देश की देनदारियाँ कम हो जाती हैं। विकासशील देशों को अनावश्यक एवं विलासिता पूर्ण वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाकर कर आयातों को नियन्त्रित करना चाहिए। आयात नियन्त्रण हेतु निम्नांकित कदम उठाये जा सकते हैं - (1) अनावश्यक वस्तुओं के आयात पर कठोर नियन्त्रण अथवा पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना (2) आयात करों में वृद्धि करना (3) आयात अभ्यंश प्रणाली लागू करना (4) आयात साख सुविधाओं में कमी करना (5) स्वदेशी की भावना जागृत करना।

(3) **आयात प्रतिस्थापन को प्रोत्साहित करना (To Encourage Import Substitution)** -आयात की जाने वाली वस्तुओं को देश मे ही उत्पादन करने की क्रिया को आयात प्रतिस्थापन कहते हैं। भुगतान संतुलन में प्रतिकूलता को कम अथवा समाप्त करने के लिए आयात प्रतिस्थापन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। देश में ऐसे उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन देना चाहिये जो आयात की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन देश में ही कर सके।

(4) **विदेशी पूँजी विनियोजन को प्रोत्साहन (Promotion to Foreign Capital Investment) -** भुगतान संतुलन की असाम्यता को दूर के लिए एक निश्चित और आकर्षक नीति द्वारा विदेशी पूँजी विनियोजन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। इसके लिए देश में विदेशी पूँजी विनियोग करने की प्रक्रिया को सरल बनाने के साथ-साथ विदेशी पूँजी के विनियोग से विदेशी मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होगी जो भुगतान संतुलन के असाम्य को ठीक करने में सहायक होगी।

(5) **मुद्रा संकुचन (Currency Contraction):-** मुद्रा संकुचन का अर्थ देश में मुद्रा की मात्रा को कम करने से हैं। मुद्रा संकुचन के परिणामस्वरूप देश में मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है जिससे देश में मूल्य स्तर नीचे गिरने लगते हैं तथा विदेशों से आयी हुई वस्तुएँ महँगी हो जाती

है। मुद्रा संकुचन के कारण निर्यात बढ़ते है तथा आयात कम होने लगते हैं। वास्तव में यह एक अच्छा उपाय नहीं है क्योंकि मूल्य स्तर कम होने से उत्पादन, रोजगार, पूँजी विनियोग व बचत में कमी आती हैं। देश में उद्योग-धन्धों पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं, आर्थिक मन्दी फैल जाती हैं।

(6) **अवमूल्यन की नीति (Devaluation):-** जब किसी देश की मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा के मूल्य में जान बूझकर कम कर दिया जाता है तो क्रिया को अवमूल्यन कहते हैं। इससे स्वदेशी वस्तुएँ विदेशों में सस्ती हो जाती है तथा विदेशी वस्तुएँ महँगी पड़ने लगती हैं। परिणामस्वरूप देश के निर्यातों में वृद्धि तथा आयातों में कमी आती है और भुगतान शेष सन्तुलित होने लगता है। यह पद्धति तभी सफल होती जब आयात व निर्यात दोनों की माँग लोचदार हो।

(7) **ब्याज दर में परिवर्तन (Change in Interest Rates):-** ब्याज दर में परिवर्तन करके भी भुगतान असाम्यता को दूर किया जा सकता है। ब्याज दर में वृद्धि से विदेशी पूँजी अधिक मात्रा में आने लगती है, जिससे भुगतान संतुलन में असाम्यता दूर हो जाती है किन्तु असाम्यता अधिक मात्रा में हो तो यह उपाय अधिक उपयुक्त नहीं होगा।

(8) **पर्यटन उद्योग का विकास (Development of Tourism):-** विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के उद्देश्य से भी किसी देश द्वारा विभिन्न योजनाएँ बनाई जा सकती हैं। अधिक पर्यटकों के आगमन से विदेशी मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है। विदेशी विनिमय कोषों में वृद्धि होने से प्रतिकूल भुगतान संतुलन ठीक हो जाता है।

(9) **तस्करी पर रोक (Check on Smuggling):-** प्रभावशाली तरीके से तस्करी तथा अवैध तरीके से होने वाले आयतों पर नियन्त्रण लगाया जाना चाहिए। तस्करी को रोकने से जहाँ एक ओर विदेशी मुद्रा की प्राप्तियाँ बढ़ जाती है वहीं दूसरी तरफ सरकार को करों से अधिक आय होने लगती हैं।

(10) **विनिमय नियन्त्रण (Exchange Control):-** विनिमय नियन्त्रणों को कठोर बनाकर विदेशी मुद्रा की प्राप्तियों व भुगतानों पर कड़ा नियन्त्रण स्थापित करके भुगतान संतुलन की असाम्यता को ठीक किया जा सकता हैं। विनिमय नियन्त्रण द्वारा आयातों को निर्यातों की आय तक सीमित रखा जा सकता है और विदेशी मुद्रा का उपयोग केवल अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्यो के लिए ही किया जा सकता है। इस पद्धति की यह विशेषता है कि न तो इसमें प्रतिकार की भावना उत्पन्न होती है और न अवमूल्यन जैसे उपायों, के कारण देश की प्रतिष्ठा को धक्का लगता हैं।

(11) **ऋण भुगतानों के स्थान (Postponing Debt Payment):-** यदि प्रतिकूल भुगतान शेष वाले देशों द्वारा विदेशों को चुकाये जाने वाले ऋणों के भुगतान के स्थगन के लिए समझौते किए जाते हैं, तो उस समय उसकी देनदारियाँ कम हो जाती हैं। देनदारियों के कम होने से उसके भुगतान संतुलन के असाम्य की स्थिति को ठीक होने में काफी सहायता मिलती हैं। बल्कि एक सीमा तक तो प्रतिकूल शेष में सुधार हो जाता है।

(12) **मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण (Check on Inflation):-** मुद्रा स्फीति के कारण मूल्य स्तर में तेजी से वृद्धि होती है। इसे नियन्त्रित कर भुगतान संतुलन की असाम्यता को सुधारा जा सकता है। देश में मूल्य नियन्त्रित रहने से निर्यात बढ़ेगे तथा आयातों में कमी आयेगी।

उपर्युक्त उपाय अपना कर भुगतान असाम्यता को ठीक किया जा सकता है। यह कहना कि इनमें से कौन-सा उपाय उचित होगा, सम्भव नहीं हैं। इनमें से एक या अधिक उपायों को देश-काल एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अपनाया जाना चाहिए।

16.14 भारत के भुगतान संतुलन की स्थिति (Balance of Payment position of India)

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में भुगतान संतुलन की स्थिति गंभीर नहीं थी। द्वितीय विश्व युद्ध काल में भारत के पास स्टर्लिग कोष एकत्रित हो गये थे। मार्च 1948 में विदेशी विनिमय कोषों की शुद्ध मात्रा 1,582 करोड़ रू. हो गई। 1949-51 की अवधि में विदेशी व्यापार में घाटा था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आयातों के बढ़ने एवं निर्यातों में पर्याप्त वृद्धि न होने के कारण भुगतान संतुलन की स्थिति प्रतिकूल होती गई। 1950-51 में भारत के विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण को छोड़कर) 911 करोड रू. के थे जो 1955-56 में घटकर 785 करोड़ रू. रह गये। प्रथम योजना के बाद से भारत के आयात बढ़ने लगे। द्वितीय योजना में विदेशी विनिमय का कुल घाटा 2,059 करोड रू. हुआ। इस प्रकार इस योजना में भुगतान संतुलनकी स्थिति काफी प्रतिकूल रही। 1960-61 में हमारे विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण को छोड़कर) घटकर 186 करोड़ रू. रह गये। तीसरी योजना में भी व्यापार घाटा बढ़ता गया। अदृश्य मदों में भी प्रत्येक वर्ष घाटा ही रहा। इस योजना में कुल घाटा 3,056 करोड़ रू. रहा। तीसरी योजना के अन्त में (1965-66) विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण को छोड़कर) घटकर 182 करोड़ रू. के रह गये। इस प्रकार तीसरी योजना में भारत के भुगतान संतुलन की स्थिति पर काफी दबाव बढ़ा एवं हमें विदेशी सहायता का अधिक उपयोग करना पड़ा।

1966-69 के तीन वर्षो में विदेशी विनिमय कोषों में वृद्धि हुई। यह वृद्धि चौथी एवं पाँचवीं योजना अवधि में भी जारी रही। पाँचवी योजना के अन्तिम वर्ष 1978-79 में विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण व SDRs को छोड़कर) लगभग 5,220 करोड रू. हो गये। छठी योजना (1980-85) में देश में कच्चे तेल का उत्पादन बढ़ा तथा प्रवासी भारतीयों से अधिक भुगतान राशि प्राप्त हुई। फलस्वरूप व्यापार घाटा अधिक रहने पर भी चालू खाते का घाटा औसत रूप से सकल घरेलू उत्पादन का 1.3 प्रतिशत ही रहा। 1980-81 में विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण व SDRs को छोड़कर) 4,822 करोड रू. थे जो 1985-86 में बढ़कर 6,817 करोड रू. हो गये। सातवीं योजना में चालू खाते का घाटा बढ़ा।

भारत के भुगतान संतुलन की स्थिति को निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

चुने हुए वर्षो में भुगतान संतुलन के मुख्य सूचक

(प्रारम्भिक वास्तविक राशि)

(मिलियन डॉलर में)

मदें		1990-91	1996-97	1999-2000	2000-01	2004-05	2005-06
1.	निर्यात	18477	43133	37542	44894	85206	105152

2.	आयात	27915	48948	55383	59264	118908	156993
3.	व्यापार शेष	-9438	-14815	-17841	-14370	-33702	-51841
4.	अदृश्य (शुद्ध)	-242	10196	13143	11791	31232	42655
5.	चालू खाते की बकाया	-9680	-4619	-2579	-2579	-2470	-9186
6.	बाहा सहायता (शुद्ध)	2210	1109	901	427	1923	1682
7.	वाणिज्यिक उधार (शुद्ध)	2248	2484	313	4011	5194	2723
8.	अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (शुद्ध)	1214	-975	-216	-26	0	0
9.	प्रवासी भारतीयों की जमाएँ (शुद्ध)	1536	3350	1540	2317	-964	2789
10.	रूपया कर्ज सेवा	-1193	-727	-711	-617	-417	-572
11.	विदेशी विनियोग (शुद्ध)	103	5963	5117	4588	13000	17224
12.	अन्य प्रवाह	2283	-1131	3940	-2291	9893	392
13.	पूँजी खाता कुल (शुद्ध)	8402	10437	10940	8409	28629	24238
14.	विदेशी विनियम भण्डार का उपयोग (वृद्धि)	1278	-5818	-6142	-5830	-25159	-15052

Source: Economic Survey 2006-07 P. 108 table 6.2

1980-91 में चालू खाते का घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 3.2 प्रतिशत रहा। इससे देश गम्भीर विदेशी विनियम कोष संकट में फंस गया। यद्यपि यह समस्या नई नहीं थी। किन्तु जून 1991 में देश के विदेशी विनिमय कोष (स्वर्ण व SDRs को छोड़कर) घटकर केवल 2,400 करोड रू. रह गये जो मुश्किल से दो सप्ताह के आयातों के भुगतान लायक थे। इससे भारत की

विदेशों में साख घटी तथा सरकार को उधार लेने में दिक्कत आने लगी। 1990-91 में चालू खाते का शुद्ध घाटा (वस्तुओं व सेवाओं का आयात इनके निर्यात से अधिक) 9.68 अरब डीलर था जो सकल घरेलू उत्पाद का 3.2 प्रतिशत था। 1997-98 में यह 5.5 अरब डीलर (जो सकल घरेलू उत्पाद का 1.4 प्रतिशत) तथा 1998-99 में 4 अरब डीलर (सकल घरेलू उत्पाद का 1प्रतिशत) था।

तालिका निष्कर्ष -

(1) तालिका की मद 5 में चालू खाते का घाटा दिखाया है जो 1990-91 में 9.68 अरब डीलर था जो बाद के वर्षो में कम हुआ। किन्तु 2005-06 में बढ़कर पुन: 9.19 अरब डॉलर रहा।

(2) चालू खाते के घाटे की पूर्ति के लिए पूँजी खाते से राशि प्राप्त की जाती है। इनमें बाह्य सहायता, विदेशी विनियोग (प्रत्यक्ष विनियोग, विदेशी संस्थागत विनियोग तथा यूरों-ईक्विटी राशि) व अन्य प्रवाहों की राशियां शामिल है। तालिका की मद 13 में इनकी शुद्ध राशियां (सकल प्राप्तियां - सकल भुगतान) दर्शायी गयी है। यह राशि 1990-91 में 8.4 अरब डॉलर थी जो 1999-2000 में 10.94 अरब डॉलर व 2005-06 में 24.2 अरब डॉलर थी।

(3) 2005-06 विशुद्ध विदेशी विनियोग की वृद्धि 17.2 डॉलर थी जो 1999-2000 में 5.12 अरब डॉलर थी।

(4) 1990-91 में चालू खाते का घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 3.2 प्रतिशत था जो 1999-2000 में 1.1 प्रतिशत तथा 2001-02 में घटकर 0.55 रह गया।

(5) पूंजीगत खाते में ढांचागत परिवर्तन आये हैं। जब ऋण आधारित पूंजी का अन्तप्रवाह कम हुआ है और गैस-ऋण पूंजी का अर्न्तप्रवाह बढ़ा है। विदेशी विनियोग में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

(6) ब्राह्म वाणिज्यिक उधार की राशि 1992-93 में ऋणात्मक थी जो 2005-06 में बढ़कर (धनात्मक 2.72 अरब डॉलर हो गयी है।

(7) प्रवासी भारतीयों की शुद्ध जमा राशि 1990-91 में 1.5 अरब डॉलर थी जो 1996-97 में बढ़कर 3.3 अरब डॉलर तथा 2005-06 में 2.78 अरब डॉलर रही। 1990-91 में भुगतान संतुलन की स्थिति अत्यन्त जटिल थी। अब धीरे-धीरे इनमें सुधार हो रहा है।

16.15 सारांश

किसी भी देश के आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आधुनिक वैश्वीकरण के युग में तो इसका महत्व और भी बढ़ गया है। विदेशी व्यापार के द्वारा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक संबंधों का भी विस्तार होता है। भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा निरन्तर बढ़ रही है। हमारे निर्यातों की तुलना में आयात अधिक होने से व्यापार घाटा भी निरन्तर बढ़ रहा है। विदेशी व्यापार की मात्रा बढने के बावजूद विश्व के कुल विदेशी व्यापार में भारत का हिस्सा 1 प्रतिशत से भी कम है। भारत के विदेशी व्यापार की संरचना एवं दिशा में भी परिवर्तन आये है। भारत के प्रमुख व्यापारिक भागीदारों में संयुक्त राज्य अमेरिका,

ब्रिटेन, बेल्जियम, जर्मनी, जापान, स्विटजरलैण्ड, हॉगकांग, संयुक्त अरब अमीरात, चीन, सिंगापुर, मलेशिया आदि प्रमुख हैं।

व्यापार संतुलन की तुलना में भुगतान संतुलन का अधिक महत्व हैं। इसमें सभी दृश्य एवं अदृश्य मदों को शामिल किया जाता है। भारत का भुगतान संतुलन सदैव प्रतिकूल रहा है। इसमें असाम्यता के प्रमुख कारण बढते आयात, निर्यातों में धीमी वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि, आयात नियंत्रण व संरक्षणवाद, सुरक्षा व्यय में वृद्धि, मूल्यों में अस्थिरता आदि प्रमुख है। सरकार निरन्तर असाम्यता को दूर करने का प्रयास कर रही है। इसके लिए सरकार द्वारा अनेक कदम उठाये गये हैं।

16.16 शब्दावली

आयात (Imports): दूसरे देश से आवश्यक माल मंगवाना (दृश्य वस्तुएं) आयात कहलाता है।

निर्यात (Exports) : विश्व के अन्य देशों को अपने देश से वस्तुएं (दृश्य) भेजना निर्यात कहलाता हैं व्यापार संतुलन (Balance of Trade) : एक वर्ष में आयातों एवं निर्यातों के मूल्य का अन्तर व्यापार संतुलन कहलाता है। यदि आयातों का मूल्य निर्यातों के मूल्य से अधिक होता है तो व्यापार संतुलन प्रतिकूल कहा जाता है। यदि आयातों का मूल्य निर्यातों के मूल्य से कम होता है तो व्यापार संतुलन अनुकूल कहा जाता है।

विकासात्मक आयात (Development Imports) : विकासात्मक आयात देश की उत्पादन क्षमता का विस्तार करने के लिए किए जाते है।

परिपोषक आयात (Maintenance Imports) : ये आयात वे होते हैं जो देश में स्थापित उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करने के लिए किए जाते हैं।

अस्फीतिकारी आयात (Anti-Inflationary Imports) : ऐसे आयात कीमतों में वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए किए जाते हे।

भुगतान संतुलन (Balance of Payment) : किसी देश का भुगतान संतुलन उन समस्त आर्थिक सौदों का क्रमबद्ध लेखा है जो सूचनादाता देश के नागरिकों एवं विदेशी नागरिकों के मध्य एक वर्ष में होते हैं।

16.17 स्वपरख प्रश्न

1. भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा, संरचना एवं दिशा का वर्णन कीजिए।
2. भारत के विदेशी व्यापार की आधुनिक प्रवृतियों पर प्रकाश डालिए।
3. भारत के विदेशी व्यापार की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
4. भुगतान संतुलन से क्या तात्पर्य है। इसकी प्रमुख मदें कौन-कौन सी है।
5. भुगतान संतुलन की अवधारणा की व्याख्या कीजिए प्रतिकूल भुगतान संतुलन को सुधारने के उपाय बताइये।
6. किसी देश के भुगतान संतुलन में प्रतिकूलता के क्या कारण है? इन्हें सुधारने के उपाय बताइए।

इकाई-17

भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

(Foreign Direct Investment in India)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 औद्योगिक नीति एवं विदेशी निवेश

17.3 विदेशी निवेश के प्रकार

(अ) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश।

(ब) पोर्टफोलियों निवेश।

17.4 भारत में विदेशी निवेश की प्रमुख प्रवृतियाँ

17.5 भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मूल्याँकन

17.6 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में तुलनात्मक कमी के कारण

17.7 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने हेतु सरकारी प्रयास

17.8 2001 में योजना आयोग द्वारा गठित समिति की सिफारिशें

17.9 वर्तमान में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा

17.10 वर्तमान मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए नीतिगत पहल: 2008

17.11 सारांश

17.12 शब्दावली

17.13 स्वपरख प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की आवश्यकता की जानकारी देना, भारतीय औद्योगिक नीति एवं उदारीकरण के दौर मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ावा देना, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की वर्तमान स्थिति एवं मुख्य प्रवृत्तियों की जानकारी देना, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मूल्यांकन करना, भारत में तुलनात्मक रूप से कम प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित होने के कारण एवं उसके लिए सरकारी प्रयास व पहल की जानकारी देना हैं। इस सम्बन्ध में उदारीकरण के बाद वर्तमान में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा एवं सरकार द्वारा अपनायी गयी नीति को समझाना है।

17.2 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद घोषित भारत की प्रथम औद्योगिक नीति 1948 मे विदेशी निवेश एवं साहस को देश के औद्योगीकरण हेतु महत्वपूर्ण माना गया था। साथ ही विदेशी पूँजी, का नियन्त्रण भारतीय हाथों में रखा जाना अनिवार्य माना गया। इसके लिए उन सभी उद्योगों में,

जिसमें विदेशी पूँजी का निवेश होना था, उनके स्वामित्व तथा प्रबन्ध मे भारतीय हिस्सेदारी आधे से अधिक रखने का सुझाव दिया गया। इस नीति में यह उल्लेख किया गया था कि यदि विदेशी पूँजी का राष्ट्रीयकरण किया गया तो उचित मुआवजा दिया जायेगा। औद्योगिक नीति 1948 में विदेशी पूँजी सम्बन्धी नीति को 1956 की औद्योगिक नीति में भी स्वीकार कर लिया गया। वर्ष 1977 तक विदेशी निवेश के सम्बन्ध में यह नीति जारी रही। लेकिन 1977 की औद्योगिक नीति में इसमें कुछ बदलाव करते हुए यह कहा गया कि, "भारत में कार्यशील विदेशी कम्पनियों को कम से कम 60% पूँजी भारतीयों को बेचनी होगी, इस प्रकार विदेशी कम्पनियों में विदेशी पूँजी अंश 40% या इससे कम होगा। इससे विदेशी कम्पनियों का भारतीयकरण करने में सहायता मिलेगी। अनावश्यक विदेशी निवेश को रोकने के लिए सरकार ऐसे उद्योगों की सूची जारी करेगी जिनमें अब विदेशी सहयोग नहीं लिया जायेगा।"

वर्ष 1991 में भारत सरकार ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा की जिसे खुली, उदार एवं क्रांतिकारी नीति कहा गया। इस नीति में मुख्य रूप से विदेशी सहयोग बढ़ाने, अर्थव्यवस्था को अनावश्यक नियन्त्रणों से मुक्त करने, सार्वजनिक क्षेत्र को प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाने, रोजगार के अवसर बढ़ाने एवं निरन्तरता के साथ परिवर्तन आदि पर विशेष बल दिया गया।

17.2 औद्योगिक नीति एवं विदेशी निवेश

1991 की औद्योगिक नीति सम्बन्धी वक्तव्य में कहा गया कि औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लाइसेन्स व्यवस्था में छूट देना ही पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए भारत में विद्यमान स्वदेशी पूँजी एवं तकनीकी ज्ञान को सहारा देने के लिए विदेशी पूँजी एवं तकनीकी ज्ञान के आयात की भी छूट देनी होगी। यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय औद्योगिक क्षेत्र ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, किन्तु अन्य अनेक देश हमसे बहुत आगे निकल गये हैं। इससे औद्योगिक देशों में प्रयुक्त तकनीकी एवं भारतीय तकनीक में महत्वपूर्ण अन्तर आ गया हैं। हमारी तकनीक आज भी बहुत पिछड़ी हुई हैं। इस तकनीकी अन्तर को कम करने, भारतीय निर्यातकों की कुशलता का उपयोग करने एवं भारतीय माल को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार उपलब्ध कराने के लिए इस औद्योगिक नीति में विदेशी विनियोजकों की अंश भागीदारी को 40% से बढ़ाकर 51% करने की छूट दी गई। इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य एक ओर विदेशी पूँजी के आगमन में वृद्धि करना था, तो दूसरी ओर विकसित देशों के साथ तकनीकी (Technology) का आदान-प्रदान करना था। भारतीय माल को विदेशी बाजार के योग्य बनाने के लिए सरकार विदेशी व्यापार कम्पनियों के साथ सहयोग को बढ़ावा देगी। इससे भारत के निर्यात बढ़ सकेंगें।

1991 की नीति में यह घोषणा की गई कि उच्च प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों को 51% विदेशी पूँजी निवेश की सुविधा बिना अवरोध और लालफीताशाही से मुआ रख कर दी जायेगी। यह सुविधा उन मामलों में ही उपलब्ध होगी जहाँ विदेशी पूँजी निवेश उत्पादन मशीनों के लिए आवश्यक होगा। इस सम्बन्ध में विदेशी मुद्रा नियमन कानून (FERA, which has been replaced by FEMA) में आवश्यक संशोधन किये जायेंगे। इस प्रकार की पूँजी निवेश वाली इकाइयों पर कल पुर्जे, कच्चे माल और तकनीकी जानकारी के आयात के मामले में सामान्य नियम लागू होगें। लेकिन रिजर्व बैंक इनके द्वारा विदेशों में भेजे गये लाभांश पर नजर रखेगा।

ताकि बाहर भेजी गई विदेशी मुद्रा और उस उपक्रम द्वारा निर्यात से होने वाली आय के मध्य सन्तुलन बना सकें।

विदेशी मुद्रा अंश पूँजी के अन्य मामलों में पहले से स्वीकृति लेनी होगी तथा निर्यात करने वाले व्यापारिक घरानों में भी 51% तक विदेशी पूँजी निवेश की अनुमति दी जायेगी। इस प्रकार के निर्यात घरानों (Expert Howres) पर देश की सामान्य आयात-निर्यात नीति ही लागू होगी। चुनिंदा क्षेत्रों में सीधे पूँजी निवेश के लिए विशेषाधिकार प्राप्त बोर्ड का गठन किया जायेगा जो भारत में उपक्रम लगाने के बारे में बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के साथ बातचीत करेगा। यह एक विशेष कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जायेगा ताकि भारी मात्रा में विदेशी पूँजी को आकृष्ट किया जा सके, आधुनिकतम तकनीक प्राप्त की जा सके और भारत की पहुँच विश्व के अन्य देशों तक हो सके।

1991 की औद्योगिक नीति में विदेशी तकनीकी (Foreign Technology) के आयात को भी उदार बनाया गया। नीति सम्बन्धी वक्तव्य में कहा गया कि उच्च प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में एक बार में एक करोड़ रू. तक की तकनीकी जानकारी समझौतों के लिए अनुमति स्वत: ही दे दी जायेंगी। विदेशी तकनीकी विशेषज्ञ नियुक्त करने अथवा विकसित तकनीकों का विदेशों में परीक्षण करने के लिए अब विदेशी मुद्रा भुगतान की इजाजत लेने की आवश्यकता नहीं रहेगी। जिन मामलों में मशीनों के लिए विदेशी पूँजी अंश पूँजी के रूप में उपलब्ध होगी, उन्हें स्वत: ही उद्योग लगाने की अनुमति मिल जायेगी।

कालांतर में विनिमय नियन्त्रण कानून (FERA) मे संशोधन करके फेरा कम्पनियों पर लगे विनियोग प्रतिबंधों को व्यापक स्तर पर समाप्त कर दिया गया। गैर उपभोक्ता वस्तुओं के लिए लाभाँश सन्तुलन की शर्त को हटाकर विदेशी विनियोग को अधिक उदार बनाया गया। हाइड्रोकार्बन क्षेत्र मे खोज तथा रिफाइनिंग के लिए निजी विनियोग को स्वीकृति प्रदान कर दी गई। 1999 में FERA के स्थान पर "विदेशी विनियम प्रबन्ध अधिनियम" (FEMA) बनाया गया।

वर्ष 1997-98 में रिजर्व बैंक द्वारा स्वत: अनुमोदन माध्यम से प्रत्यक्ष विदेशी अंश पूँजी निवेश के लिए योग्य उद्योगों की सूची का विस्तार किया गया। अब उच्च प्राथमिकता वाले उपक्रमों में अनिवासी भारतीयों व निगमों को 100% तक अंश पूँजी निवेश की अनुमति दी गई हैं। इनमें धातुवर्गीय तथा आधारभूत क्षेत्र में 9 उद्योग तथा 13 अन्य प्राथमिकता प्राप्त उद्योग शामिल हैं। अब खनन क्षेत्र में भी अनिवासी भारतीयों तथा निगमों को 100% अंश पूँजी निवेश की अनुमति दी गई हैं। सन् 2000-2001 के बजट में विदेशी कम्पनियों को भारतीय कम्पनियों में 40% निवेश की छूट दी गई। निवेश की इस सीमा को 2001-2002 मे बढ़ाकर 49% कर दिया गया। इसके साथ ही भारतीय कम्पनियों को भी विदेशी कम्पनियों में निवेश की छूट दी गई हैं। वर्तमान में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश सम्बन्धी प्रतिबन्ध कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित रह गये हैं। इनका विस्तृत ब्यौरा "वर्तमान में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा" शीर्षक में इसी अध्याय में दिया गया हैं।

17.3 विदेशी निवेश के प्रकार

विदेशी निवेश के अनेक स्वरूप होते हैं। इनमें रिजर्व बैंक के माध्यम से होने वाला निवेश, विदेशी निवेश संवर्धन ब्यूरों के माध्यम से निवेश NRI's गैर प्रवासी भारतीयों द्वारा किया गया निवेश, विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम की धारा 5 के अन्तर्गत अनिवासियों द्वारा भारतीय कम्पनियों के अंशों का क्रय, विदेशी संस्थानों द्वारा निवेश, भारतीय कम्पनियों द्वारा ग्लोबल डिपोजिटरी रिसीट्स (GDRs) एवं अमेरिकन डिपोजिटरी रिसीट्स (ADRs) के माध्यम से प्राप्त राशि आदि को शामिल किया जाता हैं।

विदेशी निवेश को दो भागों में बाँटा जा सकता हैं -

(अ) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment) : प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में भारतीय रिजर्व बैंक के माध्यम से होने वाला स्वत: निवेश (RBI Automatic Route), विदेशी निवेश संवर्धन ब्यूरों अथवा SIA के माध्यम से किया गया निवेश, अनिवासी भारतीयों (NRI's) द्वारा किया गया निवेश (40% से 100% की सीमा तक) एवं विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम (FEMA) 1999 की धारा 5 के अन्तर्गत अनिवासियों (Non-residents) द्वारा भारतीयों कम्पनियों के अंशों का क्रय सम्मिलित हैं।

(ब) पोर्टफोलिया निवेश (Portfolio Investment) : पोर्टफोलियों निवेश में विदेशी संस्थागत निवेशकों (FIIs) द्वारा निवेश, भारतीय कम्पनियों द्वारा ग्लोबल डिपोजिटरी रिसीप्ट्स (Global Depository Receipts-GDRs) एवं अमेरिकन डिपोजिटरी रिसीप्ट्स (American Depository Receipts - ADRs) के माध्यम से प्राप्त राशि एवं अपतटीय कोषों एवं अन्य (Offshore funds & others) निवेश को शामिल किया गया हैं।

17.4 भारत में विदेशी निवेश की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

भारत में विदेशी निवेश की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं -

1. **विदेशी निवेश में अप्रत्याशित वृद्धि (Unprecedented Increase in Foreign Investment): -** पिछलें एक दशक में भारत में विदेशी निवेश में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। तालिका 1 से स्पष्ट हैं कि वर्ष 1990-91 में देश में कुल विदेशी निवेश मात्र 103 मिलियन अमेरिकी डॉलर था जो दो वर्ष बाद अर्थात 1992-93 में बढ़कर 559 मिलियन डॉलर हो गया। वर्ष 1993-94 एवं 1994-95 में यह बढ़कर क्रमश: 4153 मिलियन डॉलर एवं 5138 मिलियन डॉलर हो गया। वर्ष 2000-2001 में 5862 मिलियन डॉलर विदेशी निवेश हुआ जबकि वर्ष 2001-02 में 6686 मिलियन डालर का विदेशी निवेश हुआ। 2002-03 मे 4161 मिलियन डालर का विदेशी निवेश हुआ जो 2001-02 से कम रहा। बाद के वर्षो में विदेशी निवेश मे निरन्तर वृद्धि हुई हैं। 2003-04 में यह राशि 14,776 मिलियन डालर 2004-05 में 15,366 मिलियन डालर तथा 2005-06 में 20,214 मिलियन डालर रही। 2005-06 में 7,722 मिलियन डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा 12,492 मिलियन डालर का पोर्टफोलियों निवेश हुआ। 2006-07 में (दिसम्बर, 2006 तक) 10,592 मिलियन डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश व 5,177 मिलियन डालर का पोर्टफोलियों निवेश होने का अनुमान हैं।

2. **पोर्टफोलियों निवेश के अंश में भारी वृद्धि (Large Increase in the Share of Portfolio Investment): -** वर्ष 1991-92 में कुल विदेशी निवेश पोर्टफोलियों निवेश का भाग मात्र 3% था जो वर्ष 1992-93 में बढ़कर लगभग 44% एवं 1994-95 में 74% से अधिक हो गया। लेकिन वर्ष 1999-2000 एवं 2000-01 में कुल विदेशी निवेश पोर्टफोलियों निवेश का भाग घटकर क्रमश: 58.4% एवं 54.13% रह गया। वर्ष 2001-02 में कुल विदेशी निवेश में पोर्टफोलियों निवेश का हिस्सा घटकर 34.11% रह गया। वर्ष 2002-03 में यह घटकर 22.7% रह गया। लेकिन 2003-04 में इसमें भारी वृद्धि हुई। वर्ष 2003-04 में यह बढ़कर लगभग 77% हो गया। वर्ष 2004-05 में 15,366 मि. डालर का विदेशी निवेश हुआ। इसमें पोर्टफोलियों निवेश 9,315 मिलियन डालर था जो कुल निवेश का 60.6% था। 2005-06 में कुल निवेश 20,214 मिलियन डालर में प्रत्यक्ष निवेश 38.20% तथा पोर्टफोलियों निवेश 61.80% रहा। 2006-07 में (दिसम्बर 2006 तक) FDI का भाग 67.17% तथा पोर्टफोलियों निवेश का भाग 32.83% रहने का अनुमान हैं।

तालिका 1: भारत में विदेशी निवेश का प्रवाह

(मिलियन डॉलर)

वर्ष	FDI शुद्ध	FIIs निवेश	GDRs/ ADRs एवं अन्य	कुल विदेशी निवेश
1990-1991	97	0	6	103
1997-1998	3525	979	849	5353
1998-1999	2380	-390	322	2312
1999-2000	2093	2135	889	5117
2000-2001	3272	1847	743	5862
2001-2002	4734	1505	447	6686
2002-2003	3217	377	567	4161
2003-2004	3420	10918	438	14776
2004-2005	6051	8686	629	15366
2005-2006	7722	9926	2566	20214
2006-2007	10592	3249	1928	15769

(अप्रैल -दिसम्बर)

Source : Reserve Bank of India -:

FDI - प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

FIIs - विदेशी संस्थागत द्वारा किया गया निवेश।

3. **पोर्टफोलियों निवेश-सुख का साथी (Portfolio Investment - Fair weather friend) :-**पोर्टफोलियों निवेश एक "सुख के साथी" की तरह है अर्थात् राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर इसमें वृद्धि होती हैं जबकि प्रतिकूल स्थिति में इसमें भारी गिरावट

भी आ सकती हैं। उदाहरण के लिए, उदारीकरण के शुरुआती वर्षो (1992-93 से 1996-97) में भारत में पोर्टफोलियों निवेश में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 1994-95 में तो यह 3.8 अरब डालर से भी अधिक था। लेकिन 1997-98 में भारत में मात्र 1.8 अरब डालर का पोर्टफोलियों निवेश हुआ। वर्ष 1998-99 में एशियाई संकट (Asian Crisis) के कारण यह ऋणात्मक (-68 मिलियन डालर) हो गया। लेकिन दक्षिण -पूर्वी एशियाई संकट का भारतीय अर्थव्यवस्था ने सफलतापूर्वक सामना किया। परिणामस्वरूप 1999-2000 में यह पुन: बढ़कर अपने पुराने स्तर पर आ गया। लेकिन बाद के वर्षों मे इसमें पुन: कमी आयी। 2002-03 में पोर्टफोलियों निवेश मात्र 944 मिलियन डालर रह गया जो कुल विदेशी निवेश का मात्र 22.69% था। 2003-04 में इसमें भारी वृद्धि हुई तथा यह बढ़कर लगभग 77% हो गया। 2004-05 में पोर्टफोलियों निवेश कुल निवेश का 60.6% तथा 2005-06 में 61.80% रहा। 2006-07 में (दिसम्बर 2006 तक) पोर्टफोलियों निवेश कुल निवेश का 32.83 रहने का अनुमान हैं। स्पष्ट है इसमें अत्यधिक उतार चढ़ाव रहें हैं। सुख एवं प्रगति के समय इसमें वृद्धि हो जाती है तथा संकटकाल में विदेशी संस्थायें कम निवेश करती हैं जिससे इसमें कमी आ जाती हैं।

4. **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में उतार-चढ़ाव (Fluctuating Foreign Direct Investment): -**प्रत्यक्ष विदेशी निवेश मे भी उतार-चढ़ाव देखा गया हैं। 1997-98 मे यह 3.52 अरब डालर के उच्च शिखर पर पहुँचने के बाद धीरे-धीरे घटकर 1999-2000 में 2.09 अरब डालर रह गया। 2000-01 में इसमें पुन: वृद्धि हुई। 2001-02 में प्रत्यक्ष निवेश बढ़कर 4,734 अरब डालर हो गया। 2002-03 व 2003-04 में इसमें पुन: गिरावट आयी। 2004-05 में FDIs में पुन: वृद्धि हुई। 2005-06 में FDIs की राशि 7,722 अरब डालर रही। 2006-07 में (दिसम्बर, 2006 तक) FDI राशि 10,592 अरब डालर रही। जो कुल विदेशी निवेश की 67.17 थी।

5. **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के स्त्रोत (Sources of FDIs):** 1990 के दशक से भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के स्त्रोतों में कुल मिलाकर कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया हैं। 2000-01 से भारत में FDI का मुख्य स्त्रोत मॉरीशस तथा अमेरिका में पंजीकृत कम्पनियाँ थी। इसके अलावा जापान एवं जर्मनी की कम्पनियों का भी FDIs में विशेष योगदान रहा हैं।

6. **विदेशी निवेश का स्वरूप (Form of Foreign Investment): -** विदेशी निवेश के स्वरूप में भी बदलाव हो रहा है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में अंशों में निवेश अधिक रहा है जबकि पोर्टफोलियों निवेश में FII निवेश की मात्रा अधिक रही हैं। इसे निम्नलिखित तालिका से देखा जा सकता हैं।

भारत में विदेशी निवेश का स्वरूप

(मिलियन डालर में)

मद		2003-04	2004-05	2005-06(P)	2006-07(upto Dec.)
A.	प्रत्यक्ष निवेश (I+II+III)	4,322	6,051	7,722	10,592

I.	अंशों में (a+b+c+d+e)	2,229	3,778	5,820	9,513
a.	सरकारी	928	1,062	1,126	1,344
b.	रिजर्व बैंक	534	1,258	2,233	6,211
c.	अनिवासी भारतीय	-	-	-	-
d.	अंशों का अधिग्रहण	735	930	2,181	1,718
e.	गैर निगमित संस्थाओं की अंश पूँजी	32	528	280	240
I.	पुर्नविनियोग आय	1,460	1,904	1,676	944
I.	अन्य पूँजी	633	369	226	135
B.	पोर्ट फोलियो विनियोग (a+b+c)	11,377	9,315	12,492	5,177
a.	GDRs/ADRs	459	613		1,928
b.	विदेशी संस्थागत निवेश	10,918	8,686	9,926	3,249
c.	अपतटीय कोष व अन्य	-	16	14	-
	कुल A+B	15,699	15,366	20,214	15,769

7. **विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों के क्षेत्र (Sectors of FDIs): -** प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अधिकांश राशि विद्युत उपस्कर जैसे कम्प्यूटर हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर, इंजीनियरिंग उद्योगों, इलेक्ट्रोनिक्स एवं विद्युत उपकरण, सेवा क्षेत्र (वित्तीय एवं गैर वित्तीय) रसायन एवं सम्बद्ध उत्पादों तथा खाद्य एवं डेयरी उत्पादों के क्षेत्र में निवेश की गई। विगत वर्षो में भारत में FDIs की दिशा को निम्न तालिका में दर्शाया गया हैं -

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित करने वाले क्षेत्र

मिलियन डालर में

	क्षेत्र	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07 अ.प्रे. सित.	1991 से 2006 सित. 06 तक कुल
1.	विद्युत उपस्कर (कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर और इलेक्ट्रोनिक सहित।)	532	721	1451	778	6272
2.	सेवा क्षेत्र (वित्तीय एवं गैर वित्तीय)	269	469	581	1509	4600
3.	दूरसंचार	116	129	680	405	3776
4.	परिवहन उद्योग	308	179	222	259	3436

5.	ईधन	113	166	94	138	2720
6.	रसायन	20	198	447	95	2238
7.	खाद्य प्रसंस्करण उद्योग	111	38	42	33	1212
8.	औषद्यि एवं औषद्यि भेषज	109	292	172	48	1055
9.	धातुकर्म उद्योग	32	192	153	111	766
10.	सीमेन्ट और जिप्सम उत्पाद	10	0	452	21	768

Source- Eco. Survey 2006-07 P.153

तालिका से स्पष्ट है कि अब तक विद्युत उपस्कर क्षेत्र मे सर्वाधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश हुआ हैं। इसके बाद वित्तीय एवं गैर वित्तीय सेवा, दूर संचार, परिवहन उद्योग, ईधन, रसायन, खाद्य प्रसंस्करण, औषधि, धातुकर्म उद्योग, सीमेन्ट व जिप्सम आदि का स्थान हैं।

सबसे अधिक विदेशी निवेश को आकर्षित करने वाले राज्यों मे दिल्ली, उ. प्र, और हरियाणा प्रमुख है। यही कुल निवेश का लगभग 24% भाग (6053 मिलियन अमेरिकी डालर) निवेश हुआ हैं। इसके बाद महाराष्ट्र दादरा और नागर हवेली, दमन और दीव का भाग 21.52% रहा हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी प्रत्यक्ष निवेश आकर्षित करने वाले अन्य राज्यों में बैंगलौर, चेन्नई तथा हैदराबाद शहर आते हैं।

8. **घरेलू निवेश का सम्पुरक (As a means to Supplement Domestic Investment): -** आर्थिक विकास के उच्च स्तर को प्राप्त करने के लिए FDIs को घरेलू निवेश के सम्पूरक के रूप में माना जाता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश घरेलू उद्योगों एवं भारतीय उपभोक्ताओं को निम्नांकित रूप में लाभान्वित करता हैं।

(i) तकनीकी उन्नयन के अवसर प्रदान करना,

(ii) विश्वस्तरीय प्रबन्धकीय चातुर्य एवं कुशलता तक पहुँच बढ़ाना,

(iii) मानवीय व प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग,

(iv) भारतीय उद्योगों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक बनाना,

(v) निर्यात बाजारों का विस्तार,

(vi) पश्चगामी एवं अग्रगामी सहयोजन (Backward and Forward Linkages) प्रदान करना, एवं

(vii) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की वस्तुएँ व सेवाएँ प्रदान करना।

17.5 भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मूल्यांकन

वर्ष 1991 से सत्तारूढ़ विभिन्न दलों की सरकारें भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) में वृद्धि के लिए प्रयत्नशील रही हैं। इनके प्रयासों से ही भारत मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बढ़ा हैं। वर्ष 1985-90 के दौरान भारत में FDI का वार्षिक औसत मात्र 250 मिलियन डॉलर था।

निःसन्देह यह एक दयनीय स्थिति थी। 1991 में उदारीकरण की शुरूआत के बाद FDI में व्यापक वृद्धि हुई। तथा 1997-98 में यह 3.53 अरब डालर के शिखर तक पहुँच गया। लेकिन उसके बाद इसमें गिरावट आयी तब वर्ष 1999-2000 में FDI की राशि घटकर केवल 2.09 अरब डॉलर रह गयी। वर्ष 2001-02 में FDI की राशि 4.73 अरब डॉलर रही लेकिन इसके बाद FDI के अन्तर्वाहों में गिरावट आयी। भारत में FDI की स्थिति अन्य विकासशील देशों की तुलना में भी अच्छी नहीं हैं। निम्न तालिका में चुनिन्दा एशियाई विकासशील देशों में FDI की स्थिति को दर्शाया गया हैं। इस तालिका से ज्ञात होता हैं कि वर्ष 2002 एवं 2003 में विश्व के कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में भारत का हिस्सा मात्रा क्रमश: 0.5% एवं 0.8% क्रमश: था जबकि चीन में यह क्रमश: 7.8% एवं 9.6% था। वर्ष 2006 में चीन में जहाँ FDI का कुल अन्तर्वाह 70 अरब डालर था वहाँ भारत मे मात्र 9.5 अरब डालर था। दूसरे शब्दों में, 2006 में भारत की तुलना में चीन में FDI का अन्तर्वाह लगभग 7.34 गुना अधिक था।

वर्ष 2006 में विश्व व्यापी FDI अन्तर्वाहों (World FDI inflows) के योग का लगभग 27.2% राशि विकासशील देशों में विनियोजित हुई। FDI की दृष्टि से भारत चीन की तुलना में बहुत पीछे है लेकिन इसके प्रतिशत भाग में पिछले कुछ वर्षो में बढ़ोतरी हुई हैं।

चुनिन्दा एशियाई विकासशील देशों में FDI अन्तर्वाह की स्थिति (अरब डालर में)

देश	2002	2003	2004	2005	2006
1. चीन	52.74	53.51	60.63	72.42	70
2. हांगकांग	9.68	13.56	34.03	35.90	41
3. भारत	3.45	4.27	5.47	6.6	9.5
4. कोरिया	2.94	3.75	7.7	7.2	0.5
5. मलेशिया	3.20	2.47	4.6	4.0	3.9
6. सिंगापुर	5.73	11.41	14.82	20.08	31.9
7. विकासशील देश	157.61	172.03	275	7334	368
8. विश्व	678.75	559.58	710.75	916.28	1230

Source: World Investment Report 2006, UNCTAD

17.6 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में अन्य देशों की तुलन में कमी के कारण

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भारत में FDI के अंतर्गत में अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। अन्य देशों की तुलना में भारत में FDI का अन्तर्वाह कम होने के अनेक कारण रहे हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नांकित हैं -

(1) **निर्यात क्षेत्र की उपेक्षा -** चीन तथा अन्य पूर्वी एशियाई देशों सहित अनेक विकासशील देशों में FDI का अधिकांश भाग निर्यात अभिमुख (Export-Oriented) निर्माण उद्योगों में विनियोजित हुआ है तथा ये उद्योग विश्वबाजार में अपना माल बेचते हैं। निम्न-लागत पर अकुशल एवं अर्द्ध-कुशल श्रमिकों की बड़े पैमाने पर उपलब्धता के बावजूद भारत इस प्रकार के FDI को आकर्षित करने में असफल रहा हैं। इसके अनेक कारण रहें हैं जैसे-हमारी विदेशी व्यापार नीतियों में निर्यात के प्रति झुकाव की कमी (anti-exports bias), अनावश्यक एवं सख्त श्रम कानून, लद्यु उद्योग इकाईयों (SSIs)के आरक्षण की नीति, आर्थिक सरंचना की कमियाँ (विशेषत: ऊर्जा बन्दरगाह सड़क एवं रेल यातायात) एवं धीमी एवं बोझिल प्रशासनिक प्रक्रिया।

(2) **आर्थिक संरचना (Infrastructure) -**जिन देशों में FDI का व्यापक पैमाने पर अन्तर्वाह हुआ हैं, उन देशों ने ऊर्जा सहित आर्थिक संरचना के क्षेत्र में FDI को आकर्षित किया हैं। भारत को इसमें भी सीमित सफलता मिल पायी है। इसके अनेक कारण रहे हैं जैसे: कमजोर नियामक एवं नीति-ढांचा (Weak regulatory-cum policy framework) विशेषत: आर्थिक संरक्षण क्षेत्र में कीमत-निर्धारण एवं विनियोग निर्णय के सम्बन्ध में। इससे FDI तथा निजी घरेलू निवेश हतोत्साहित हुआ हैं। विद्युत क्षेत्र में कोई भी नियोजक निवेश नहीं करना चाहता हैं क्योंकि यहाँ उपभोक्ताओं का एक बड़ा भाग बिलों का सही भुगतान नहीं करता हैं।

(3) **विदेशी समता पूँजी की सीमा -** कुछ क्षेत्रों में हमारी नीतियों ने FDI को हतोत्साहित किया है। उदाहरण के लिए, विदेशी समता पूँजी (Foreign equity holding) की सीमा निर्धारित करने के कारण दूरसंचार, वायु-परिवहन, बैंकिंग एवं बीमा क्षेत्र में FDI का अपेक्षित अन्तप्रवाह नहीं हुआ। अब इन्हें अधिक खोला गया हैं।

(4) **सरकारी वचनबद्धता एवं विश्वसनीयता का अभाव: -** भारत में सरकारी वचनबद्धता एवं विश्वसनीयता के अभाव में FDI हतोत्साहित होने के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। उदाहरण के लिए टाटा-सिंगापुर एयरलाइन्स एवं बैंगलौर अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे का प्रस्ताव।

(5) **उच्च 'सौदा लागतें' -** इस तरह की अनेक खबरें छपती रहती हैं कि भारत में अनेक विदेशी विनियोक्ता व्यवसाय नहीं करना चाहतें क्योंकि यहाँ सम्पादन अथवा "सौदा लागते" (Transactions costs) बहुत ऊँची हैं।

(6) **अन्य कारण -** अन्य अनेक कारण हैं जिनसे घरेलू निवेश में वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ा हैं। उदाहरणार्थ, आर्थिक सुधारों की धीमी गति, बढ़ता हुआ राजकोषीय घाटा, गठबंधन राजनीति की अनिश्चितताएँ, कमजोर आर्थिक ढांचा एवं वर्ष 2000 के बाद विश्वव्यापी मंदी। इन सबका भी FDI पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ा है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हैं कि भारत में FDI के अन्तर्वाह में अनेक बाधाएँ हैं। जब तक इन बाधाओं को दूर नहीं किया जाता है प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में अपेक्षित सफलता मिलना कठिन हैं। सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सकें ताकि देश में FDI के अन्तर्वाह में वृद्धि हो सके।

17.7 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने हेतु सरकारी प्रयास

भारत सरकार ने FDI को आकर्षित करने हेतु अनेक उपाय किये हैं।

1. **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का स्वचालित मार्ग (Automatic Route for FDI): -** एक छोटी ऋणात्मक सूची को छोड़कर सरकार ने विभिन्न गतिविधियों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए स्वचालित मार्ग की अनुमति दी हैं। इसके अन्तर्गत विदेशी निवेशकों को अपना निवेश लाने के 30 दिन के अन्दर तथा यदि अंश निर्गमित किये जाते हों तो उनके निर्गमन के 30 दिन के अन्दर भारतीय रिजर्व बैंक को इसकी केवल सूचना मात्र देनी होती हैं।

2. **गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ : -** गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ (NBFCs) यदि नियन्त्रक कम्पनियाँ (Holding Companies) हैं तो वे समता पूँजी में शत-प्रतिशत विदेशी भागीदारी रख सकेंगी।

3. **संचालक सहायक कम्पनियों की स्थापना -** विदेशी निवेशक शत-प्रतिशत संचालक सहायक कम्पनियों की स्थापना कर सकेंगे। इन सहायक कम्पनियों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा तथा भारतीय शाखा (Indian Entity) में इनकी 25% पूँजी के विनिवेश की शर्ते भी लागू नहीं होगी।

4. **निजी बैंकिंग क्षेत्र -** निजी बैंकिंग क्षेत्र में स्वचालित मार्ग के अन्तर्गत सभी स्रोतों से 74% तक की FDI की अनुमति दी गई हैं लेकिन इस सम्बन्ध में RBI के दिशानिर्देश की पालना करना आवश्यक होगा।

5. **नीतिगत परिवर्तन -** FDI की नीति के उदारीकरण की प्रक्रिया में निम्नांकित नीतिगत परिवर्तन किये गये हैं-

(i) व्यवसाय से व्यवसाय (Business to Business) ई, कॉमर्स (E. Commerce) में शत-प्रतिशत FDI की

(ii) अनुमति

(iii) 22 उपभोक्ता वस्तुओं पर लागू लाभांश सन्तुलन (Dividend Balancing) की शर्त का समापन,

(iv) ऊर्जा क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमा को हटाना, एवं

(v) तेल परिशोधन में 100% FDI की अनुमति।

6. **सूचना तकनीकी क्षेत्र -** सूचना तकनीकी क्षेत्र में विदेशी निवेश प्रस्तावों के लिए स्वचालित मार्ग उपलब्ध कराया गया हैं।

7. **विशेष आर्थिक क्षेत्र -** विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) में की जाने वाली सभी निर्माणी गतिविधियों (निम्नांकित को छोड़कर) में स्वचालित मार्ग के द्वारा शत प्रतिशत FDI की अनुमति दी गई हैं-

(i) हथियार एवं गोला'बारूद, विस्फोटक एवं सुरक्षा उपकरणों से सम्बन्धित सम्बद्ध मदें, सैनिक वायुयान एवं

(ii) युद्धपोत

(iii) आणविक पदार्थ,

(iv) मापक एवं हानिकारक रसायन

(v) मदिरा आसवन एवं किण्वन (Distillation & Brewing of Alcoholic Drinks)एवं

(vi) सिगरेट/सिगार एवं निर्मित तम्बाकू स्थानापन्न वस्तुएँ।

8. **दूरसंचार क्षेत्र -** दूरसंचार क्षेत्र में अग्रांकित गतिविधियों के लिए कुछ शर्तों के साथ, 100% FDI की अनुमति दी गई हैं।

(i) ISPs (Internet Service Providers),

(ii) इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रोवाइडर्स (Infrastructure Providers).

(iii) इलेक्ट्रोनिक मेल (E-mail), एवं

(iv) वॉइस मेल (Voice mail)।

9. **बीमा क्षेत्र -** बीमा अधिनियम 1999 के प्रावधानों के अनुसार बीमा क्षेत्र में स्वचालित मार्ग के अन्तर्गत 26% तक की FDI भागीदारी की अनुमति दी गई हैं। लेकिन इसके लिए बीमा नियामक एवं विकास अधिकरण (Insurance Regulatory & Development Authority)से लाइसेंस लेना होगा।

10. **हवाई अड्डों -** हवाई अड्डों में 100% FDI की अनुमति दी गई हैं। लेकिन इस क्षेत्र में 74% से अधिक FDI के लिए सरकार से पूर्वानुमति लेनी होगी।

11. **कूरियर सेवाएँ -** कूरियर सेवाओं में 100% FDI की अनुमति दी गई हैं। लेकिन इस सम्बन्ध में वर्तमान कानूनों के अन्तर्गत सरकार से पूर्वानुमति लेनी होगी।

12. **निर्माण गतिविधियाँ -** सरकार की पूर्वानुमति से स्वीकृत टाउनशिप के विकास (आवास,व्यवसायिक परिसर,होटल, रिसोर्टस सहित) क्षेत्रीय एवं नगरीय सुविधाओं, जैसे सड़कों पुलों आदि के निर्माण एवं स्थावर सम्पत्ति के वाणिज्यिक विकास हेतु 100% FDI की अनुमति दी गई हैं।

13. **सुरक्षा उद्योग क्षेत्र -** सुरक्षा उद्योग क्षेत्र में भारतीय निजी क्षेत्र की 100% भागीदारी की अनुमति दी गई है तथा इसमें 26% तक FDI की अनुमति होगी। लेकिन इन दोनों के लिए लाइसेंस लेना होगा।

17.8 2001 में योजना आयोग द्वारा गठित समिति की सिफारिशें

भारत में FDI सम्बन्धी नीतियों में उदारीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत योजना आयोग ने अगस्त 2001 में FDI के लिए एक स्टींयरिंग कमेटी **(Steering Committee on FDI)** स्थापित की थी। इस समिति की सिफारिशों में प्रमुख सिफारिशें निम्नांकित हैं -

(1) विदेशी निवेश प्रोत्साहन कानून (Foreign Investment Promotion Law) का अधिनियमन (enactment) किया जाये तथा इससे FDI को प्रोत्साहित करने हेतु आवश्यक पहलुओं को एकीकृत किया जाए।

(2) आधार संरचना (Infrastructure) में निवेश वृद्धि करने एवं आधार संरचना के उत्पादन में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए राज्य सरकारें आधार संरचना हेतु विशेष निवेश कानून (Special investment law) का अधिनियमन करें।

(3) क्रियान्वयन प्रक्रिया में शीघ्रता हेतु केन्द्रीय-स्तर पर किये जाने वाले अनुमोदन एंव पंजीकरण की प्रारम्भिक स्वीकृति के लिए विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड (FIPB) को अधिकृत किया जाये।

(4) प्रशासनिक एवं नीति सम्बन्धी अनुमोदन को शीघ्र सम्पादित करने हेतु विदेशी निवेश क्रियान्वयन अधिकरण (Foreign Investment Implementation Authority - FIIA) को अधिकार दिये जायें।

(5) उत्तरदायित्व बढ़ाने के लिए दसवीं पंचवर्षीय योजना में FDI के लक्ष्यों को क्षेत्रवार, विभिन्न प्रशासनिक मंत्रालयों/विभागों में बाँटा जाए।

(6) FDI के लिए क्षेत्रवार सीमाओं तथा शुरुआती बाधाओं को समाप्त किया जाए। सभी प्रकार की निर्माणी (Manufacturing) एवं खनन गतिविधियों (सुरक्षा के अलावा) पर लागू FDI की सीमा को समाप्त किया जाए। विज्ञापन, निजी बैंकों एवं स्थावर सम्पत्ति (Real estate) में FDI की सीमा को समाप्त किया जाए तथा दूरसंचार, वायु सेवा, प्रसारण (Broad Casting), बीमा एवं बागवानी (Plantation) (चाय के अलावा) क्षेत्र में FDI की सीमा में वृद्धि की जाए।

(7) कानून, नियम तथा प्रक्रियाओं के सरलीकरण एवं चीन द्वारा अपनाई पद्धति के अनुरूप प्रशासनिक बाधाओं को दूर करे के लिए SEZs को निर्यात प्रेरित FDI के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा बनाया जाए।

(8) अधिक मात्रा में FDI आकर्षित करने हेतु ऊर्जा, शहरी आधार संरचना एवं स्थावर सम्पत्ति सम्बन्धी घरेलू नीति में सुधार लागू किए जाएं एवं विनियंत्रण एवं लाइसेंस मुक्ति (de-control/de-licensing) की नीति को लागू किया जाए।

17.9 वर्तमान में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा

बढ़ते हुए उदारीकरण के साथ, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर अंश सीमा केवल सीमित क्षेत्रों पर ही हैं। ये क्षेत्र हैं, एफएम रेडियों प्रसारण (20 प्रतिशत तक) बीमा, रक्षा, उत्पादन, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में पेट्रोलियम शोधन, समाचारों और ताजा घटनाओं को कवर करने वाले प्रिंट एवं इलैक्ट्रॉनिक मीडिया (26 प्रतिशत तक) विमान परिवहन सेवाएं, परिसम्पत्तियाँ पुनर्निर्माणकारी कम्पनियाँ, केवल नेटवर्क, डायरेक्ट टू होम' (डीटीएच) 'अप लिंकिंग के लिए हार्डवेयर, एचयूबी, आदि (49 प्रतिशत तक) सिंगल ब्रांड रिटेलिंग (51 प्रतिशत तक), आणविक खनिज, प्राइवेट सेक्टर बैंकिंग, दूर-संचार सेवाएं, उपग्रहों की स्थापना और प्रचालन (74 प्रतिशत तक)। सिंगल ब्रांड के उत्पादों की खुदरा बिक्री को छोड़कर खुदरा व्यापार, जुआ खेलना और शर्त लगाना, लॉटरी और आणविक ऊर्जा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्रतिबंधित हैं। ऐसी मदों के विनिर्माण के लिए जो लघु-उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित हैं, 25 प्रतिशत से अधिक की ईक्विटी को उपयोग में लाने के लिए प्रस्तावों का अनुमोदन और ऐसे प्रस्ताव जिसमें विदेशी निवेशक का उसी क्षेत्र के क्रियाकलाप में विद्यमान संयुक्त उद्यम/तकनीकी सहयोग/ट्रेडमार्क करार है और प्रेस विज्ञप्ति (श्रृंखला

2005) के उपबंध लागू होने से संबंधित हैं, स्वचालित मार्ग के अंतर्गत कवर नहीं हैं । 23 मार्च, 2007 को दूर संचार क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बढ़ कर 74% कर दिया गया हैं।

17.10 वर्तमान में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए नीतिगत पहल - 2006

पहले ही प्रभावित हो चुके उदारीकरण को समन्वित करने और विभिन्न क्रियाकलापों को शासित करने वाली प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नीति को युक्तिसंगत बनाने के लिए 10 फरवरी, 2006 को वर्ष 2006-07 के दौरान प्रत्यक्ष विदेशी नीति की व्यापक समीक्षा की गयी थी। इसमें प्रमुख नीतिगत पहलु निम्न हैं: -

(1) **मार्ग में परिवर्तन:-** निम्नलिखित के लिए स्वचालित रूट के तहत 100 प्रतिशत एफ डी आई की अनुमति प्रदान की गई हैं, पेय अल्कोहल का आसवन और किण्वासन, औद्योगिक विस्फोटकों का निर्माण, हानिकारक रसायनों का निर्माण, आई डी आर (अधिनियम) 1951 के तहत औद्योगिक लाइसेंस की अपेक्षा वाले मानक शहरी क्षेत्र सीमाओं के 25 कि. मी. में स्थित विनिर्माण क्रियाकलाप, ग्रीनफील्ड हवाई पत्तन परियोजनाएं स्थापित करना, प्राकृतिक गैस/एल एन जी पाइपलाइनें बिछाना, मार्केट अध्ययन और पेट्रोलियम क्षेत्र में निवेश वित्त पोषण, और नकद तथा थोक व्यापार और निर्यात व्यापार करना।

(2) **इक्विटी सीमा में वृद्धि -** देशीय खपत के लिए कोयला और लिग्नाइट खनन, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस क्षेत्र में विपणन के लिए अवस्थापना स्थापित करने और हीरों और कीमती पत्थरों के अन्वेषण और खनन में स्व: चालित मार्ग लागू कर दिया गया हैं। इनमें FDI सीमा बढ़ाकर 100% कर दी गई हैं।

(3) **नए क्रियाकलापों में एफ डी आई: -** विद्युत व्यापार और उसकी प्रक्रिया एवं कॉफी और रबड़ के भण्डारण में स्व: चालित मार्ग में 100 प्रतिशत तक एफ डी आई की स्वीकृति प्रदान कर दी गई हैं। एकल ब्राण्ड उत्पाद के खुदरा व्यापार (जिसमें सरकार की पूर्व अनुमति की आवश्यकता हैं।) में भी 51 प्रतिशत एफ डी आई की अनुमति प्रदान की गई हैं एकल 'ब्राण्ड' उत्पादन खुदरा व्यापार के लिए एफ डी आई को शासित करने वाले विनिर्दिष्ट दिशा निर्देश जारी कर दिए गए हैं।

(4) **प्रतिबंधात्मक शर्तें हटाना: -** बी 2 बी, ई-कामर्स के लिए अनिवार्य विनिवेश शर्तें समाप्त कर दी गई हैं।

(5) **प्रक्रिया सरलीकरण:-** एक विद्यमान कम्पनी में शेयरों के अधिग्रहण सहित एक निवासी से अनिवासी को शेयरों का हस्तांतरण स्वत: चालित मार्ग पर रख दिया गया है बशर्ते कि वह एफ. डी. आई. क्षेत्रक नीति के अनुसार हो।

विदेशी निधियों और तकनीकी जानकारी द्वारा नकद फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए फरवरी, 2006 से कृषि और पौधारोपण को एफ डी आई के लिए निषिद्ध क्षेत्र की सूची से हटा दिया गया था और इन क्षेत्रों में स्वीकृत क्रियाकलापों को क्षेत्र विशिष्ट नीति में शामिल कर दिया गया था। मौजूदा नीति के अनुसार कृषि और संबंधित क्षेत्रों से संबंधित नियंत्रित शर्तों और सेवाओं के अन्तर्गत स्वत: चालित मार्ग के तहत इनमें 100 एफ डी आई स्वीकृत हैं: - पुष्पकृषि, बागवानी, बीजों का विकास, पशु पालन, मत्स्य पालन, सब्जियों और खुम्बी की खेतीं चाय पौध

रोपण में सरकार की पूर्व अनुमति से 100 प्रतिशत एफ डी आई की अनुमति है बशर्ते कि पांच वर्ष की अवधि के दौरान कम्पनी की इक्विटी का 26 प्रतिशत किसी भारतीय भागीदार/भारतीय जन सामान्य के पक्ष में विनिवेश किया जाता है और भविष्य में यदि भूमि उपयोग में परिवर्तन हो तो संबंधित राज्य सरकार की पूर्व अनुमति अपेक्षित हैं। इन दो के अलावा किसी अन्य कृषि क्षेत्र अथवा क्रियाकलाप में FDI की अनुमति नहीं हैं।

17.11 सारांश

भारत के तीव्र आर्थिक विकास के लिए पूँजी की आवश्यकता हैं। 1991 की औद्योगिक नीति में उदारीकरण को अपनाया गया। इस नीति के तहत विदेशी पूँजी एवं प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के आगमन पर लगे अनेक प्रतिबन्ध हटायें गये तथा अनेक क्षेत्र में विदेशी निवेश की अनुमति दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश व पोर्टफोलियों निवेश में तेजी से वृद्धि हुई। एशियाई संकट से कुशलतापूर्वक निपटने तथा विदेशी निवेश के सम्बन्ध में और अधिक उदार नीति अपनाने के कारण भारत में विदेशी निवेश तेजी से बढ़ा हैं। लेकिन एशिया के अन्य देशों जैसे चीन, हांगकांग, सिंगापुर आदि से तुलना करें तो इन देशों की तुलना में भारत में विदेशी निवेश कम हुआ है अर्थात हम प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं कर पायें हैं। इसके लिए सरकार ने अनेक प्रयास किये हैं। 2001 में योजना आयोग द्वारा गठित समिति की सिफारिशों को लागू किया गया हैं। विदेशी निवेश के सम्बन्ध में निर्धारित सीमा में और छूट दी गई है तथा 2006 में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए कुछ नीतिगत पहल की गई हैं।

17.12 शब्दावली

फेरा (FERA): - इसका पूरा नाम "विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम" (Foreign Exchange Regulation Act) हैं। यह विदेशी विनिमय की मात्रा व दिशा को नियंत्रित व नियमित करने के लिए बनाया गया था।

फेमा (FEMA): - इसका पूरा नाम "विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम" (Foreign Exchange Management Act) हैं। यह 1999 में "फेरा" के स्थान पर बनाया गया हैं। यह फेरा से अधिक व्यापक एवं उदार हैं।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI): - इसमें भारतीय रिजर्व बैंक के माध्यम से होने वाला स्वत: निवेश, विदेशी निवेश संवर्द्धन ब्यूरों अथवा SIA के माध्यम से किया गया निवेश, NRI's द्वारा निवेश एवं फेमा की धारा 5 के अन्तर्गत अनिवासियों द्वारा भारतीय कम्पनियों के अंशों का क्रय शामिल हैं।

पोर्टफोलियों निवेश (Portfolio Investment): - इसमें विदेशी संस्थागत निवेश, भारतीय कम्पनियों द्वारा ग्लोबल डिपोजिटरी रिसीट्स (GDRs)एवं अमेरिकन डिपोजिटरी रिसीट्स (ADRs) के माध्यम से प्राप्त राशि तथा अपतटीय कोषों एवं अन्य निवेश को शामिल किया जाता हैं।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का स्वचालित मार्ग (Automatic Route for FDI): - स्वचालित मार्ग से निवेश के अन्तर्गत विदेशी निवेशक को निवेश लाने के 30 दिन में तथा यदि

अंश निर्गमित किये हों तो निर्गमन के 30 दिन में रिजर्व बैंक को इसकी केवल सूचना देनी होती है और किसी प्रकार की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती हैं।

17.13 स्वपरख प्रश्न

1. भारत में विदेशी निवेश एवं उसके नियमन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. भारत में विदेशी निवेश की मुख्य प्रवृत्ति क्या हैं? प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित करने हेतु सरकार द्वारा की गयी पहल को स्पष्ट कीजिए।
3. भारत में FDIs की स्थिति का मूल्यांकन कीजिये।
4. भारत में तुलनात्मक रूप से कम FDIs आने के कारण स्पष्ट कीजिए।
5. भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए 2006 में की गयी नीतिगत पहल का वर्णन कीजिए।
6. 2001 में योजना आयोग द्वारा भारत में विदेशी निवेश के लिए गठित समिति की सिफारिशें लिखिये।
7. भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए सरकार द्वारा किये गये प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

इकाई-18

विश्व व्यापार संगठन एव भारत

(World Trade Organisation and India)

इकाई की रूपरेखा

18.1 उद्देश्य

18.2 प्रस्तावना

18.3 विश्व व्यापार संगठन की स्थापना एंव उद्देश्य

18.4 विश्व व्यापार संगठन के कार्य

18.5 विश्व व्यापार संगठन का संगठनात्मक ढाँचा

18.6 विश्व व्यापार संगठन एवं भारत

18.7 सारांश

18.8 शब्दावली

18.9 स्व-परख प्रश्न

18.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के उद्देश्य एवं कार्यो के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- विश्व व्यापार संगठन के ढ़ाँचे के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगें।
- विश्व व्यापार संगठन से भारत को प्राप्त होने वाले लाभों एवं खतरों के बारे में समझ विकसित कर सकेंगें

18.2 प्रस्तावना

विश्व व्यापार संगठन 1 जनवरी 1995 को अस्तित्व में आया। यह विश्व व्यापार के क्षेत्र में सर्वाधिक शक्तिशाली एवं वैधानिक संगठन हैं। इसकी स्थापना से विश्व व्यापार के नियंत्रण एवं नियमन हेतु एक वैधानिक नियामक संस्था अस्तित्व में आ गयी हैं। विश्व व्यापार के क्षेत्र में विश्व व्यापार संगठन एक अति महत्त्वपूर्ण संस्था हैं, इसलिए इसके बारे में वाणिज्य के विद्यार्थियों को विस्तृत ज्ञान होना आवश्यक हैं। हम इस अध्याय में विश्व व्यापार संगठन, के उद्देश्य कार्य एवं संगठनात्मक ढांचे के बारे में अध्ययन करेंगें। इसके अलावा इस अध्याय में हम भारत के विशेष संदर्भ में विश्व व्यापार संगठन का भी अध्ययन करेंगें।

18.3 विश्व व्यापार संगठन की स्थापना एवं उद्देश्य

(Establishment and objectives of W.T.O.)

द्वितीय युद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को निर्बाध गति से बढाने के लिए 1947 में 23 देशों ने प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी सामान्य समझौते (General Agreement on

Tariffs and Trade - GATT) पर हस्ताक्षर किये और उसके पश्चात् 1948 में गैट (GATT) विधिवत् रूप से अस्तित्व में आ गया। भारत गैट के संस्थापक सदस्यों में से एक था। 1994 में उसकी सदस्य संख्या 118 तक पहुँच गयी थी। गैट का मुख्य उद्देश्य प्रशुल्क दरों तथा मात्रात्मक प्रतिबन्धों में कमी करके सदस्य देशों की संरक्षणात्मक नीतियों को हतोत्साहित करना और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देना था। दूसरे शब्दों में गैट वस्तु व्यापार में प्रतिस्पर्धा को सुनिश्चित करने के लिए व्यापार अवरोधकों (Trade barriers) की समाप्ति अथवा कम करने के उद्देश्य की प्राप्ति में निरन्तर प्रयत्नशील रहा। गैट के तत्वावधान में व्यापार की रूकावटों को कम करने के लिए आयोज्य वार्ताओं के आठ दौर (Rounds) हुए। वार्ता का आठवाँ और अन्तिम दौर 1986 - 1994 के बीच युरूग्याय (सामान्य बोलचाल में युरूग्वे भी बोला जाता हैं) में हुआ जिसे युरूग्याय दौर (Urugvay round) कहा जाता हैं। वार्ताओं के इन सभी दौर में कई व्यापारिक प्रतिबन्धों को समाप्त किया गया। कई वस्तुओं के व्यापार को सरल बनाया गया तथा कई मात्रात्मक प्रतिबन्ध समाप्त किये गये। सबसे लम्बा, और कठिन दौर आठवाँ था जो आठ वर्ष तक चलता रहा। इस दौर में विकसित एंव विकासशील देशों के बीच व्यापार से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों पर गहरे मतभेद उभर कर आये। इन मतभेदों को सुलझाने के उद्देश्य से गैट के तत्कालीन महानिदेशक आर्थर डंकल ने एक प्रस्ताव अन्तिम प्रस्तुत किया जिसे 'डंकल प्रस्ताव (Dunckle Draft) का नाम दिया गया। डंकल प्रस्ताव में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की बात सम्मिलित थी। डंकल प्रस्ताव पर गैट के सभी सदस्य देशों ने हस्ताक्षर कर दिये। यद्यपि डंकल प्रस्ताव के कई अंश विकासशील देशों के खिलाफ थे और उनके द्वारा उसका काफी विरोध भी हुआ, किन्तु विकसित देशों (विशेषकर अमेरिका) के दबाव में आकर विकासशील देशों ने अन्ततः 15 अप्रैल, 1994 को इस पर हस्ताक्षर कर दिये। भारत ने भी विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना से सम्बन्धित समझौते पर अपनी सहमति प्रदान कर 30 दिसम्बर, 1994 को हस्ताक्षर कर दिये। इस प्रकार 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन विधिवत् रूप से अस्तित्व मे आ गया और इसी के साथ एक विश्वव्यापी आर्थिक एवं व्यापारिक सहयोग के नये युग की शुरूआत हो गयी।

विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य (Objectives of WTO): विश्व व्यापार संगठन के निम्नांकित उद्देश्य हैं:

1. विश्व व्यापार की नवीन प्रणाली (New world trade system) को लागू करना।
2. सदस्य देशों मे वास्तविक आय एवं प्रभावी माँग में सतत् वृद्धि द्वारा नागरिकों के जीवन-स्तर में सुधार करना और रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।
3. प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी बाधाओं तथा विदेशी व्यापार सम्बन्धों में पक्षपातकारी व्यवहार को समाप्त करना तथा बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली का विकास करना।
4. वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार में वृद्धि करना।
5. सुस्थिर विकास (Sustainable development) को पुष्ट करने के लिए प्रयास करना और व्यापारिक एवं पर्यावरणीय सम्बन्धी नीतियों को सुस्थिर विकास से सम्बद्ध करना।
6. पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षा के लिए सुधारात्मक उपाय लागू करना।
7. विश्व संसाधनों का अधिकतम मात्रा मे विस्तार एवं उपयोग करना।

18.4 विश्व व्यापार संगठन के कार्य (Functions of W.T.O.)

विश्व व्यापार संगठन के निम्नांकित कार्य हैं:

1. प्रशुल्क एवं व्यापार से सम्बन्धित विषयों पर विचार विमर्श हेतु सदस्य देशों को एक उपयुक्त संस्थागत मंच (Appropriate institutional platform)प्रदान करना।
2. अपने सदस्य देशों के बीच उत्पन्न विवादों के निपटारे (Settlement of Disputes) के लिए नियमों एवं प्रक्रियाओं को लागू करना एवं इस हेतु प्रशासनिक व्यवस्था करना।
3. विश्व संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग (Optimum use of world resources) को प्रोत्साहन देने हेतु प्रयास करना एव वातावरण बनाना।
4. विश्व व्यापार समझौतों तथा अन्य बहुपक्षीय समझौतों के क्रियान्वयन, प्रशासन एवं परिचालन हेतु आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना।
5. विश्व स्तर पर आर्थिक नीतियों के निर्माण में अधिक सामंजस्य हेतु अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सहयोग करना।
6. व्यापार नीति की समीक्षा एवं प्रक्रिया से सम्बन्धित नियमों एवं प्रावधानों (Rules and provisions) को लागू करना।
7. सदस्य देश विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों के विरूद्ध आचरण न करें। - इस हेतु निगरानी करना।

18.5 विश्व व्यापार संगठन का संगठनात्मक ढाँचा (Organisational structure of W.T.O.)

विश्व व्यापार संगठन का ढाँचा चार स्तरीय (Four Tier) हैं, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं:

1. **मंत्री-स्तरीय सम्मेलन (Ministerial conference):** विश्व व्यापार संगठन के संगठनात्मक ढ़ाँचे के शीर्ष पर इसके सभी सदस्य देशों के मंत्रियों का सम्मेलन है जो उसका सर्वोच्च नीति निर्माता निकाय (Apex policy making body) हैं। मंत्री-स्तरीय सम्मेलन की दो वर्ष में कम से कम एक बैठक होना आवश्यक हैं। इस सम्मेलन द्वारा विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अलग-अलग समितियाँ गठित की जा सकती हैं जिनकी सदस्यता सभी राष्ट्रों के लिए खुली हैं। ये समितियाँ अग्रलिखित विषयों से सम्बन्धित हो सकती हैं:

(i) व्यापार एवं विकास:

(ii) व्यापार एवं पर्यावरण:

(iii) भुगतान संतुलन:

(iv) वित्त एवं प्रशासन: तथा

(v) अन्य विषय।

2. **सामान्य परिषद (General council) :** विश्व व्यापार संगठन के संगठनात्मक ढाँचे के द्वितीय स्तर पर सामान्य परिषद है। ये मंत्री-स्तरीय सम्मेलन के निचले सोपान पर होती है। इसमें सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि होते हैं। यह परिषद मंत्री-स्तरीय सम्मेलन के बीच के काल

में अपने कार्य करती हैं। सामान्य परिषद मंत्री स्तरीय सम्मेलन के बीच के काल में अपने निम्नलिखित कार्य करती हैं:

(i) मंत्री-स्तरीय सम्मेलन के निर्णयों को कार्यान्वित करना:

(ii) आवश्यकता पड़ने पर अपने स्तर पर निर्णय लेना:

(iii) विवादों के निपटारे से सम्बन्धित संघटक एवं व्यापार नीति पुनरीक्षा तंत्र से सम्बन्धित संघटक की बैठके बुलाना, तथा

(iv) विश्व व्यापार संगठन से सम्बन्धित अन्त: सरकारी संगठनों तथा गैर सरकारी संगठनों से परामर्श करना और उनसे सार्थक एवं प्रभावपूर्ण सहयोग बनाये रखना।

सामान्य परिषद के कार्यो में सहयोग प्रदान करने के लिए निम्नांकित तीन क्षेत्रवार परिषदें (Three sectoral councils) है:

(i) वस्तु व्यापार परिषद (Commodity trade council)

(ii) सेवा व्यापार परिषद (Service trade council): तथा

(iii) बौद्धिक सम्पदा अधिकार के व्यापार से सम्बन्धित पहलुओं के लिए परिषद (Council for intellectual property rights trade related issues)

व्यापार परिषद उक्त कार्यो के अतिरिक्त 'विवाद निपटारा निकाय' (Dispute settlement body- DSB) के रूप में कार्य करती हैं। इस निकाय की 25 नवम्बर, 1995 को सम्पन्न बैठक में एक सात सदस्यीय समिति की स्थापना की गयी जिसे Standing appellate body के नाम से जाना जाता है। यह समिति विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत विवाद निपटान प्रक्रिया की निगरानी (To oversee the process of dispute settlement) करती हैं।

3. **विशिष्ट समझौतों से सम्बन्धित समितियाँ/कार्यदल (Committees/Woking groups dealing with specific agreements) :** विश्व व्यापार संगठन के संगठनात्मक ढाँचे के तृतीय स्तर पर अनेक समितियाँ/कार्यदल हैं जो विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अथवा विशिष्ट बहुपक्षीय समझौतों के लिए गठित की जाती हैं।

निम्नांकित समितियाँ विशिष्ट समझौतों एवं विषयों के लिए गठित की गयी हैं:

(i) वस्तु व्यापार व सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता (GATS):

(ii) व्यापार सम्बन्धी निवेश उपाय (TRIMS) परिषद:

(iii) व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPS) परिषद: तथा

(iv) टेक्सटाइल्स एवं वस्त्रों पर समझौता (ATC)

उक्त समितियों का काम अपने-अपने क्षेत्रों से सम्बन्धित समझौतों के अनुपालन की निगरानी करना हैं।

4. **सचिवालय (Secretariat):** विश्व संगठन के अन्तिम और चतुर्थ स्तर पर एक सचिवालय हैं। सचिवालय का प्रमुख एवं शीर्ष कार्यकारी अधिकारी महानिदेशक (Director General) होता हैं, जो सदस्य राष्ट्रों द्वारा मंत्री-स्तरीय सम्मेलन में चुना जाता हैं। विश्व व्यापार संगठन के समस्त कार्यकारी अधिकार (Executive rights) महानिदेशक के पास होते हैं। सचिवालय के समस्त कार्य महानिदेशक की देखरेख में सम्पन्न होते हैं।

18.6 विश्व व्यापार संगठन एवं भारत (W.T.O. and India)

भारत गैट एवं विश्व व्यापार संगठन का संस्थापक सदस्य (Founder member) रहा हैं। भारत ने न केवल विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अन्तर्गत आयोजित प्रशुल्क एवं व्यापार मंत्रणाओं में भाग लिया, वरन् इसकी विभिन्न समितियों की बैठकों में विकासशील देशों के दृष्टिकोण एवं उनकी समस्याओं को स्पष्ट एवं प्रभावी रूप में प्रस्तुत करने में अग्रणी भूमिका निभायी हैं।

युरूग्याय दौर से लेकर विश्व व्यापार संगठन की स्थापना तक के काल में अनेक विषय विशेषज्ञों तथा विभिन्न राजनीतिक दलों ने यह आशंका प्रकट की कि विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता से भारत जैसे कृषि प्रधान देशों के आर्थिक हितों को भारी हानि होगी। अनेक आलोचकों के विचारानुसार कृषि प्रधान देशों में उत्पादित अनेक वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा क्योंकि विकसित देश पर्यावरण संरक्षण की आड़ में अनेक प्रतिबन्ध लगा देगें। विकसित देशों के सेवा क्षेत्र की तुलना में भारत जैसे विकासशील देशों का सेवा क्षेत्र काफी पिछड़ा हुआ हैं, इसलिए इनके बीच प्रतिस्पर्धा से विकासशील देशों का नुकसान होगा। विकासशील देशों द्वारा अपने कृषि निर्यातों पर दी जा रहीं आर्थिक सहायता (Subsidy) में भी कटौती करनी पड़ेगी अथवा उन्हें समाप्त करना पड़ेगा। इसके परिणामस्वरूप उनके निर्यातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इतना ही नहीं, विकासशील देशों में कृषि आदा (Agricultural inputs) भी महंगे हो जायेंगे। आलोचकों द्वारा बौद्धिक सम्पदा अधिकार के नाम पर भी विकासशील देशों को नुकसान होने की बात कही गयी। विश्व व्यापार संगठन की उक्त आलोचनाएँ पूर्णत: निरर्थक नहीं हैं। इनमें बड़ी सीमा तक सत्यता का अंश विद्यमान हैं। अब हम यहाँ विश्व व्यापार संगठन के भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन करेंगें।

विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर प्रभाव (Effect of W.T.O. on Indian Agriculture) : विश्व व्यापार संगठन के भारतीय कृषि पर निम्नांकित प्रभाव पड़ने की आशंका व्यक्त की गयी हैं

1. **बीजों का पेटेंट एवं बिक्री (Patent and sale of seeds) :** भारत में उत्पन्न बीजों (Seeds) का पेटेंट कराना पड़ेगा, किन्तु पेटेंट कराये गये अथवा आयातित बीजों से उत्पन्न फसल/बीज को किसान बाजार में बीज के रूप मे नहीं बेच सकेंगे। इसके परिणामस्वरूप देश के किसानों को बीज महँगा मिलेगा और उनके आर्थिक हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

2. **आयात प्रावधान (Import provision) :** विश्व व्यापार संगठन समझौते में एक प्रावधान यह है कि सदस्य देशों को आवश्यकता न होने पर भी न्यूनतम खाद्यान्नों का आयात करना होगा। प्रथम वर्ष में यह अपनी घरेलू आवश्यकता का 2 प्रतिशत तथा 10 वर्ष के अन्त में बढ़कर 3.73 प्रतिशत हो जाएगा। इस प्रावधान के फलस्वरूप न केवल विकासशील देशों के खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने के प्रयत्नों को ठेस पहुँचेगी, वरन् उनके समक्ष दुर्लभ विदेशी मुद्रा का संकट भी बढ़ जाएगा। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यह आयात प्रावधान भुगतान संतुलन की समस्या से जुड़े राष्ट्रों पर लागू नहीं होगा। इसके अलावा यह प्रावधान अभी बाध्यकारी नहीं है, किन्तु आलोचकों का मानना है कि यह कभी भी बाध्यकारी हो

सकता हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रावधान भारतीय कृषि के लिए अहितकारी सिद्ध हो सकता है। भारतीय किसानों को सस्ते खाद्य तेलों के आयात से नुकसान हुआ है जिसे हाल ही में सरकार ने सीमा कर लगाकर राहत पहुँचायी हैं।

3. **कृषि अनुदान में कटौती (Reduction in agriculture subsidy) :** गैट समझौते में कृषि को अधिकतम 10 प्रतिशत अनुदान देने का प्रावधान है जिसमें सिंचाई, विद्युत आपूर्ति, कृषि यंत्र एवं उपकरण, बीज, उर्वरक तथा कीटनाशक दवाइयाँ सम्मिलित हैं। इस प्रावधान के अनुसार जिन देशों में कृषि का अनुदान 10 प्रतिशत से अधिक हैं, तो उन्हें उसमें कटौती कर 10 प्रतिशत के स्तर पर लाना होगा।

भारतीय कृषि गैट समझौते के कारण प्रभावित नहीं होगी क्योंकि भारत में कृषि को प्रदत्त आर्थिक सहायता 10 प्रतिशत से कम है लेकिन सरकार पर गैर-कृषि क्षेत्र का दबाव इसकी आड़ में बराबर बना हुआ हैं।

विकसित राष्ट्रों द्वारा कृषि पर अनुदान राशि में कटौती के कारण भारतीय कृषि को फायदा होता प्रतीत होता हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि भारतीय कृषि की उत्पादकता कम तथा लागत अधिक होने के कारण उसको विश्व बाजार प्रतिस्पर्धा में टिकने में कठिनाई आयेगी। विशेषकर अनार्थिक जोतों के कारण लघु एवं सीमान्त किसानों को विशेष कठिनाई होगी।

निर्यात बाधाओं की समाप्ति और कृषि बाजार पहुँच के प्रावधानों के फलस्वरूप भारतीय कृषि क्षेत्र का निर्यात बढ़ने की सैद्धान्तिक संभावनायें व्यक्त की गयी हैं, परन्तु विकसित देश किसी न किसी बहाने से विकासशील देशों को उनको होने वाले कृषि निर्यातों पर प्रतिबन्ध थोप रहें हैं। इसके अलावा वे अपने-अपने देशों में कृषि पर दी जा रहीं आर्थिक सहायता में कटौती भी नहीं कर रहें हैं। अमेरिका, आस्ट्रेलिया व यूरोप के अनेक राष्ट्रों में कृषि को दी जाने वाली आर्थिक सहायता का प्रतिशत 10 प्रतिशत से कहीं अधिक है।

4. **निर्यात अनुदान (Export Subsidy):** कृषि समझौते मे कृषि उत्पादों पर निर्यात अनुदानों का निषेध है। 1886-90 अवधि के लिए औसत को आधार स्तर के रूप में लेते हुए विकसित देशों को अपनी निर्यात रियायतें 1995 से शुरू के 6 वर्षो की अवधि में 36 प्रतिशत तथा विकासशील देशों को 24 प्रतिशत अनुदान कम करने होंगे। भारत में निर्यात अनुदान नहीं के बराबर हैं। भारत में कृषि उत्पादों के निर्यात को प्रत्यक्ष अनुदान नहीं मिलता हैं। विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत तीन प्रकार की छूटों को सम्मिलित किया गया हैं, जो निम्नलिखित हैं:

(i) निर्यात विपणन मूल्य:

(ii) अन्तर देशीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन: तथा

(iii) किराये भाड़े में कमी।

भारत में इस प्रकार के प्रावधानों से कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है, किन्तु भारत को होने वाले विभिन्न देशों के निर्यात की रियायतें कम होने पर ही लाभ होगा वरना संरक्षण के तहत राशिपातन (Dumping) से अन्य देश का लाभ उठाते रहेंगे, पाम आयल इसका उदाहरण हैं। इसके कारण घरेलू बाजार में तिलहन की कीमतें कम रहीं, परिणामस्वरूप किसानों को उनकी ऊँची कीमतों का लाभ नहीं मिल पाया। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विकसित देशों द्वारा अनुदानों में कटौती किये बिना भारत को इसका लाभ मिलना मुश्किल हैं।

5. **सीमा शुल्क (Custom duty) :** युरूग्वाय दौर के पूर्व कुछ कृषि उत्पादों के आयात पर अभ्यंश (Quota), अन्य शुल्कीय अवरोध तथा आयात-निर्यात लाइसेन्स जैसे नियंत्रण लागू थे। अब इनका स्थान सीमा शुल्क ने ले लिया हैं। गैट समझौते में कृषि उत्पादों में बाजार पहुँच के लिए नया नियम यह है कि इनके आयात पर लागू सभी गैर-शुल्कीय अवरोधों को हटा कर उनकी जगह एकल शुल्क दर लागू की जाए, जिसे बाध्य शुल्क दर (Bound Tariff Rate) कहते हैं। एक बार बाध्य शुल्क दर निर्धारित होने के पश्चात् एक निश्चित अवधि में इसको कम करना आवश्यक हैं। विकसित राष्ट्रों द्वारा बाध्य दरों में 36 प्रतिशत तथा विकासशील देशों द्वारा 24 प्रतिशत कमी की जानी हैं।

भारत के लिए आयात पर लागू सभी प्रकार के गैर-शुल्कीय अवरोधों को 2005 तक हटाना आवश्यक था। भारत में 825 कृषि उत्पादों के आयात पर निरोधात्मक नियंत्रण लागू थे। इन अवरोधों को 1997 से 2003 तक की अवधि में हटाने का प्रस्ताव था। भारत में प्राथमिक कृषि उत्पादों पर आयात शुल्क 100 प्रतिशत प्रसंस्कारित खाद्य पर 150 प्रतिशत तथा खाद्य तेलों पर 300 प्रतिशत हैं।

6. **पेटेंट अधिकार (Patent Rights) :** विश्व व्यापार समझौते में कृषि उत्पादों/जिन्सों को पेटेंट करवाने का प्रावधान हैं पेटेंट होने के पश्चात अधिकार शुल्क (Royalty) चुकाये बिना कोई भी उपयोगकर्त्ता देश उस वस्तु का उपयोग नहीं कर सकेगा। पौधों एवं पशुओं पर बौद्धिक सम्पदा अधिकार के सम्बन्ध में पेटेंट के अन्तर्गत पौधों का संरक्षण तथा सुई जेनरिस (Sui-Generis) के आधार पर उत्पन्न करने वाला किसान बीज तो दो सकेगा, किन्तु उसे बिक्री करने का अधिकार नहीं होगा। बीजों के पेटेंट का प्रावधान न होने के कारण भारत इस विषय में पिछड़ गया हैं। विश्व के अनेक देश भारतीय उत्पादों का चोरी-छिपे पेटेंट करवा रहें हैं। बासमती चावल इसका ज्वलन्त उदाहरण है। न्यायालय में मामला जाने के कारण पेटेंट करवाने वाली कम्पनियों ने 20 में से 16 आवेदन वापस ले लिए हैं। विदेशी कम्पनियों ने हल्दी, नीम, करेला, तुलसी, आँवला, काला जीरा, काली मिर्च, ईसबगोल आदि अनेक उत्पादों का पेटेंट करवा लिया हैं। इन पेटेंटों के विरूद्ध भारत सरकार तथा प्रबुद्ध नागरिकों को लड़ाई लड़नी पड़ रहीं है। अब तो गोमूत्र एवं पंचगव्य तक का दवाइयों के रूप में पेटेंट करवाया जा रहा है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव भारत पर पड़ने वाला है क्योंकि उपर्युक्त उल्लेखित वस्तुएँ भारत का आम नागरिक अपने दिन प्रतिदिन के जीवन में प्रयुक्त करता है।

7. **खाद्य सुरक्षा एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Food Security and public distribution system):** विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों के अनुसार सदस्य देश की सरकार खाद्य सुरक्षा हेतु यदि खाद्यान्न क्रय करती है, तो उसे नागरिकों को बाजार भाव पर बेचना होगा। इस प्रावधान से देश की खाद्य सुरक्षा व्यवस्था पर जो पहले से ही लचर अवस्था में है, प्रतिकूल प्रभाव पडेगा। भारत में आज भी लगभग 20 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहीं हैं। देश की जनसंख्या का एक विशाल भाग आज भी खाद्य सुरक्षा के लिए सरकार पर आश्रित है- विशेषकर गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवार (BPL families)। उक्त प्रावधान के अनुसार इन परिवारों को उचित मूल्य की दुकानों से सस्ते दामों पर खाद्यान्न उपलब्ध नहीं हो सकेगा।

8. पर्यावरण संरक्षण के नाम पर विकसित देश विकासशील देशों के कृषि व अन्य निर्यातों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा सकते हैं फैडरेसन आफ इण्डियन चैम्बर एण्ड कामर्स (FICCI) के अनुसार विकसित देशों द्वारा बाल श्रम, मानवाधिकार, पर्यावरण तथा अन्य सामाजिक मुद्दों के आधार पर अनेक प्रकार की गैर-व्यापारिक बाधाएँ (Non-Trade barriers) खड़ी की जायेंगी।

दोहा आदेशपत्र (Doha Mandate) के अनुसार 31 मार्च, 2003 तक कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित समझौतों की रूपरेखा बनानी थी और उसके आधार पर सितम्बर, 200 तक वचनबद्धताओं की अनुसूची (Schedule of Commitments) तैयार करनी थीं। भारत द्वारा इस सम्बन्ध में प्रस्तुत प्रस्तावों में गरीब किसानों की भोजन एवं आजीविका सुरक्षा एवं भारतीय कृषि उत्पादों के निर्यात अवसरों को सर्वोच्च स्तर तक बढ़ाने की दृष्टि से विकसित देशों में लागू उच्च प्रशुल्क दरों एवं अनुदानों में कटौती की माँग की गयी हैं। विश्व व्यापार संगठन का चौथा मंत्री-स्तरीय सम्मेलन कतर की राजधानी दोहा (Doha) में 9-14 नवम्बर, 2001 में सम्पन्न हुआ, जिसमें विश्व व्यापार संगठन के भावी कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की गयी। दोहा सम्मेलन में कृषि के लिए विस्तृत संधि हेतु निम्नलिखित के बारे में वचनबद्धता दोहरायी गयी:

1. विकासशील देशों के लिए बाजार पहुँच में पर्याप्त सुधार करना (Substantial improvements in market access for developing countries):
2. निर्यातों पर दिये जाने वाले सभी अनुदानों (Export subsidies) में कटौती ताकि उन्हें धीरे-धीरे समाप्त किया जा सकें तथा
3. विकसित देशों द्वारा दी जा रहीं व्यापार विकृति उत्पन्न करने वाली घरेलू सहायता में पर्याप्त कटौती करना, (Substantial reduction in trade distorting domestic support of developed countries)। विश्व व्यापार संगठन का पाँचवाँ मंत्री-स्तरीय सम्मेलन मैक्सिको के कानकुन (Cancun) शहर में 10-14 सितम्बर, 2003 में सम्पन्न हुआ। किन्तु यह सम्मेलन कृषि क्षेत्र में आर्थिक सहायता (Subsidy) कम करने के मुद्दे को लेकर विकसित एवं विकासशील देशों में गहरे मतभेद के चलते बुरी तरह असफल हो गया। इस सम्मेलन की विफलता के पश्चात भी विभिन्न मुद्दों पर समझौता करने के प्रयास चलते रहे। पाँच सम्बद्ध दलों (Five interested parties), जिसमें 6-20 समूह की तरफ से भारत भी सम्मिलित था, ने समय-समय पर विचार-विमर्श द्वारा एक साझा समझौता तैयार करने का प्रयास किया। इसका परिणाम जुलाई 2004 में स्वीकृत फ्रेम वर्क समझौता था। इसमें एक निश्चित तिथि तक निर्यात सहायता को समाप्त करने की सहमति व्यक्त की गयी और साथ ही विकासशील देशों के दृष्टिकोण से आर्थिक विकास में कृषि का महत्व स्वीकारा गया। इस समझौते में इस बात को भी स्वीकारा गया कि इन देशों को ऐसी कृषि नीति बनाने की छूट होनी चाहिए जो उनके विकास लक्ष्यों, गरीबी निवारण युक्तियों, खाद्य सुरक्षा व्यवस्था आदि के संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें।

विश्व व्यापार संगठन का छठा मंत्री-स्तरीय सम्मेलन 13 से 18 दिसम्बर, 2005 के बीच हांगकांग में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन के अंत में जारी घोषणा पत्र में निम्नांकित बातें मुख्य थी :

1. दोहा विकास कार्यावली को पूरी तरह सम्पन्न करना तथा 2006 में समझौता वार्ता पूरा करना।
2. कृषि तथा गैर-कृषि बाजार क्षेत्र को किस प्रकार और खोला जाए - इसके लिए 3 अप्रैल, 2006 तक कार्य विधि निर्धारित करना तथा 31 जुलाई, 2006 तक विस्तृत सूची (Draft schedules) तैयार करना।

कृषि क्षेत्र में निम्नांकित निर्णयों की घोषणा की गयी.

1. विकसित देश 2013 तक कृषि पर निर्यात सहायता (Export subsidies) को पूर्णतया समाप्त कर देंगे।
2. विकसित देश कृषि उत्पादन पर घरेलू समर्थन (domestic support) जारी रख सकेंगें।
3. खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा (livelihood) तथा ग्रामीण विकास आवश्यकताओं के आधार पर विकासशील देश स्वयं विशेष उत्पाद (Special products) की घोषणा कर सकेंगे जिनके लिए सीमा शुल्कों को अधिक लोचशील आधार पर कम किया जा सकेगा।
4. विकासशील देशों के लिए विध्वंसक आयातों के विरूद्ध एक विशेष सुरक्षा तंत्र (Special safeguard mechanism) का प्रावधान किया गया तथा विकासशील देशों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी आयात मात्रा तथा कीमत के आधार पर विशेष सुरक्षा तंत्र को अपना सकें।
5. विकसित देश कपास पर निर्यात सहायता को 2006 में समाप्त कर देंगे।

आलोचकों का मानना है कि हांगकांग सम्मेलन में कृषि क्षेत्र में जो समझौते किये गये, उनसे विकासशील देशों को कुछ विशेष लाभ मिलने वाला नहीं हैं। कृषि वस्तुओं पर निर्यात सहायता 2010 तक समाप्त करने की विकासशील देशों की बात को स्वीकार नहीं किया गया। विकसित देशों ने घरेलू समर्थन सहायता के एक बहुत बड़े अंश को 'ग्रीन बॉक्स में डाल दिया है जिसका अर्थ यह है कि इस सहायता को कम करने की आवश्यकता नहीं हैं घरेलू समर्थन सहायता को कम किये बिना यदि कृषि वस्तुओं पर सीमा शुल्क कम कर दिया जाता है, तो इससे विकासशील देशों को भारी नुकसान होगा क्योंकि इसके कारण इनके कृषि उत्पाद विकसित देशों के सस्ते (सहायता प्राप्त) उत्पादों की प्रतियोगिता में नहीं टिक पायेंगे।

गैट का अनुमान है कि युरूग्याय दौर में वस्तुओं के विदेशी व्यापार में 745 बिलियन डालर की वृद्धि होगी जिसमें 60 प्रतिशत सर्वाधिक वृद्धि कपड़े के क्षेत्र में, 20 प्रतिशत वृद्धि कृषि, वन सामग्री तथा मछली उत्पादन में तथा 19 प्रतिशत वृद्धि परिष्कृत खाद्य सामग्री में होने की संभावना हैं। भारत सरकार का तर्क है कि भारत को इन तीनों वस्तु समूहों में तुलनात्मक लाभ प्राप्त होने के कारण देश की निर्यात आय पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। यदि विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा जो 1994-95 में 0.5 प्रतिशत था, वह बढ़ कर 1 प्रतिशत हो जाता है तो भारत को प्रतिवर्ष कम से कम 2.70 बिलियन डालर की अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती हैं। इसके अलावा 2005 में 'बहु फाईबर समझौते (Multi fiber agreement) के समाप्त हो जाने से भारत को

कपड़ों व वस्त्रों के निर्यात के लिए विकसित देशों का एक बहुत बड़ा बाजार मिल जाएगा। भारत के दृष्टिकोण से व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकारों (TRIPs) का क्षेत्र सर्वाधिक चिन्ता का विषय हैं। युरूग्याय दौर में विकसित देशों के अधिकारों के संरक्षण के लिए विकासशील देशों पर अनेक कठोर शर्तें लाद दी गयी हैं। उत्पाद पेटेंट लागू होने पर औषधियों का उत्पादन अब वही कम्पनियाँ करेंगी जिन्हें उत्पाद पेटेंट प्राप्त हैं। इस प्रावधान के कारण भारतीय औषधि उत्पादकों को भारी झटका लगा। एक अनुमान के अनुसार इससे भारत को प्रतिवर्ष 1.4 से 4.2 बिलियन डालर के बीच कल्याण-हानि (Welfare loss) हो सकती हैं। जय श्री वतल (jayashree Watal) के 2000 में प्रकाशित अध्ययन में यह अनुमान लगाया गया है कि उत्पाद पेटेंट लागू होने के कारण भारत में औषधियों की कीमत 26 से लेकर 242 प्रतिशत तक बढ़ सकती है। इससे भी अधिक चिन्ता कृषि क्षेत्र की हैं क्योंकि वर्तमान परिस्थितियों में नई पौध-प्रजातियों व बीजों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को पेटेंट प्राप्त हो जाने की अधिक संभावना हैं। इससे भारत की खाद्य सुरक्षा प्रणाली को बड़ा खतरा पैदा हो सकता हैं। यदि श्रम मानदण्ड, बाल श्रम, पर्यावरण सुरक्षा आदि जैसे सामाजिक मुद्दों को विश्व व्यापार संगठन के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जाता है, तो इससे भारत सरीखे अनेक विकासशील राष्ट्रों के निर्यातों पर गहरा प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के लिए, अमेरिका स्वास्थ्य नियमों के अनुसार खाद्य पदार्थो में कीटनाशकों के अवशेष का स्तर शून्य होना आवश्यक हैं, किन्तु भारतीय खाद्य उत्पाद इस शर्त को पूरा नहीं करते। इससे स्पष्ट है कि इन शर्तों को लागू होने पर भारत के खाद्य पदार्थो के निर्यात पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। जहाँ तक सेवा क्षेत्र का सम्बन्ध है, भारत को मोड 1 (सीमाओं के आर-पार से सेवाओं की पूर्ति में) तथा मोड 4 (व्यक्तियों की आवाजाही) के क्षेत्र की सेवाओं में कुछ भी हाथ नहीं लगा क्योंकि विकसित देश इनके बारे में कोई कानूनी रूप से बाध्य अनुबंध करने के लिए तैयार नहीं हैं। भारत के निर्यातों का 35 प्रतिशत भाग विकसित राष्ट्रों के बाजारों में जाता हैं। यद्यपि कृषि एवं सम्बन्धित उत्पादों (पौधारोपण सहित) का भारत के कुल निर्यातों में मात्र 10.2 प्रतिशत हिस्सा है, किन्तु इसका जनसंख्या के जीवकोपार्जन की दृष्टि से भारी महत्त्व है। देश की कुल जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत भाग जीविकोपार्जन की दृष्टि से कृषि पर निर्भर करता हैं। इसमें कृषकों एवं भूमिहीन कृषि श्रमिकों का एक बड़ा भाग हैं जो साधनों की दृष्टि से गरीब हैं। जनसंख्या का यह भाग दक्षता की कमी से ग्रसित है और सामाजिक सुरक्षा कवच से अछूता हैं। इसलिए भारत तथा अन्य विकासशील राष्ट्र दोहा दौर की कृषि वार्ताओं में उनकी कृषि को 'विशिष्ट एवं विभेदात्मक व्यवहार (Special and differential treatment) प्रदान करने पर जोर देते रहे हैं।

भारत दोहा कृषि वार्ता नतीजों में निम्नलिखित मुद्दों/बातों को सम्मिलित करने पर सदैव जोर देता रहा हैं

1. विकसित राष्ट्रों द्वारा कृषि को प्रदत्त संरक्षण और विकृति पैदा करने वाली आर्थिक सहायता (Distorting subsidies) को उस सीमा तक कम अथवा समाप्त करना जिससे विकसित और विकासशील देशों में समानता स्थापित हो सके (Level the playing field)।

2. विकासशील देशों में खाद्यान्न सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा और ग्रामीण विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपयुक्त प्रावधान करना।

हांगकांग सम्मेलन के पश्चात् जनवरी से जुलाई 2006 तक की अवधि में हुई गहन वार्ताओं में विश्व व्यापार संगठन के सदस्य राष्ट्रों का मुख्य रूप से निम्नांकित, त्रिकोणीय मुद्दों (Triangular issues) पर ध्यान केन्द्रित रहा:

1. घरेलू समर्थन (Domestic supports):
2. कृषि बाजार पहुँच (Agriculture market access-AMA): तथा
3. गैर-कृषि बाजार पहुँच (Non- agriculture market access-NAMA)।

उपर्युक्त तीनो मुद्दों पर विकसित और विकासशील देशों के दृष्टिकोण में भारी और आधारभूत मतभेद होने के कारण वार्ताओं के दौर को स्थगित करना पड़ा और इसे तब शुरू करने का निर्णय लिया गया। जब इन मुद्दों पर बातचीत करने का सहीं वातावरण (Right negotiating environment)हों। बाद में इन मुद्दों पर 16 नवम्बर, 2006 को प्रारम्भिक अनौपचारिक वार्ता (Soft resumption negotiating) तथा 7 फरवरी, 2007 को पूर्ण स्तरीय वार्ता (Full scale resumption) प्रारम्भ हुई, जिस पर भारत ने खुशी प्रकट की।

आकस्मिक व्यापार नीति (Contingency trade policy) तथा गैर-तटकर उपाय (Non-tariff measures-NTMs) विकासशील देशों के निर्यातों की सबसे बड़ी बाधा है। इस प्रकार की बाधाएँ ऐसे उत्पादों में बहुत अधिक होती हैं जिन में मूल्य वृद्धि (Value addition) तथा तकनीकी अंश (Technological content) अपेक्षाकृत कम होता है। कृषि, कपड़े तथा चमड़े के उत्पाद इसके चन्द ज्वलन्त उदाहरण हैं। ऐसी वस्तुओं के निर्यात में भारत सरीखे विकासशील राष्ट्रों की काफी रूचि होती हैं। भारत राशिपातन विरोधी उपायों (Anti Dumping Measures) का प्रमुख प्रयोगकर्ता रहा है और इस कारण विश्व के अनेक देशों का निशाना भी बना हैं। जनवरी-जून, 2006 की अवधि में विश्व व्यापार संगठन ने देशों के 87 नये मामलों में राशिपातन विरोधी जाँच पहल की, जिन में से सर्वाधिक 20 मामले भारत के थे। कुल मिलाकर निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि भारत को अभी तक विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता से कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ हैं। भविष्य में भारत अपनी अर्थव्यवस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि कर विश्व व्यापार में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाकर तथा विकासशील देशों को संगठित कर सामूहिक सौदेबाजी द्वारा विश्व व्यापार संगठन से प्राप्त होने वाले लाभों में अपेक्षाकृत उल्लेखनीय वृद्धि कर सकता हैं।

18.7 सारांश (Summary)

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना 1 जनवरी 1995 को युरूग्याय दौर की वार्ताओं के निष्कर्ष स्वरूप हुई। भारत विश्व व्यापार संगठन का संस्थापक सदस्य है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्कीय व्यापार सम्बन्धी बाधाओं को समाप्त कर विश्व व्यापार की एक नवीन और बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली का विकास करना है ताकि सदस्य देशों के नागरिकों की आय एवं जीवन स्तर में सुधार हो सके और साथ ही साथ सुस्थिर विकास हेतु पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षा के लिए सुधारात्मक उपाय लागू किये जा सकें। विश्व व्यापार

संगठन अपने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनेक कार्य करता हैं। इनमें विचार विमर्श हेतु सदस्य देशों को उपयुक्ता मंच प्रदान करना, विश्व संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करने हेतु प्रोत्साहन देना, सदस्य देशों के बीच उत्पन्न विवादों के निपटारे हेतु व्यवस्था करना, विश्व संस्थाओं से सहयोग करना आदि सम्मिलित हैं। विश्व व्यापार संगठन का संगठनात्मक ढाँचा चार स्तरीय है इनमें प्रथम, मंत्री-स्तरीय सम्मेलन, द्वितीय, सामान्य परिषद, तृतीय विशिष्ट समझौतों से सम्बन्धित समितियाँ / कार्यदल तथा चतुर्थ, सचिवालय हैं। भारत को अब तक विश्व व्यापार संगठन के सदस्य बनने से कोई विशेष फायदा नहीं हुआ हैं, किन्तु भारत अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत कर, विश्व व्यापार में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाकर तथा विकासशील देशों की एकजुटता को कायम रख कर भविष्य में काफी लाभ प्राप्त कर सकता हैं। कृषि बाजार पहुँच, गैर कृषि बाजार पहुँच तथा घरेलू समर्थन सहायता विकसित और विकासशील देशों के बीच विवाद के मुख्य मुद्दे रहे हैं।

18.8 शब्दावली (Key words)

1. **सुस्थिर विकास (Sustainable Development):** इसे टिकाऊ विकास भी कहते हैं। यह विकास की ऐसी अवधारणा है जिसमें विकास के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण पर भी ध्यान दिया जाता हैं ताकि विकास दीर्घजीवी हो सकें।
2. **विवाद निपटारा निकाय (Dispute Settlement Body) :** यह विश्व व्यापार संगठन का एक ऐसा निकाय है जो सदस्य देशों के विश्व व्यापार से सम्बन्धित विवादों का निपटारा करने का काम करता है। यह एक वैधानिक निकाय है जिसके निर्णय बाध्यकारी होते हैं।
3. **राशिपातन (Dumping):** जब कोई देश जानबूझकर किसी दूसरे देश के बाजार पर आधिपत्य स्थापित करने की दृष्टि से अपनी वस्तुओं को दूसरे देश में घरेलू कीमतों से भी कम कीमत पर बेचता हैं, तो राशिपातन कहलाता हैं।
4. **बहुपक्षीय व्यापार (Multilateral Trade):** जब किसी देश का व्यापार एक साथ अनेक देशों के साथ होता हैं, तो यह बहुपक्षीय व्यापार कहलाता हैं।
5. **प्रशुल्क (Tariffs):** आयात-निर्यात व्यापार पर जो कर लगाये जाते हैं, उन्हें प्रशुल्क कहते हैं। इन्हें सीमा शुल्क अथवा तटकर भी कहा जाता हैं।
6. **गैर-प्रशुल्क बाधाएँ (Non-Tariff Barriers):** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर नियंत्रण एवं नियमन हेतु प्रशुल्क के अतिरिक्त जो प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, उन्हें गैर-प्रशुल्क बाधाएँ कहा जाता है, जैसे आयात अभ्यंश, आयातों पर प्रतिबन्ध इत्यादि।
7. **बाजार पहुँच (Market Access):** किसी बाजार में बिना किसी विशेष बाधा के वस्तुओं अथवा सेवाओं को बेचने की छूट बाजार पहुँच कहलाती है। विकासशील देशों द्वारा अपनी वस्तुओं को विकसित देशों के बाजारों में बेचने की छूट की माँग विकासशील देशों द्वारा निरन्तर की जाती रही है। व्यापारिक बाधाओं में कमी लाकर तथा भेदभाव को समाप्त कर बाजार पहुँच में सुधार किया जा सकता है।

8. **निर्यात अनुदान (Export Subsidy):** किसी देश द्वारा अपने निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए जो आर्थिक सहायता दी जाती है, उसे निर्यात अनुदान कहते हैं।
9. **विशिष्ट एवं विभेदात्मक व्यवहार (Special and Discrimination Behaviour)** : जब कोई देश किसी देश विशेष को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में ऐसी सुविधा/लाभ/छूट देता है, जो अन्य राष्ट्रों को नहीं दी जाती है, तो इसे विशिष्ट एवं विभेदात्मक व्यवहार करते हैं। इस प्रकार का व्यवहार अच्छा नहीं माना जाता है।
10. **आकस्मिक व्याप नीति (Emergent Trade Policy):** किसी देश द्वारा विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर अपनायी जाने वाली व्यापार नीति होती है। विशेष परिस्थितियाँ समाप्त हो जाने के पश्चात् यह व्यापार नीति समाप्त कर दी जाती है।
11. **पेटेन्ट अधिकार (Patent Rights) :** जब कोई देश किसी वस्तु का पेटेन्ट करवा लेता है, तो फिर उसे कोई दूसरा देश पेटेन्ट अधिकार रखने वाले देश की अनुमति के बिना उत्पन्न नहीं कर सकता।

18.9 स्व-परख (Self Exercises)

लघु उत्तरात्मक प्रश्न (Short-Answer Questions)

1. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
2. विश्व व्यापार संगठन के कार्य स्पष्ट कीजिए।
3. विश्व व्यापार संगठन के संगठनात्मक ढाँचे का विवरण दीजिए।
4. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना क्यों की गई?

निबन्धात्मक प्रश्न (Short-Answer Questions)

1. विश्व व्यापार संगठन एवं भारतीय कृषि पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।
2. विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता से भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
3. विश्व व्यापार संगठन के विवादित मुद्दों पर आलोचनात्मक लेख लिखिए।
4. क्या भारत को विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बने रहना चाहिए? यदि नहीं, तो क्यों? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

Notes

Notes

Notes

BC-06

ISBN - 13/978-81-8496-196-6